RNI Number : MPHIN/2016/70609

वर्ष : 8, अंक : 29

अप्रैल-जून 2023

मूल्य 50 रुपये

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

Dhingra Family Foundation
USA

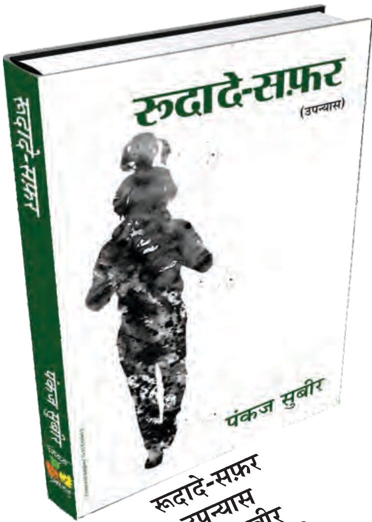

रूदादे-सफ़र
उपन्यास
पंकज सुबीर
मूल्य : 300 रुपये

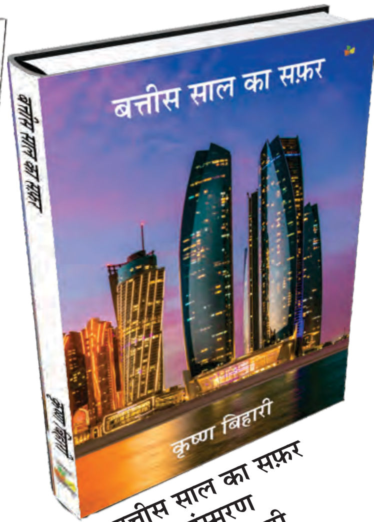

बत्तीस साल का सफ़र
संस्मरण
कृष्ण बिहारी
मूल्य : 350 रुपये

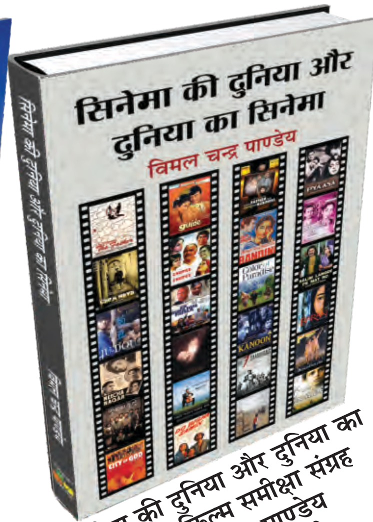

सिनेमा की दुनिया और दुनिया का सिनेमा- फ़िल्म समीक्षा संग्रह
विमल चन्द्र पाण्डेय
मूल्य : 200 रुपये

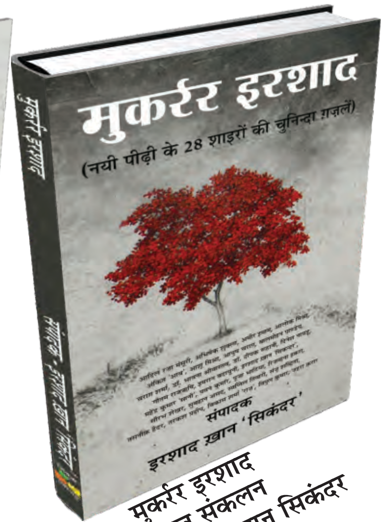

मुकर्रर इरशाद
ग़ज़ल संकलन
संपादन- इरशाद ख़ान सिकंदर
मूल्य : 250 रुपये

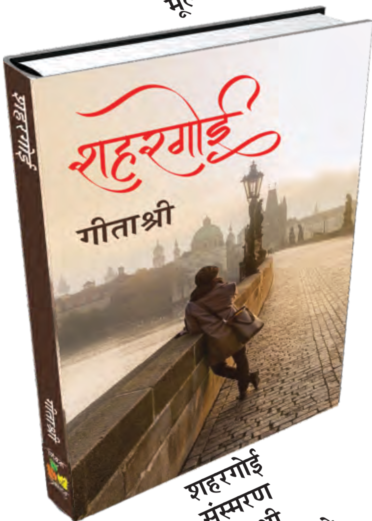

शहरगोई
संस्मरण
गीताश्री
मूल्य : 300 रुपये

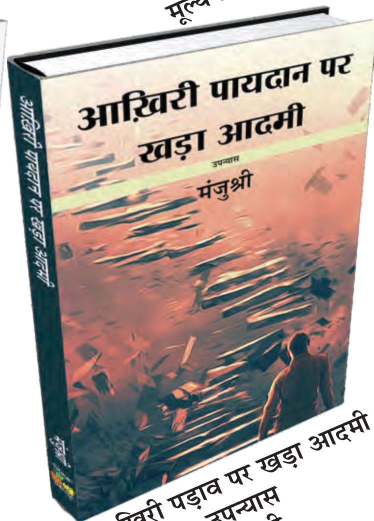

आख़िरी पड़ाव पर खड़ा आदमी
उपन्यास
मंजुश्री
मूल्य : 250 रुपये

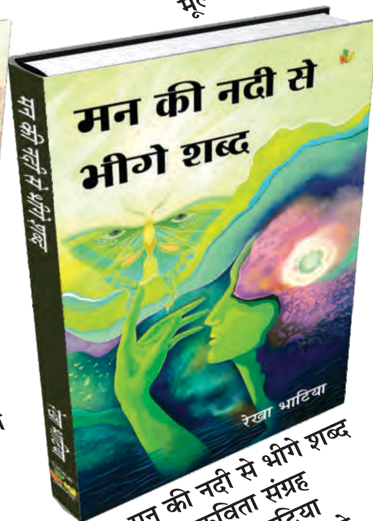

मन की नदी से भीगे शब्द
कविता संग्रह
रेखा भाटिया
मूल्य : 300 रुपये

गांधी कथा
अनुवाद
प्रक्षाली देसाई
मूल्य : 200 रुपये

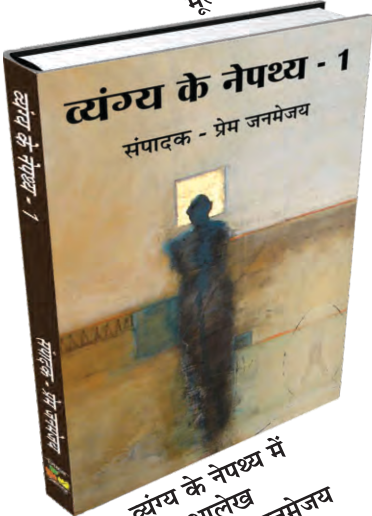

व्यंग्य के नेपथ्य में
आलेख
संपादन - प्रेम जनमेजय
मूल्य : 250 रुपये

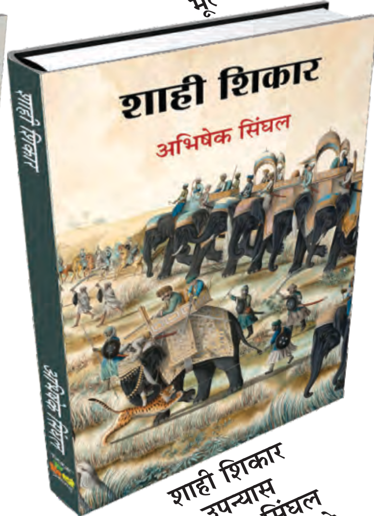

शाही शिकार
उपन्यास
अभिषेक सिंघल
मूल्य : 140 रुपये

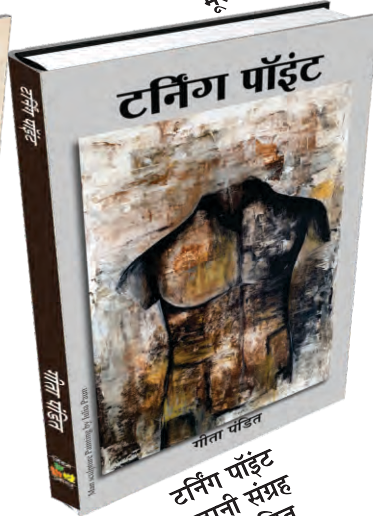

टर्निंग पॉइंट
कहानी संग्रह
गीता पंडित
मूल्य : 175 रुपये

फ्रेम दर फ्रेम ज़िंदगी
कहानी संग्रह
शिल्पा शर्मा
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं
प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 29, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2023
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

'भारतीय कॉमन जेझेबेल तितली' जो राष्ट्रीय तितली की दौड़ में अंतिम तीन तक पहुँची।

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वर्ष : 8, अंक : 29,

अप्रैल-जून 2023

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

एक लेखक को उसी के बारे में लिखना चाहिए, जिसको वह जानता है, समझता है।
हरि भटनागर से आकाश माथुर की वार्ता 11

विस्मृति के द्वार से

दिमाग़ की दीवारों से चिपके अनाम और अविस्मरणीय से नाम
सुदर्शन प्रियदर्शिनी 13

कथा कहानी

दूध की धुली
डॉ. रमाकांत शर्मा 16

मन न भये दस बीस
सुधा जुगरान 22

शून्य से आगे
कमलेश भारतीय 26

डॉलर ट्री
शुभ्रा ओझा 29

यह देश हुआ बेगाना...
गोविन्द उपाध्याय 32

मैं क्यों नहीं....
अदिति सिंह भदौरिया 36

टॉमी पकड़ो मुझे
प्रेम गुप्ता 'मानी' 40

किसके लिए
डॉ. पूरन सिंह 44

भाषांतर

सेफ्टी किट
पंजाबी कहानी
मूल लेखक : जिंदर
अनुवाद : जसविंदर कौर बिन्द्रा 46

लघुकथा

वित्तीय संकट
प्रो. नव संगीत सिंह 15

शिकारी
ज्ञानदेव मुकेश 25

नेगटिव मार्किंग
ज्ञानदेव मुकेश 25

निर्णय
राजनंदिनी राजपूत 28

जीवंत ग़ज़ल
वीरेंद्र बहादुर सिंह 45

ललित निबंध

त्यौहारों के लिंग
वंदना मुकेश 52

शहरों की रूह

सफेदी की विशालकाय चादर पर छोटे-छोटे पैर
हंसा दीप 54

व्यंग्य

कीर्तिशेष महाकवि मौजानन्द
पूरन सरमा 58

झूठ बुलवाए रे जो मशीनवा मोबाइलवा की
पूजा गुप्ता 60

संस्मरण

कैसे -कैसे लोग
कादम्बरी मेहरा 62

ग़ज़ल

सतपाल ख़याल 61

अनिरुद्ध सिन्हा 65

कविताएँ

विशिष्ट कवि
चन्द्र मोहन 66

ब्रजेश कानूनगो 68

ममता त्यागी 69

खेमकरण 'सोमन' 70

गीत

सत्यशील राम त्रिपाठी 71

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

किसी दूसरे का लिखा आगे भेजने से पहले कुछ देर ठहरिए और सोचिए

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

'जिसकी लाठी उसकी भैंस' लोकोक्ति को बचपन में अर्थ सहित रटा करते थे। हिन्दी में अच्छे नंबर लेने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियों को रटना पड़ता था। बचपन में याद की हुई लोकोक्ति जीवन की परीक्षा में सच हुई लगती है। हालाँकि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के अर्थ पहले भी कई बार लोगों के जीवन में घटित होते देखें हैं। उस समय सोशल मीडिया नहीं था और बात दूर तक नहीं जाती थी। बस घटना स्थानीय ही रहती थी, समाचार पत्रों से ही ख़बर मिलती थी। अब सोशल मीडिया की बदौलत देश-देशांतर की घटनाएँ दूर-दूर आमजन तक भी पहुँच जाती हैं। अब तो लगता है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' हर देश और वहाँ की राजनीति तथा क़ानून में भी पैठ बना चुकी है।

लोकतंत्र एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें इसको स्थान नहीं मिलना चाहिए था, पर लोकतंत्र देशों में ही 'जिसकी लाठी उसका लोकतंत्र' हो रहा है। भारत में तो पहले से ही क़ानून व्यवस्था और राजनीति दोनों में इस कहावत को पूरा होते देखा है। वज़नदार (धन और सत्ता वाला) गुनाहगार छूट जाता है। ग़रीब बेक़सूर फँसता देखा है।

अमेरिका में मैं सन् 1982 से हूँ और इस देश की व्यवस्था को क़ानून का सख्ती से पालन करते देखते आई हूँ। पर अब यहाँ भी जिसकी लाठी है, उसी की भैंस होते देख रही हूँ। पूर्व प्रेज़िडेंट डॉनल्ड ट्रम्प के समय हुई वाइट हाउस पर हिंसात्मक हमले जैसी अशोभनीय घटना ब्राज़ील जैसे देशों में भी घटित हो गई। अमेरिका सबसे सुदृढ़ लोकतांत्रिक देश है। वह दूसरे देशों में लोकतंत्र को बचाने व स्थापित करने के लिए ख़ूब धन व्यय करता रहा है। अमेरिका में ही लोकतंत्र और क़ानून की धज्जियाँ उड़ जाएँ, यह सोचने वाली स्थिति है। चीन और रूस तो अपनी लाठी का प्रयोग कर ही रहे हैं।

पूरा विश्व इससे प्रभावित हो रहा है। यूरोप पर तो इसका बहुत बुरा असर हुआ है। सत्ता और पैसे वालों को हालात और परिस्थितियाँ अपने अनुसार मोड़ते हुए देख रही हूँ।

सोशल मीडिया के बहुत लाभ हैं, पर उसके दुष्परिणामों में सबसे बड़ा नुक्सान है, झूठी

संपादकीय

अफ़वाहों का फैलना और फैलाना तथा सच को जाने बिना झूठ को प्रोत्साहित करना। जनता कहें या देश के नागरिक, उनको सच जानने का मौका ही नहीं दिया जाता, बार-बार इतनी बार झूठ दोहराया जाता है, कि वह सच लगने लगता है।

पूरी दुनिया का वातावरण दूषित हो रहा है। सोशल मीडिया के दुष्परिणामों पर समय-समय पर मैंने लिखा भी है। पर इस समय तो ऐसा लग रहा है, जैसे एक ऐसी मानसिकता का प्रादुर्भाव होकर विकास हो रहा है, जो पूरे विश्व को उस युग में ले जाना चाहती है, जिस युग में सामंती व्यवस्था थी और जिसकी लाठी मज़बूत होती थी, वही सत्ता और समाज का कर्णधार होता था। उस युग से निकलने के लिए कई देशों के लोगों को वर्षों लग गए। फिर से सामंती सोच का पनपना लोगों के साथ अन्याय है और इस अन्याय को बढ़ावा दे रहा है, सोशल मीडिया।

टीवी चैनलों का बार-बार नकारात्मक समाचारों को दिखाना और सोशल मीडिया पर उनको वायरल करना, क़त्ल, बलात्कार के समाचारों को हर मीडिया में बढ़ा-चढ़ा कर दिखाना, लोगों के मस्तिष्क पर ग़लत प्रभाव डाल रहा है। वॉल स्ट्रीट जरनल में पिछले दिनों एक सर्वे छपा, जिसमें सोशल मीडिया के बुरे परिणामों में एक यह भी था, मीडिया में समाचारों का नकारात्मक प्रचार होता है, जिससे विश्व में असंख्य लोग अवसाद ग्रस्त हो रहे हैं और आत्महत्या करने वालों की संख्या इतनी बढ़ गई है, कि वह दिन दूर नहीं जब इस पर काबू पाना मुश्किल हो जाएगा। इसका सबसे बड़ा कारण नकारात्मक समाचारों को बार-बार दोहराना, बताया गया है। भारत में पूरे विश्व से पाँच गुणा अधिक लोग अवसाद के शिकार हैं और आत्महत्याएँ कर रहे हैं।

दूसरी तरह की मानसिकता जो उभर रही है वह और भी चिंताजनक है। श्वेत, अश्वेत, हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई सभी अपनी जाति को बचाने की होड़ में हैं और मानवता को भूलते जा रहे हैं। यह मानसिकता भाईचारा, प्रेम और सहृदता समाप्त करती जा रही है। शोचनीय विषय है, हम अपनी अगली पीढ़ी को किस तरह का समाज देने की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जिसमें रोज़ खूनखराबा हो या संबंधों से भरा प्रेममयी समाज। आप सभी सोशल मीडिया से जुड़े हैं, कृपया कुछ लिखने और किसी दूसरे का लिखा आगे भेजने से पहले कुछ देर ठहरिए और सोचिये, फिर बटन दबाइए! अभी आप बहुत कुछ सँभाल सकते हैं...।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

पुराने महलों में जाकर इस यथार्थ का पता चलता है कि वो सारे महल-चौबारे जो कभी रंगीनियों से भरे थे, आज वीरानी की चादर ओढ़े हुए हैं। हैरत इलाहाबादी ने शायद इसी के लिए कहा था- 'सामान सौ बरस का है पल की ख़बर नहीं'। अंतत: एक दिन सब कुछ पीछे छूट जाता है, चाहे महल हो या छोटी-सी झोंपड़ी।

मित्रनामा

एक संग्रहणीय अंक

गद्य विशेषांक मिला, पढ़ा, साहित्य की कुछ नई मान्यताओं से समृद्ध भी हुआ ख़ास तौर पर वसंत सकरगाए से बातचीत तथा गीताश्री के विस्मृति के द्वार से जो कहानियों की बोल्ड स्थापनाएँ एक एक कर निकलती हुई शॉक्ड करती चलती हैं। वाकई वे मुर्दा पौधों को पानी नहीं देतीं।

इस अंक की कहानियों को लें तो बाइज़्ज़त बरी का अंत चौंका गया। कंपनी घोटाले में पति और प्रेमी में एक की बेगुनाही स्पष्ट सीधे न होते हुए भी संकेत रूप में स्पष्ट हो गई और नायिका की पलकों की कोटर चू पड़ी। वाह, क्या ख़ूब अंत है कहानी का। रुके कदम में स्वरांगी बुआ और आदित्य भतीजे के विदेश व देश में श्रेष्ठता के बोध से ग्रस्त होने पर अवसाद की स्थिति से उबरने का वर्णन बाँधता है।

कहानी वसीयत में मिस अनीता शिमला में एकाकी होने की त्रासदी भोगती हुई अपने से छोटी उम्र के किराएदार अनिरुद्ध के प्रेम में पड़ जाती है और मरने से पहले उसके नाम संपत्ति कर जाती है। यहाँ भी प्रेम स्वीकार का अंत पाठकों को चौंका देता है। पंजाबी से अनूदित कहानी ज़ख्मी पंखों की फड़फड़ाहट भी एक रात अकेले पड़े ज़ख़्मी पति की मनोदशा का सटीक वर्णन हैं। किंतु सबसे अधिक प्रभावित करने वाली कहानी मुझे पुष्पा सक्सेना की 'जान की गिफ्ट' लगी। इसमें कोई भाषाई गुंझलपन नहीं, कोई व्यर्थ का शब्द विस्तार नहीं। जान की मृत्यु के बाद उसके प्रिय गिफ़्ट को लेकर सीधे मर्म पर प्रहार करती है।

व्यंग्य में मठ हाऊस की बातचीत और साहित्य कार बनने के नुस्खे गुदगुदा भी देते हैं और थपड़ा भी। एक संग्रहणीय अंक की बधाई।

-अमृतलाल मदान 1150/11, प्रोफ़ेसर कालोनी, कैथल- 136027

मोबाइल-9466239164

000

बहुत ही साहित्यिक एवं उत्कृष्ट

गद्य विशेषांक बहुत ही साहित्यिक एवं उत्कृष्ट है। विशेषकर गीताश्री की लेखन प्रक्रिया जानकर बहुत ही सुखद अनुभूति हुई। उनसे हुई दो मुलाक़ात आज भी याद हैं। हंस पत्रिका में भी उनकी कहानियाँ पढ़ी हैं।

अंक के लिए हार्दिक बधाइयाँ एवं धन्यवाद!

-उषा राजे सक्सेना

यू के

000

बहुत ही साहित्यिक एवं उत्कृष्ट

शिवना साहित्यिकी में छपी अदिति सिंह भदौरिया की "मन की तुरपाई" पर लिखी समीक्षा इतनी सटीक, तर्कसंगत व प्रभावशाली लगी कि मैं एक ही बार में समस्त पृष्ठों को शुरू से अंत तक बिना रुके ही पढ़ता चला गया। अदिति जी ने इस समीक्षा में अपनी कुशल विवेचन क्षमता व अनुपम लेखन शैली का उत्तम प्रदर्शन किया है।

आप अदिति जी को हमारी ओर से भी हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ प्रेषित कर दीजिएगा।

धन्यवाद !

-चरनजीत लाल, एपैक्स,

नॉर्थ कैरोलाइना

000

संपादकीय सटीक है

आपका संपादकीय सटीक है, एक कड़वा सच कहा है आपने। बहुत ही सही और सत्य कह दिया है कि विदेशों को ही अब तक मापदण्ड क्यूँ बना रखा है, हाँ हर क्षेत्र में? ख़ास कर कवि लोगों ने।

आपको बधाई।

-कृष्ण कांत पांडेय

000

रचनात्मक सूझबूझ

आप विभोम-स्वर को अपनी रचनात्मक सूझबूझ और मेहनत तथा लगन से काफी लोकप्रिय बना चुके हैं।

मेरी शुभकामनाएँ !

-ब्रजेश

000

जनवरी-मार्च 2023 अंक में छपी मीनाक्षी दुबे की कहानी 'एक बूँद समंदर' पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक श्री गोविन्द शर्मा तथा समन्वयक राजश्री शर्मा थे।

सच्ची कहानी

हरसूद डूब पर यह सच्ची कहानी है। जो लेखिका ने कलम से नहीं दिल से लिखी है।

स्वाभाविक है, मार्मिक तो है ही। मानव जीवन में अनेक दु:ख दर्द आते जाते रहते हैं। लेकिन ज़र-ज़मीन से हमेशा के लिए दूर होने का या कहें विवशता में छोड़ने का दु:ख स्थायी सा होता है। कभी वह स्वप्न बन कर दिल के किसी कोने में उभरता है, कभी स्मृतियों में। लेकिन जब इस दुख से घनीभूत होकर कोई अपना दुनिया ही छोड़ जाए तब यह दर्द मस्तिष्क के किसी कोने में स्थायी भाव बन कर देर डाल लेता है। हरसूद का विस्थापन दुनिया का बहुत बड़ा विस्थापन था। हरसूद के विस्थापन को मैंने अपनी आँखों से देखा है। अपने मित्रों के दर्द को सहा भी है। अत: वह बहुत स्थायी सा मेरे मन के पिछवाड़े भी कहीं न कहीं रहता है।

कहानी की इतनी भावुक कर देने वाली भाषा शैली बहुत कम देखने को मिलती है। इसलिए लेखिका को साधुवाद। कहानी में उन्होंने प्रकृति का आवश्यता अनुसार जो मिश्रण किया है वह अद्भुत है। "हम बच्चों के हाथ से छूट कर धूप के टुकड़े भी डूबने लगे" या "इस वीरानी में हम स्नेह का बिरवा तलाशते हुए थक जाते।"

इसी प्रकार कहानी में रिश्तों का भाव बोध भी पूरी ताक़त से उभर कर आया है जैसे "बस में जाओ और अपनी जगह ख़ुद बनाओ।" या विभिन्न विशेष दुख के अवसरों पर पिताजी का श्लोक या मानस की चौपाई पढ़ना। पिता की संस्कार शिक्षा का अनुपम उदाहरण कहानी में चित्रित हुआ है। कथ्य और भाषा की दृष्टि से शिल्प का गठजोड़ बेमिसाल है। कहानी में नदी सा प्रवाह है। विस्थापन की दशा, संवाद और दृश्यात्मकता को लेखिका ने जीवन्त कर दिया है। हर कोण से कहानी श्रेष्ठ

है, और पाठक के हृदय को छूती है। लेखिका ने लगता है कि कहानी को स्वयं जिया है। इस ख़ूबसूरत आकर्षक कथा के लिए, मीनाक्षी जी को अनेकानेक बधाईयाँ।

-श्याम सुंदर तिवारी, खण्डवा

000

गहरी संवेदनात्मक कहानी

बचपन से सुनते रहे हैं कि 'बूँद बूँद से घट भरे', हर एक बूँद महत्त्वपूर्ण होती है, चाहे चातक की प्यास बुझाने वाली, सीप में मोती बसाने वाली स्वाति नक्षत्र की एक बूँद हो, या मन की पीर को दिखाने वाली नैनों से छलकी एक बूँद, हर बूँद अपने आप में एक समंदर समेटे हुए होती है। आज की कहानी में लेखिका जी ने विस्थापन से पड़ने वाले प्रभाव की, एक क्षेत्र में, हर वय के लोगों के मानस पर एक गहरी संवेदनात्मक समीक्षा की है।

हरसूद के डूबने और क्षेत्रवासियों के विस्थापन और पुनर्स्थापना पर बहुत ही मार्मिक कृतियों का सृजन हुआ है और यह कहानी भी उस व्यथा को व्यक्त करने के अपने उद्देश्य में सफल रही है।

इस व्यथा से वस्तुत: हर महिला अधिक जुड़ाव अनुभव कर सकती है क्योंकि विस्थापन का दर्द हर महिला के जीवन का स्थायी भाव है। यद्यपि यह भी हर प्रकार की शुभता के लिए ही होता है लेकिन पीड़ा तो पीड़ा ही होती है और जो अनुभूत होता है वह कभी न कभी व्यक्त भी होता है।

कहानी प्रारम्भ से अंत तक मार्मिक है। आदरणीया मीनाक्षी जी के लेखन कौशल की ही परिणति इस उत्कृष्ट रचना के रूप में पाठकों के मन को, भावनाओं के समुद्र में गोते लगाने के लिए विवश कर देती है।

यथा स्थान मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ उनके भाव पक्ष को यथारूप प्रदर्शित करती हैं, क्योंकि रचनाओं के माध्यम से रचनाकार स्वयं ही प्रदर्शित होता है।

एक बूँद समंदर से सभी पाठकों के मन को भिगोने के लिए सुश्री मीनाक्षी जी को बहुत बहुत बधाई।

-गरिमा चवरे, रतलाम

000

हृदयस्पर्शी भाषा और प्रवाह

वीणा-संवाद पटल पर चर्चा हेतु प्रस्तुत बहन मीनाक्षी दुबे की हरसूद डूब पर केन्द्रित कहानी "एक बूँद समंदर" लोकप्रिय पत्रिका "विभोम स्वर" में प्रकाशित हुई है। कहानीकार मीनाक्षी दुबे हरसूद की बेटी हैं। मैं भी हरसूद का बेटा हूँ। इसलिए मीनाक्षी मेरी छोटी बहन है। आज उनकी कहानी पढ़कर हृदय द्रवित हो गया। आँखें नम हो गई। कहानी की एक-एक पंक्ति को पढ़ते हुए स्मृतियों में सुरक्षित हमारा हरसूद एक बार फिर डूबने लगा। बहन मीनाक्षी ने कहानी में डूब के पूर्व डूब जनित भय के दृश्यों को इस ख़ूबी से उकेरा है कि वह अरसा बीत जाने के बाद आज भी सिहरन पैदा कर रहे हैं। सपनों में पानी के दृश्य, दादी माँ की अपने हाथ से बनाए घर के प्रति चिंता, पिताजी की ख़ामोशी और उदासी (परिवार और बच्चों की मानसिकता को डूब के लिए तैयार करना), भाई-बहनों का बचपन, और शासन की हृदयहीन गतिविधियाँ आदि शब्द-चित्र डूब के पूर्व की हरसूद की दिनचर्या को चलचित्र की भाँति आकार दे रहे हैं। इस कहानी की विशेषता इसकी चित्रात्मकता है। प्रकारांतर से लगभग हरसूद के हर परिवार की स्थिति इसी तरह की ही रही है। यह कहानी हरसूद के घर-घर की कहानी है। मीनाक्षी के कोमल मन ने इस कहानी को यथार्थ के धरातल पर बहुत मार्मिकता से बुना है। और पूरे हरसूद का दुख एक कहानी में कह दिया है। कहानी के शिल्प में, डूब का यह कथ्य, कल्पना नहीं वास्तविकता की अभिव्यक्ति है। हरसूद डूब की त्रासदी को कहानी के माध्यम से असंख्य पाठकों तक पहुँचा कर मीनाक्षी ने विकास के पीछे छिपी विवशता, असहायता, शासन की हृदयहीनता, परिवार का बिखराव और डूबे शहर की खंडहरता को मुखरित किया है।

हृदयस्पर्शी भाषा और प्रवाह की यह कहानी देर तक और दूर तक हृदय पटल पर सुरक्षित रहेगी। मीनाक्षी की कलम ने ऐसा कमाल किया है कि हमें डूब के दुख के साथ हरसूद की यादों का सुख भी मिला है। और साथ ही एक आदर्श शिक्षक और मार्गदर्शक मीनाक्षी के पिता श्रद्धेय जयंत गौतम जी का उदार व्यक्तित्व आँखों के सामने उपस्थित हो गया है और मैं नतमस्तक हो गया हूँ।

रघुवीर शर्मा, खंडवा म.प्र.

000

मार्मिक कहानी

हरसूद डूब पर मार्मिक कहानी पढ़ी।

अपनी जन्म भूमि से विछोह की पीड़ा वही जानता है जिसने इसे भोगा हो। घर-आँगन, गलियाँ, चौराहे, स्कूल, खेत - खलिहान, नदियाँ, पेड़ ये सभी हमारे जीवन का अहम हिस्सा होते हैं। अनुभूतियों के संसार का डूब जाना जीवन का सर्वाधिक पीड़ा दायक अनुभव है।

इस कहानी में इसी दर्द को बारीकी से बुना गया है। नींद में भी जो विचार चौंका दे, सोच लीजिए कि वह भीतर कितनी गहराई से धँसा है।

पिता की सीख तो ढाँढस बँधाने का एक उपक्रम है जो उनके अनुभव और ज्ञान की बच्चों को देन है। बच्चे भले ही उस सीख से ऊबकर मुँह फेर लें या नाराजगी प्रगट करें लेकिन जीवन के किसी मोड़ पर पिता की वे बातें ही हमें राह दिखाती हैं। तभी संतानों को बड़ों के महत्त्व का ज्ञान होता है। यह बात इस कहानी में भी सिद्ध होती है।

कहानी की महीन बुनावट और चित्रात्मक शैली ने संवेदनाओं को जीवंत रखा है। रिश्तों की महत्ता और अपनों के आँसू का मोल जिसने पहचान लिया समझो उसने जीवन का सूत्र पा लिया हो।

एक बूँद समंदर-इस शीर्षक को कहानी सार्थक करती है।

-कुँअर उदयसिंह अनुज

000

मर्मस्पर्शी कहानी

विस्थापन क्या होता है? इसका दर्द बयाँ करती कहानी 'एक बूँद समंदर' मन को अन्दर तक भीगो गई। कहानी कार की लेखनी को नमन है। नल की टप-टप से कहानी को विस्तार देना बडा भाव पूर्ण है। बालिका के मानस में अनेक उठते प्रश्नों को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। अपना रैन बसेरा छोड़ना

कितना कष्टकारी होता है लेखिका मीनाक्षी जी ने बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कहीं टंकण त्रुटियाँ नज़र आई है। पिता का अनुशासन, दादी से पोती का स्नेह, दादी का दर्द, अधिकारियों का लेखा-जोखा लेने आना दादी-पोती को नागवार गुज़रना, प्रिय गाँव को डूब में आने से उत्पन्न सबकी मन:स्थिति को दर्शाती अत्यन्त मर्मस्पर्शी कहानी।

- सुषमा शर्मा इन्दौर

000

बेहतरीन लेखन शिल्प

कहानी पढ़कर लेखन शैली से अभिभूत हूँ। यह केवल विस्थापन के दर्द से भरी हुई एक रचना ही नहीं है अपितु इसमें दादी का दर्द, पिता की असहायता फिर भी हार न मानने की ज़िद...बच्चों को लगातार रामायण गीता के उद्धरणों से समझाते वे ख़ुद कितना बड़ा युद्ध लड़ रहे थे।

एक स्थान पर लेखन कला अचंभित कर देती है। जब दादी अपना ग़ुस्सा नाप- जोख करने वालों पर निकाल रही होती है, तब पिताजी कहते हैं कि यह तो होना ही था और स्वयं अपनी लिखा-पढ़ी में लग जाते हैं जैसे उन्हें कोई असर ही न हो रहा हो। अगले दिन लेखिका अनुमान लगाती हैं कि क्योंकि रिज़ल्ट शीट पर कोई पानी की बूँद गिर गई होगी इसलिए पिताजी बच्चों की रिज़ल्ट शीट फिर से बना रहे थे। जितना दर्द विस्थापन का सबको था पिताजी को उससे कहीं अधिक था पर वह तो खुलकर ज़ाहिर भी नहीं कर सकते थे।

घटनाओं को कहानी के बीच में इस तरह से पिरोया गया है कि पढ़ने वाला स्वयं विस्थापन के दर्द को जीने लगता है। एक मध्यमवर्गीय परिवार के सहज साधारण जीवन का भी ज़िक्र बहुत ही सुंदरता से किया गया है। कहानी के प्रारंभ में जब लेखिका को सपना आता है जिसमें वह कई चीज़ों के डूबने का ज़िक्र करती हैं जिसमें उनके भाई बहनों के हँसी ठहाके चुटकुले कहानी पहेलियाँ, ओटले पर बैठे हम सब बच्चों के हाथ से गुनगुनी धूप के टुकड़े सभी डूब रहे थे।

यह जो सिंबॉलिक प्रयोग किए गए हैं वे कहानी में विस्थापन के दर्द को गहरा तो करते ही हैं साथ ही साथ लाजवाब लेखन शैली का उदाहरण भी बनते हैं।

व्यक्तिगत रूप से चाहे किसी ने विस्थापन का दर्द न झेला हो परंतु लेखिका ने जिस कमाल से इस कहानी को लिखा है हर पढ़ने वाला उस दर्द को शिद्दत से महसूस ज़रूर करेगा। बेहतरीन लेखन शिल्प के लिए मीनाक्षी दुबे को बधाई।

-रश्मि स्थापक

000

शिल्प और प्रवाह बेजोड़

एक बूँद समन्दर विस्थापन के कष्ट को झेलती अत्यंत भावुक कर देने वाली मार्मिक कहानी है, जिसे पढ़कर उस दर्द को महसूस किया जिसे भोगा नहीं है। कहानी की लेखन शैली इतनी सहज और उत्कृष्ट है कि हर दृश्य आँखों के आगे चित्रित हो गया है।

किसी को भी अपना गाँव घर, परिवार, मोहल्ला, जहाँ उसने अपना बचपन गुज़ारा हो, अचानक ही हमेशा के लिए छोड़ना पड़े उसकी पीड़ा शब्दों में बयान करना मुश्किल है। विस्थापन का दर्द पूरा परिवार जिसमें वृद्ध दादी से लेकर पिता, भाई, बहन, मासूम बच्ची तक ने भोगा जो अत्यंत कष्टदायी है। वह बच्ची जो दुखी है पर उसके पिता किस तरह नवीन परिस्थितियों से एकसार होने के लिए अनुशासन संस्कार का पाठ पढ़ा रहे हैं उसको अनुभव कर रही है।

गीता के श्लोक, रामायण की चौपाई, के माध्यमों से पिता परिवार को पुराने घर का मोह छोड़ने की शिक्षा देते हैं पर स्वयं भी मोह से बँधे हैं। पुराने घर का दरवाज़ा उनके मोह को व्यक्त करता है।

कहानी का शिल्प और प्रवाह बेजोड़ है इसके लिए लेखिका को बहुत बहुत बधाई। कहानी का लक्ष्य विस्थापितों के दुख और विस्थापन पश्चात आए परिणाम से उत्पन्न सुख से उपजे संतोष से कहानी का मर्म हदय में सीधे उतर जाता है।

बूँद की आवाज़ और सपने से शुरू हुई इस कहानी से हदय में विछोह के दुख दर्द का अथाह सागर हिलोरें लेने लगा। कुल मिलाकर कहानी हर दृष्टि से उच्च कोटि की है। लेखिका मीनाक्षी दुबे को बहुत बहुत बधाईयाँ।

-माधुरी मालपाणी

खंडवा मध्य प्रदेश

000

दिल में उतरती कहानी

विस्थापन का दर्द कैसा होता है, इस कहानी ने सचित्र कर दिया है। अत्यंत भावपूर्ण कहानी है। इसे पढ़कर वे भी द्रवित हुए जिन्होंने यह सब देखा, भुगता नहीं है।

अपने घर, परिवार, मोहल्ले, गाँव और सम्पूर्ण परिवेश, जहाँ एक उम्र गुज़ारी हो, जहाँ बचपन खेल रहा हो, उसे अचानक हमेशा के लिए छोड़ना कितना कष्टदायी होता है, यह छोटी बच्ची, उसकी दादी, पिताजी, भाई बहन सबके माध्यम से सामने आया है।

इस कठिन परिस्थिति से जब वह किशोरी बच्ची अवगत होती है, तब अपने अनुशासन प्रिय पिता के वास्तविक रूप को भी पहचान लेती है। अपरोक्ष रूप से अनुशासन की आड़ में पिता उनकी ज़िंदगी को सरल बना रहे हैं और अपनी राह ख़ुद खोजने के लिए दिशा दे रहे हैं।

गीता के श्लोक, रामायण की चौपाई, के माध्यमों से पिता परिवार को पुराने घर का मोह छोड़ने की शिक्षा देते हैं पर ख़ुद भी उस मोह से बंधे हैं। नए घर में पुराने घर का दरवाज़ा उनके मोह को व्यक्त करता है।

मुआवज़े के लिए मकान की नाप जोख, अधिकारियों का आना, दादी और पोती को कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

अत्यंत मर्मस्पर्शी, भावों में बहती, सीधे दिल में उतरती कहानी। सागर बनी बूँद पानी नहीं अपितु विस्थापित लोगों की आँखों के अश्रुबिंदु हैं।

-शशि शर्मा इंदौर

000

कसी हुई भाषा

कहानी एक बूँद सागर बहुत ही भावपूर्ण कहानी है और दिल में गहरे तक उतर जाती है, इस एक बूँद का सागर दिलों को भिगो देता है। ये कहानी विस्थापन का दर्द झेल चुके उन तमाम लोगों की आपबीती है जो आज भी डूब

में आए हरसूद को ख़ासतौर पर देखने जाते हैं और वहाँ अपने जीवन के निशानों को ढूँढ़ते हैं। इसमें पिता द्वारा बेटी को अनुशासन में रखना बताता है कि पतंग की डोर जितना खींचकर रखते हैं वो उतनी ही ऊपर जाती है। पिता के दिल का दर्द काग़ज़ पर गीले होकर धुँधले हो गए शब्दों के माध्यम से सांकेतिक रूप में बेहतरीन बताया है, और इस एक बूँद से ही पिता के दिल में सागर के समान अथाह दर्द ज्ञात होता है। कसी हुई भाषा, सांकेतिक रूपों में वर्णन, एक सार्थक संदेश के साथ कथा बहुत सुंदर बन पड़ी है। उच्च स्तरीय कथा पढ़ने का अवसर मिला, इसके लिए दिल से धन्यवाद।

-अर्चना गार्गव शर्मा, भोपाल

000

सुंदर कहानी

कहानी एक बूँद सागर विस्थापन के दर्द को बयाँ करती, जीवन के दो सत्य को उजागर करती है।

जीवन में व्यक्ति जितने अभाव झेलते हैं और अनुशासन में रहते हैं उतने ही निखरते हैं, कहानी की नायिका का जीवन इसका उदाहरण है। जगत् में कोई भी परिवर्तन होता है तब एक तूफ़ान सा आता है जो लेखिका ने बच्ची के सपने के माध्यम से बताया है। जब पूर्ण रूप से नया निर्माण हो जाता है तब तूफ़ान शांत हो जाता है, और सारे दुख, अभिलाषाएँ, स्नेह की धारा, संगी साथी, छूटने का दर्द सागर में समा जाता है और वह इन्हे सहेज लेता है।

भाषा सुंदर, सहज और सरल है। इतनी सुंदर कहानी को पढ़ने का अवसर प्रदान करने के लिए आप सभी का बहुत-बहुत धन्यवाद आभार।

-संध्या पारे, रायगढ़

000

मर्म स्पर्शी दास्ताँ

जब स्वप्न में हरसूद शहर के डूबने की चित्रात्मक छवियाँ दिखने लगे तो समझा जा सकता है की अपने जन्म स्थान से विस्थापन का दर्द क्या होता है। जब डूब के दृश्य मन:स्थितियों में दाखिल हो जाएँ तो वह स्वप्न में भी जब तब दिखाई देने लगते हैं। यह त्रासद स्थिति डूब से प्रभावित हर परिवार की है, जो लेखक ने कहानी में चित्रित की है। कैसे बूँद बूँद नल से टपकते पानी की टप-टप ध्वनि भयावह हो जाती है। यह डूब प्रभावित, विस्थापित परिवार का अनुभूत सच है, जो परत दर परत उम्र के साथ और सघन होता जाता है। वह बूँद सागर की तरह सबको अपने आगोश में ले लेता है। स्मृतियों में क़ैद हो जाते हैं, बालमन की जिज्ञासाएँ, पेड़ों की घनीभूत छाँव, रिश्ते नाते संबंधों की ठाँव छीन जाती है, मंदिर का शिखर, घंटियों की गूँज, अज़ान की पुकार, मौन हो जाती है। इनका कोई मुआवजा नहीं मिलता। यह दर्द हर विस्थापित का साझा दर्द है। पिता का व्यक्तित्व नारियल की तरह होता है, किंतु बाहरी आवरण कठोर होने के बावजूद उनका भीतरी मन नरम होता है। यह हमें तब समझ आता है, जब हम दुनियादारी से जूझते हैं और विषम परिस्थितियों में भी हम अपनी जगह ख़ुद निर्मित कर लेते हैं। लेखक ने कहानी में पिता के इसी भाव को उनके व्यक्तित्व को वर्णित किया है, जो विस्थापन का दर्द झेलती किशोर मन की पुत्री को वयस्क होने पर समझ आता है।

यह स्मृतियों में दर्ज वह अश्रु बूँद है, जो समुद्र की तरह खारा स्वाद लिए है।

हरसूद डूब पर केंद्रित यह कहानी हर विस्थापित परिवार की यह मर्म स्पर्शी दास्ताँ है।

- अरुण सातले, खण्डवा

000

बढ़िया रचना

डूब का मंज़र आज भी दिलों में ज़िंदा है। विस्थापन का आंशिक चित्रण सपनों में आ कर भयभीत करता है। एक गहरी टीस चुभती है जिसे आत्मसात् किया जा चुका है लेकिन स्वीकार नहीं किया गया। एक पौधे को अगर जड़ से उखाड़ कर अन्य स्थान पर लगा दिया जाए, या तो वह मर जाता है या फिर पहले मुरझाता और शनै:-शनै: उस ज़मीन को मात्र जीवन के लिए मजबूरी में आत्मसात् कर लेता है।

मीनाक्षी जी ने अपने स्वप्न के आने वाले प्रत्येक नकारात्मक परिणाम को संस्मरण के रूप में ढाल कर पूरे परिवार के हर सदस्य की आप बीती को कहानी का भाव दे दिया। नलके से बूँद का लगतार टपकना अपशगुन माना जाता है। वो ही कथानक ले कर ताना बाना बुना गया है।

आज खंडवा शहर नर्मदा जी के जल से जीवन जी रहा उसमें विस्थापितों का सुख और दुख दोनों ही मिश्रित हैं। लाइफ लाइन नर्मदा का फैलाव ज़रूरी था, जो प्राकृतिक रूप से सुविधाओं मुहिया कराने के लिए प्रतिबद्ध हुआ और अनेक परिवारों का बिखराव और अन्य स्थानों पर जा कर नए सिरे से शुरुआत करने का साहस आपकी कहानी में मर्म की अनुभूति करवाती है।

एक बूँद जो समंदर का रूप ले लेने के लिए लगातार संघर्ष करती रही जो उसकी नियति बन गई। अनेक लेख, कहानी, संस्मरण लिखे गए और अपने जन्मस्थान कर्म और धर्म भूमि को छोड़ने का दुख सबका दुख बन गया।

मीनाक्षी जी का लेखन एक विश्लेषण है मानव मन का, रिश्तों के बिखराव का, दादी माँ की पीड़ा का, वनस्पति के नष्ट होने का। मुआवजे को इन सबका प्रतिफल नही माना जा सकता। अत्यंत ही मार्मिक और सधा हुआ लेखन। पाठक को जोड़ कर रखना ही लेखक की सफलता होती है। संयोजक और समन्वयक द्वय को साधुवाद इतनी बढ़िया रचना को समक्ष रखने के लिए। चिंतन और चिंता दोनों ही पक्ष पर लिखने की प्रेरणा देने के लिए।

- डॉ. रश्मि दुधे

000

टूटन की कहानी

एक बूँद समंदर टूटन की कहानी है। घर का टूटना, पुरुषों का, महिलाओं का, बच्चों का, गाँव के प्रत्येक रहवासी का टूटना, यहाँ तक कि पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, कीट तक की व्यथा इस कहानी के कहे-अनकहे में कह दी गई है। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, तुलसी, सुदामा, निर्धनता से टूटे थे किंतु इस कहानी के पात्र संपत्ति का मुआवज़ा पाकर भी टूटते हैं। गाँव का डूबना सिर्फ गाँव का डूबना नहीं

अपितु अनगिनत जीवन का, स्मृतियों का डूब जाना है। हज़ारों जीवन के जाने कितने पल इस डूबे हुए गाँव में समाधिस्थ हैं अन्यथा कौन जाता है डूबी हुई बस्ती में अपना घर खोजने? कौन बार बार लौटता है बर्बाद हो चुकी बस्ती में?

कहानी की जितनी तारीफ़ की जाए कम है। प्रत्येक स्तर पर श्रेष्ठ यह कथा बार-बार हृदय को छूती है।

बस कहानी पढ़ते हुए संस्मरण पढ़ने की अनुभूति होती है। इसका शिल्प और सघन हो सकता था।

-शैलेन्द्र शरण

सह-संपादक शिवना साहित्यिकी

000

बड़ी कहानी

भाव समुद्र से गहरा कुछ नहीं होता। अनुभवों की नदियाँ उसमें आकर मिलती है और उसे तदनुसार खारा या मीठा बनाती है। बचपन की एक मनो ग्रंथि को लेकर चली यह हृदयस्पर्शी कहानी विस्थापित, प्रतिस्थापित हर जन के मन को गहरे तक छूती हुई उद्वेलित कर जाती है। डूब पर अनेकानेक कहानियाँ, कविताएँ, आलेखों, निबंधों द्वारा गम्भीर साहित्य की रचना की गई है।

पिता पुत्री के रिश्ते सदा से ही अमूल्य होने के साथ किसी न किसी स्तर पर अपरिभाषित रह जाते हैं। एक बूँद समंदर में पुन: एक नए सिरे को चुन मीनाक्षी जी ने पुन: इस रिश्ते को नए तरीके से परिभाषित किया है।

डूब का भयावह मंजर बच्ची के स्वप्न जैसे आपस में गुँथ कर आगत का संकेत देते चलते हैं और अपनी दादी से गहरे तक जुड़ी थी ये पोती। डूब के हादसे को दादी सह नहीं पाती। जैन मुनियों सा 'संथारा' ले वे भवसागर के दूसरे छोर पर पहुँच बूँद बन जाती हैं, पोती इस छोर पर उस याद रूपी बूँद को समंदर में तब्दील होते देखती है।

पिता एक नन्ही बच्ची के सँग ये कथा भी उम्र, मन:स्थिति रिश्ते, नज़रिए और अनुभवों में ये कहानी भी बड़ी होती जाती है, जीवन भर पिता से असहमत, नाराज़, ग्रंथियों को पाली बेटी वापस डूबे गाँव को देखने पिता के साथ पिता की सोच को सिरे पाकर उन्हें समझ जाती है और अंतत: अपना परम पा जाती है।

-राजश्री शर्मा

खण्डवा

000

मीनाक्षी जी की कहानी डूब की उस व्यथा को बताती है जिसे हमने केवल महसूस ही किया है किन्तु देखा नहीं है। विस्थापन का दर्द इतने समीप से देखना उसे महसूस करना बहुत ही संवेदनात्मक है।

भारतीय पारिवारिक पृष्ठभूमि को इतने सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है कि ये हमारे ज़माने की याद दिलाता है जब संयुक्त परिवार में संस्कारों के साथ अपने माँ-पापा, दादी के लिए कितना अधिक प्यार होता था।

बचपन में हम सभी को लगता है कि पिता का अत्यधिक अनुशासित होना हमारे लिए कितना कठोर दंड समान है। किन्तु जब हम अपने अनुभवों से सीखते हैं और अपने आपको उस पैमाने पर रखते हैं तभी सत्य का भान होता है।

कहानी पूरी तरह से बाँधकर रखती है। किन्तु बहुत जगह टंकण में त्रुटियाँ हैं जैसे बहुत जगह अनुस्वार का प्रयोग नहीं किया गया किसी की तरफ देखने को "ओर" के रूप में लिखा जाना चाहिए था।

कुल मिलाकर कहानी बचपन की छोटी सोच से बड़ी होते हुए परिपक्व हो जाती है और नायिका को समझ आ जाता है कि उसके पिता ने अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए ही इतना अनुशासित रूप रखा था।

कहानीकार को साधुवाद।

-मनीषा अग्रवाल 'रक्स'

इंदौर मध्यप्रदेश

000

चित्रात्मक शैली

अपने हाथों अपना आशियाना उजाड़ने की मजबूरी, दुख औऱ टूटन के बाद भी इतनी नैतिकता और आस्था तो शेष थी कि धर स्थलों को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया

उक्त पंक्तियों से कहानीकार मीनाक्षी जी की कहानी एक बूँद समंदर की मूल भावना के दर्शन हो जाते है, बड़ा कठिन हो जाता है छोड़ना उसे जो आत्मा की गहराइयों तक जड़ जमा चुका होता है दर्द व दु:ख की भीगी अंतर्मन अनुभूति को बयाँ करना जटिलता का हस्ताक्षर होता है जहाँ से केवल स्मृतियों का पुलिंदा उम्र भर साथ रहने वाली मनोदशा को रेखांकित करता हैं।

एक बूँद समंदर उसी मनोदशा का शब्दमय पुलिंदा है जहाँ लेखिका ने बहुत ही सुलझे ढंग से मात्र प्रस्तुत भर किया है। समंदर को एक बूँद कह देना मात्र शीर्षक नहीं वरन कहानी में छिपे आँसुओं का नामांकरण है।

लेखिका ने कहानी को आरंभ से ही पाठक को बाँध रखा है

ओह्ह....!! फिर वही सपना, वही तकलीफ़...मैं अपने आप को सपने की गिरफ़्त से छुड़ाने की कोशिश में लग गई।

हृदयतल पर दस्तक देती भावविभोर कर देने वाली कहानी में लेखिका ने कई चित्र उकेर दिए है..एक बालिका की मनोदशा की अँगुलियों को थामे कहानी आगे बढ़ती है जहाँ पिता, पुत्री के रिश्तों की मज़बूती को पैनी दृष्टि से शब्दों में उतारने में सफल हुई मीनाक्षी जी मार्मिक शैली से दर्द को शब्दावली में गढ़ दिया है।

कहानी की रोचकता को जीवित रखने में मीनाक्षी ने विस्थापित तथ्यों की वस्तुपरक उपस्थिति को प्रभावशाली व देर तक सोचने की अन्तर्दशा का चित्र सा खींच दिया है।

मानवीय संवेदनाओं को अपने इर्दगिर्द समेटकर रखती एक बूँद समंदर कहानी चित्रात्मक शैली का बेजोड़ उदाहरण है।

-सन्तोष चौरे चुभन

000

भावपूर्ण कहानी

कहानी एक बूँद समंदर एक भावपूर्ण कहानी है।

नल की टप टप से सैलाब तक की कहानी है एक बच्ची के अंतर्मन में समाई हुई कहानी है।

विस्थापन का दर्द जिन्होंने झेला है, उसे शब्दों में बयाँ नहीं किया जा सकता है, एक परिवार ही नहीं, कई गाँवों को यह दंश झेलना पड़ा है, जिस घोंसले को बनाने में पीढ़ियाँ

गुज़र गई, उसे एक पल में छोड़ कर जाना है, बहुत मार्मिक व संवेदनशील कहानी है।

साथ ही एक छोटी बच्ची का अपनी दादी से प्रेम, व उनके दर्द को करीब से देखना, बुज़ुर्गो के लिये यह दर्द इतना कष्टदायक था, की वे वहाँ से जाने के बजाए अपने प्राण त्याग देती है।

एक बच्ची का उसके पिता द्वारा कड़ा अनुशासन व सीख, उनकी फटकार उसे अपने पिता के ख़िलाफ़ ही विद्रोह के लिये उकसाते हैं, उसे उनकी हर बात में नुक्स नज़र आता है।

पर जब वह बड़ी होती है, उसे अपने पिता की हर सीख का प्रसाद, सफलता के रूप में मिलता है, तब उसे अपनी ग़लती का अहसास होता है। आज बरसों बाद वही छोटी बच्ची इतनी बड़ी हो गई है, कि अपने बच्चों व परिवार के साथ नाव से उसी गाँव में पहुँचती है, आज अपने पिता को ख़ुद के बच्चों को अपना गाँव व बचपन से जुड़ी यादें व दादी को याद करते हुए, चुपचाप रोते हुए देखती है, तब मन का सारा मैल धूल जाता है।

इस डूब में जो अथाह सागर फैला है वह तो दिखाई देता है पर एक पिता अपने अंदर जो बूँदों का सागर समेटे बैठे है, वो हमें नारियल की याद दिलाता है, जो ऊपर से कठोर है पर अंदर से एक मीठा पानी है, जिसे सिर्फ महसूस ही किया जा सकता है जो कभी कभी ही छलकता है।

-उमा चौरे

इंदौर

000

दर्द की दास्तान

एक बूँद समंदर, जैसे सीपियों की ओट में पल रहे अनमोल मोतियों के दर्द की दास्तान हो, जैसे प्रात: काल में देखे गए दु:स्वप्न के सच होने का भय हो, जैसे जल की एक सूक्ष्म बूँद विध्वंस की समस्त सीमाएँ पार कर दे, कुछ ऐसे ही गहन दु:ख से अपने अंतर्मन की पीड़ा को मीनाक्षी जी ने एक बूँद समंदर के रूप में स्वयं जिया है।

हरसूद डूब की वेदना एवं विस्थापन का दर्द लोगों के हृदय में आज भी कहीं ना कहीं गहराई में छुपा है। हरसूद मेरा भी कार्यक्षेत्र रहा है अत: मैं भी लेखिका की तरह इसकी यादों को विस्मृत नहीं कर पाऊँगी। वही सपना आज फिर आया उसी कष्टदायक, दुखद स्वप्न के इर्द गिर्द ही पूरी कहानी शुरू से अंत तक निरंतर पाठक को बाँधे रखने की पूर्ण क्षमता रखती है, कहानी एक संयुक्त परिवार की सबसे बुज़ुर्ग सदस्य से परिजनों के जुड़ाव को तो दर्शाती ही है, साथ ही अपनी जन्मभूमि, कर्मभूमि, और अपनी जड़ों से अलग होने के कष्ट का भी मार्मिक चित्रण करती प्रतीत होती है।

एक तरफ दादी अन्न जल त्यागने को मजबूर है, वहीं दूसरी तरफ पिता का उस विकट स्थिति में भी स्वयं से ना हारने, और विस्थापन के दंश को झेल जाने की कला को अद्‌भूत ढंग से लेखिका ने उकेरा है। माता पिता के संस्कार, उनका अमूल्य प्रेम, स्नेह, सहयोग, विश्वास, और आपसी सामंजस्य बहुत ही बेहतर ढंग से दर्शाया है। माटी को आकार देता कुम्हार जिस तरह एक सुंदर कुंभ का निर्माण करता है बस लेखिका ने भी एक छोटी सी बूँद से समंदर रच दिया है। आत्म समर्पण की ये कहानी प्रत्येक पाठक को आत्मावलोकन हेतु बाध्य करती है, और यही इस कहानी को विशेष की श्रेणी में लाती है। रामायण की चौपाई गाते पिता हों या दर्द की पराकाष्ठा झेलते हुए वृद्ध दादी माँ हों, अथवा अपने सभी भाई, बहनों, बुआ के साथ संवाद स्थापित करती स्वयं लेखिका हों सभी अत्यंत मार्मिक चित्रण के साथ मस्तिष्क पटल पर अपनी छाप छोड़ते हैं।

रचना को प्रारंभ से अंत तक जीवंत बनाए रखा यह इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा। प्राकृतिक बदलाव जहाँ उद्‌देश्यपूर्ण, और लाभप्रद साबित हुआ और सच में एक बूँद ने समंदर रचकर कई कल्याणकारी योजनाओं को जन्म दिया वहीं, उसी एक बूँद ने समंदर तो रच दिया किंतु वही बूँद स्वयं की प्यास नहीं बुझा सकी और जन्मों तक अपने विस्थापन के इस त्रास को, पीड़ा को झेलती रहेगी।

अत्यंत ही मार्मिक चित्रण, सशक्त लेखन एवं अत्यंत विस्तृत दृष्टिकोण के साथ स्वयं समंदर की लहरों की तरह अनवरत अभिव्यक्ति हेतु मीनाक्षी जी को हार्दिक बधाई।

संयोजक एवं समन्वयक को भी हृदय से धन्यवाद एवं विशेष आभार।

-कल्पना दुबे

खण्डवा मध्यप्रदेश

000

बहुत अच्छी कहानी

आज नर्मदापुरम से खंडवा की वापिसी यात्रा में उक्त कहानी को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और हरसूद डूब के समय की सारी सुधियाँ एक साथ ताजा हो गई। तब का हर दृश्य चलचित्र की तरह मन पटल पर चलने लगा।

अनिश्चित भविष्य, निराश आँखें, उदास मुखड़े, धूल के गुबार, दुखी मन और भीगी आँखों से अपने ही घरोंदों पर कुदाल, छैनी चलाते लोग, नए नीड़ों की तलाश में आसपास के गाँव-शहरों की खाक छानते परिवार प्रमुख, चबूतरों पर ख़ुद ही बेसहारा से बासी सिंदूर लपेटे बैठे देव, उदास सी आरती, अज़ान सब कुछ दुखद। हँसता-गाता शहर मुस्कुराना तक भूल गया।

मीनाक्षी दुबे ने डूब की इन सारी ही व्यथाओं को बड़ी ख़ूबसूरती और पूरे मन से कहानी के साँचे में ढाला है। कहन का ढंग बहुत ही सहज, सुंदर है और कहानी बहुत मार्मिक बन पड़ी है। इस उम्दा कहानी के लिए उनको बहुत-बहुत बधाई और संयोजक एवम् समन्वयक को साधुवाद।

हाँ, डूब की यादों के साथ तब के एक गीत की पंक्तियाँ याद आ रही हैं, साझा कर रहा हूँ-

डूब क्षेत्र से हम आए हैं
डूब गई माटी की ख़ुशबू
बचपन की पहचानी गलियाँ
संबंधों के हरे बगीचे
सुधियों की मनभावन कलियाँ
परिचय, पहचानों के झोले
आते वक्त गुमा आए हैं.....

-प्रदीप दुबे

000

साक्षात्कार

एक लेखक को उसी के बारे में लिखना चाहिए, जिसको वह जानता है, समझता है

वरिष्ठ कथाकार हरि भटनागर से शिवना साहित्यिकी के सह-संपादक आकाश माथुर की बातचीत

हरि भटनागर
197, सेक्टर बी, सर्वधर्म कॉलोनी
कोलार रोड, भोपाल-462042 (मप्र)
मोबाइल- 9424418567
ईमेल- haribhatnagar@gmail.com

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, ज़िला
सीहोर, मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

'सग़ीर और उसकी बस्ती के लोग', 'आँख का नाम रोटी', 'नाम में क्या रखा है' और 'बिल्ली नहीं, दीवार' कहानी संग्रहों, 'एक थी मैना एक था कुम्हार' तथा 'दो ग़ज ज़मीन' उपन्यासों के लेखक, 'रचना समय' के संपादक, पूश्किन सम्मान, राष्ट्रीय श्रीकान्त वर्मा पुरस्कार से सम्मानित कथाकार हरि भटनागर से शिवना साहित्यिकी के संपादक आकाश माथुर की यह विशेष बातचीत।

आकाश माथुर- हरि जी मैं सबसे पहले आपसे "रचना समय" के बारे में जानना चाहूँगा। इस तरह की पत्रिकाएँ निकालने में किस तरह की समस्याएँ सामने आती हैं?

हरि भटनागर- "रचना समय" विश्व के महान् रचनाकारों के अवदान पर केंद्रित पत्रिका है। मान लें जैसे मैंने मार्केस पर विशेषांक प्लान किया तो मार्केस की कहानियाँ, छोटे उपन्यास, मार्केस से विभिन्न कला अनुशासनों के रचनाकारों से बातचीत, मार्केस की डायरी, पत्र और मार्केस के रचना कार्य का आलोचनात्मक आलेख। इस तरह हम प्लान करते हैं और शीर्षस्थ रचनाकारों से अनुवाद करवाते हैं। अनुवाद ऐसा हो जो रचनाकार की सोच को, उसकी आत्मा को व्यक्त कर दे। ऐसा न हो कि अनुवाद अपठनीय हो, अर्थ का अनर्थ अलग हो जाए। तो, सबसे पहली समस्या अनुवाद कार्य की होती है अनुवाद अच्छा हो गया तो समझ लीजिए पत्रिका अपने मंतव्य में खरी हो जाएगी। ज़्यादा दिक़्क़त अनुवाद की होती है। उसके बाद बात पत्रिका के लेआउट, सज्जा की होती है। पत्रिका को चित्ताकर्षक होना चाहिए। प्रस्तुति ऐसी हो कि सब ख़ुश हो जाएँ। उसको उठाने का मन हो। पढ़ने का मन हो जाए।

आकाश माथुर- आपको रशियन लेखन पसंद है। आप किन रशियन साहित्यकारों को पसंद करते हैं और क्यों?

हरि भटनागर- आकाश भाई, मुझे सिर्फ रूसी लेखक ही पसंद हैं, ऐसा नहीं है। कई सारे रूसी रचनाकार मुझे पसंद हैं, यह सच है। लेकिन रूस के बाहर के बहुत सारे रचनाकार हैं, जो मुझे बहुत पसंद हैं। लेव तोलस्तोय, दोस्तोयेव्स्की, अंतोन चेखव, गोर्की मुझे ज़्यादा पसंद हैं। उनकी लेखन शैली और बयान का अंदाज़ और विवरण मुझे ज़्यादा पसंद आता है। कहते हैं कि कहानी सिर्फ अंत में ही होती है, मेरा कहना इसके उलट है। कहानी का अंत तो एक औपचारिकता होती है किंतु इसके पूर्व जो विचार हैं, डिटेल्स हैं वे कहानी होते हैं। उनका महत्त्व ज़्यादा होता है। ठीक उसी तरह जैसे आप किसी महल में जाएँ और महल का हर हिस्सा आपको आकर्षक लगे। कहानी को भी महल की तरह होना चाहिए। मुझे हेमिंग्वे पसंद हैं, ओ हेनरी, मार्केस, फ्रेंज काफ्का, मोपासां, अल्बैर कामू भी पसंद हैं और ये सब रूसी नहीं हैं, बल्कि विभिन्न देशों के हैं। चीनी रचनाकार लू शुन ने भी मुझे ख़ासा प्रभावित किया है। एमिल जोला, सरवांतीस को मैं बार-बार पढ़ना चाहता हूँ। मुझे मुंशी प्रेमचंद और मंटो और सरशार पसंद हैं। विक्टर ह्यूगो का उपान्यास लेस मिजरेबल भी खूब पसंद हैं।

आकाश माथुर- रशियन और हिन्दी साहित्य तथा साहित्यकारों में क्या अंतर है?

हरि भटनागर- देखिए, रचनाकारों में फ़र्क करना बड़ा मुश्किल काम है। हर रचनाकार की अपनी तर्जे तहरीर और उसका कहन होता है। आप जितना ज़्यादा जीवन से गहरे जुड़े होंगे। आपके लेखन में उसका असर दिखेगा। समय से आपकी मुठभेड़ कैसी है यह प्रश्न महत्वपूर्ण होता है। एक छोटी सी कहानी में ब्रह्माण्ड समा सकता है, नहीं तो हज़ारों, करोड़ों पेज व्यर्थ होंगे और बात नहीं आ पाएगी। आप समय को किस तरह ऐतिहासिक क्रम में लेते हैं कि वह रचना एक समय की होते हुए हर समय की हो जाए।

आकाश माथुर- इन दिनों साम्प्रदायिकता बढ़ रही है। इसके ख़िलाफ़ एक लेखक को किस तरह खड़े होना चाहिए?

हरि भटनागर- इन दिनों क्या, मंटो, प्रेमचंद के समय भी साम्प्रदायिक विद्वेष चरम पर था। कोई लेखक जब साम्प्रदायिकता पर लिखता है तो मुख्य बात दृष्टि की होती है। एक उथला लेखक साम्प्रदायिक मुद्दों के लिए व्यक्ति को दोषी करार देगा। जबकि दृष्टि सम्पन्न रचनाकार

उन कारकों को चिह्नित करेगा जो आदमी को आदमी के स्तर से नीचे गिरा रहे हैं। आदमी जहाँ सिर्फ लाचार होता है। क्रूर स्थितियों के दबाव में। उस वक़्त हमें आदमी पर ग़ुस्सा नहीं वरन करुणा पैदा होती है और यह प्रश्न होता है कि आदमी को आदमी न होने के पीछे ऐसी हैवानी शक्तियों का निर्माता कौन है? वह व्यवस्था है जिसका साँचा ख़राब है। बात को समझने के लिए मंटो की 'सरीफन' कहानी का निचोड़ रख रहा हूँ। सरीफन कहानी का पात्र घर में दाखिल होता है तो देखता है उसकी जवान लड़की और उसकी माँ आदमज़ात नंगी पड़ी हैं। शरीर पर कोई वस्त्र नहीं हैं। उनके साथ दुष्कर्म हुआ है यह देखकर वो बौखला जाता है। उसका दिमाग़ बेक़ाबू हो जाता है और वह गड़ांसा उठा लाता है और घर के बाहर निकल पड़ता है। और जो भी आदमी उसे दिखता है वह गड़ांसे से उसे काटता है। बीच रास्ते में वह किसी पत्थर से टकरा कर गिर जाता है। उसे लगता है उस पर किसी का वार होने वाला है, लेकिन सामने कोई न था। आख़िर में वह क्रोध में उबलता रास्ते में लोगों को मारता, ख़त्म करता एक घर के सामने आ खड़ा होता है। वह गड़ांसे से दरवाज़े पर टहोका देता है। थोड़ी देर में एक जवान लड़की दरवाज़ा खोलती है। वह शख़्स गड़ांसा फेंककर इस लड़की के कपड़े धुनिया की तरह नोंच डालता है और उसके साथ दुष्कर्म करने लगता है। तभी शायद लड़की का बाप घर में दाख़िल होता है यह दृश्य देखता है। तो दुष्कर्म करने वाले शख़्स को तलवार से कोंचता है कि यह कर क्या रहा है?

दुष्कर्म करते आदमी ने तलवार कोंचने वाले व्यक्ति को देखा और ख़ुद को देखा और उस लड़की को देखा जिसके साथ वह पागलपन में दुष्कर्म करने लग गया था। शख़्स घबरा गया, पागलपन में वह क्या कर बैठा उसे पता नहीं। तभी उसने चीथड़े उठाकर नंगी लड़की के ऊपर डाले और सरीफन-सरीफन बुदबुदाता घर से बाहर निकल गया। मेरा ख़याल है आप मेरा मंतव्य समझ गए होंगे।

आकाश माथुर- क्या लेखक को विरोध के लिए आंदोलनों में शामिल होना ज़रूरी है, वह कलम से भी तो विरोध कर सकता है?

हरि भटनागर- लेखक अपने समय समाज से असहमत है तो वह असहमति ही आंदोलन का एक रूप है। तो एक लेखक को अपने क़लम से, लेखन से विसंगपूर्ण प्रश्नों पर सवाल खड़े करना ही आंदोलन के लिए लामबद्ध होना होता है। मुंशी प्रेमचंद ने भी यही कहा था कि- मैं एक लेखक हूँ, मैं अपने क़लम से विरोध दर्ज़ करता हूँ यही मेरा आंदोलन है।

आकाश माथुर- आपकी कहानियों के पात्रों में निम्न वर्ग ही दिखता है, मध्यम वर्ग कहीं-कहीं दिखता है, पर उच्च वर्ग नहीं दिखता। इसका क्या कारण है।

हरि भटनागर- मान्यवर, मैं जिस वर्ग से आता हूँ। वह निम्न मध्यम वर्ग कहलाता है। जबकि अपनी माली हालत के चलते आज वह निम्न वर्ग के दायरे में पहुँच गया है। मैंने आँख खोली तो यही तबक़ा मेरे सामने था। इसी की तकलीफ़, उल्लास, आशा, निराशा और संघर्षों को मैंने ज़बान देने की कोशिश की है। जिस वर्ग को मैं जानता नहीं हूँ। उस वर्ग के ऊपर लिखने का मुझे कोई हक़ नहीं। अगर लिखूँगा तो वह पोचा होगा। आधा-अधूरा अनुभव और सच्चाई से दूर होगा। एक लेखक को उसी के बारे में लिखना चाहिए, जिसको वह जानता है, समझता है।

आकाश माथुर- आपका पहला उपन्यास 'एक था कुम्हार एक थी मैना' को आने में बहुत लंबा समय लगा?

हरि भटनागर- कहानी लिखना एक अलग बात है और उपन्यास लिखना अलग। मेरा हाथ कहानी पर सध गया था। उपन्यास नाम से डर लगता था, लेकिन मैंने पहली कोशिश की और वह उपन्यास बन गया। मुझे महसूस हुआ कि उपन्यास लिखना कहानी लेखन से और ज़्यादा रोचक और सरल है। इसी रौ में मैंने दूसरा उपन्यास 'दो गज़ ज़मीन' लिखा। इस वक़्त मैं दूसरे उपन्यास लेखन में मुब्तिला हूँ। और भी कई विषय हैं जो उपन्यास की शक्ल लेंगे।

आकाश माथुर- प्रवासी साहित्य को लेकर आपने बहुत काम किया है। प्रवासी साहित्य को लेकर क्या संभावना है?

हरि भटनागर- प्रवासी लेखक आज भी अपने मूल स्थान के नॉस्टेलजिया में हैं। यह मोह उनसे छूट नहीं रहा है। जबकि उनके सामने जिस देश में वे हैं वहाँ की समस्या और संकट बड़े हैं। उन मुद्दों को लेकर वह बड़ा काम कर सकते हैं और यह उन्हें करना चाहिए। यह एक बहुत बड़ी संभावना है जिस पर हमारे प्रवासी मित्रों को ग़ौर करना चाहिए।

आकाश माथुर- आपके बाद की पीढ़ी के लेखकों के बारे में आप क्या सोचते हैं?

हरि भटनागर- मेरे बाद की पीढ़ी में मुझे कथा के क्षेत्र में पंकज सुबीर, सत्यनारायण और मनोज पाण्डे ज़्यादा पसंद हैं। कवियों में विवेक निराला, आशुतोष दुबे और बहादुर पटेल में मुझे भारी संभावनाएँ नज़र आती हैं। इन कथाकारों और कवियों में अपनी जातीय गद्य-पद्य परंपरा के प्रति सजगता और प्रतिबद्ध नज़रिया दिखता है।

आकाश माथुर- आपने "साक्षात्कार" पत्रिका का संपादन करीब 30 वर्षों तक किया है। पत्रिका में पहले और अब में क्या अंतर नज़र आता है और अब आप पत्रिका देखते हैं तो क्या लगता है?

हरि भटनागर- मान्यवर, साहित्यिक पत्रिका को वाद-संवाद से परे रचना पर ध्यान देना चाहिए। सहमति-असहमति के मुद्दे हो सकते हैं, लेकिन किसी भी अच्छी पत्रिका की यह विशेषता होती है कि वह किसी वाद का चश्मा न लगाए। जहाँ तक साक्षात्कार पत्रिका का सवाल है जब से मैं हटा हूँ, पत्रिका मुझे कहीं दिखती नज़र नहीं आई। ऐसे में मैं क्या जवाब दूँ।

आकाश माथुर- आपकी कहानियों में प्रथम पुरुष की तकनीक होती है। इसका कोई विशेष कारण?

हरि भटनागर- प्रथम पुरुष में कथा का कहन हो या अन्य पुरुष में। मुख्य बात यह है कि जो बात आप कहना चाहते हैं वह स्पष्टता के साथ आ जाए। किसी भी पुरुष के माध्यम में कह कर भी अगर अस्पष्टता के शिकार होंगे तो इसका कोई मतलब नहीं।

000

दिमाग़ की दीवारों से चिपके अनाम और अविस्मरणीय से नाम

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

आज भी मेरे द्वार पर वह स्मृतियाँ दस्तक देतीं हैं जो अंतराल में कब की तिरोहित हो चुकी है। कई बार सब कुछ भूल जाता है पर मानस पटल पर लगी पुरानी तस्वीरें उन्हें भूलने नहीं देती है। वह लगभग आधा मील लंबी क्वार्टर्स की क़तार और उस के सामने उतना ही बड़ा फैला हुआ मैदान, फिर झाड़ियाँ और उसके आगे खड्ड में उतरने की पगडंडियाँ। उन पगडंडियों के इर्द-गिर्द उगे हुए आड़ू, खुरमानी और अख़रोट के पेड़, फिर ज़रा नीचे उतरे तो रास्तों पर रत्तियों के पेड़। छोटी-छोटी लाल रत्तियाँ, कहते थे उनको खाने से आदमी मर जाता है और यह देखने के लिए समय-समय पर मैंने अनगिनत रत्तियाँ खाईं पर आज तक जीवित हूँ। कई व्यक्तियों से ज़्यादा ज़िंदगी के कड़वे घूँट पीकर भी ज़िंदा हूँ। शायद आदमी के बस में केवल नियति लिखी है जो कोई नहीं झुठला सकता।

आज भी याद आता है उन पेड़ों पर चढ़ना-उतरना। वह बड़े कम्युनिटी हाल में रामलीला और नाटकों के परिवेश और यहाँ तक कि कभी-कभी ड्रामों में नायिका बनना या भागीदार बनना। वह बचपन की सहेलियाँ और नियति के खेल- कि आज उन के नाम दो-तीन नामों में घटकर रह गए हैं। कैसी होती है ये मानस की क्रिया कि कभी कोई नज़दीक न होते हुए भी याद रह जाता है पर कभी याद करके भी याद योग्य सहेलियों को याद नहीं कर पाते। अनाम और अविस्मरणीय से नाम दिमाग़ की दीवारों से चिपके रह जाते हैं।

उस ज़माने में माँ-बाप की सोच इतनी दक़ियानूसी नहीं थी। लड़के लड़कियाँ रात भर साथ खेलते मटरगश्ती करते थे, पर किसी की आँख का काँटा नहीं बनते थे। कम से कम यह संकीर्णता उस वक़्त के लोगों में नहीं थी। ढलती साँझ तक साथ-साथ खेलना, खेतों में से भुट्टों की चोरी करना और शाम को जो भी आंटी तंदूर दिलाती उसमें उन भुट्टों को भूनना और खाना सब स्वीकार्य था। उन क्वार्टरों में रहने वाले सभी का कमोबेश एक ही ओहदा था, ज़्यादा भी होगा पर कभी उजागर नहीं हुआ। आपस में कोई छोटा-बड़ा करके नहीं देखता था, सबका एक ही धरातल पर एक जैसा अस्तित्व था। ऊँच-नीच, कम-ज़्यादा का प्रदर्शन नहीं था और न ही कालान्तर में हमें यह करना आया। उसी तरह हम नें सारा बचपन -केवल बचपन की तरह ही देखा। घर में कोई कमी नहीं थी, या हमें कमियाँ निकालना नहीं आता था। सीमित इच्छाएँ - दो वक़्त का खाना, पहनने को कपड़ा ! क्या होता है फ़ैशन ? यह तो जानते ही नहीं थे। खाने को मिल जाता था और यही वह पर्याप्त था इससे अधिक कभी सोचा ही नहीं और कभी किसी हीन भावना के शिकार नहीं हुए। पता नहीं क्या था जो बाँधे रखता था जो जोड़े हुए था।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी
संपर्क-246 स्ट्रॉटफोर्ड ड्राइव, ब्रॉडव्यू हाइट्स, ओहाओ-44147
मोबाइल- 440-717- 699
ईमेल- spriyadershini@yahoo.com

कभी माँ-बाप की परवरिश और लालन पालन और कमज़ोरियों की ओर या सीमित साधनों की ओर ध्यान ही नहीं गया, जो था उसी में संतुष्टि थी जैसे वही हो सकता था। जो मिलता था -उन सीमित साधनों के विरुद्ध स्वतंत्रता की पाबंदी पर कोई दूसरी राय ही नहीं थी। जिसे घर की दीवारों को पार करके प्राप्त किया जा सकता है या फलाँगा जा सकता है। और उस फलाँगने से कुछ नया प्राप्त हो सकता है। इसकी न हवस थी और न इच्छा। न ही पता था कि इसके अतिरिक्त भी कुछ हो सकता है। याद आता है वह 27 सेक्टर से 14 सेक्टर तक का साइकिल पर सफ़र, लगभग छ-सात मील की दूरी होगी। बिना किसी गिले के, पढ़ने के लिए यह सफ़र तय करते रहे। वापसी पर उसी साइकिल पर सवार होकर 17 सेक्टर तक आना और शाम साढ़े सात बजे तक बैंक की नौकरी निभाना। यह कई साल तक का नियम रहा। इस तरह अपनी पढ़ाई पूरी की और यह सब जैसे फलीभूत होकर सामने आया। गवर्नमेंट कॉलेज में अध्यापिका की नियुक्ति मिल गई। यह प्राध्यापिका की पहली नौकरी गवर्नमेंट कॉलेज धर्मशाला में थी। फिर तो चक्कर गिन्नी की तरह घूमती रही, परिवार को एक जगह बाँध कर रखने का प्रयत्न करती रही। क्योंकि इसी बीच विवाह हुआ, बच्चे हुए और मैं चक्करघिन्नी सी ही बसों में घूमती रही और शाम अपने पड़ाव पर पहुँचती रही।

चम्बा की नौकरी और एकांतता ने बहुत कुछ सिखाया, बहुत कुछ जोड़ा और बहुत कुछ उधेड़ा भी, पर ज़िंदगी की समझ वहीं से आई। अकेले रहना, बच्चों का पालन या प्राकृतिक ठंड की मार में भी कॉलेज जाना, फब्तियाँ सुनना, विवाद का विषय बनना; क्योंकि प्रकृति में स्वतंत्रता थी और विद्यार्थियों के प्रति सौहार्द्र। विद्यार्थियों में अधिक प्रचलित होने की सज़ा दूसरे साथियों से भुगतनी पड़ती थी।

कोई धारा से उलट चले और आराम से रहे, यह कैसे हो सकता है ? उस पर यौवन और बेबाक़ी की सज़ा अलग थी। बच्चों में अपनी न्यायिक छाया और इच्छाओं को समाहित करके रहने की सज़ा अलग। अति सामाजिक न होने की सज़ा अलग और औरत को अपने दायरे में पाक रह कर, दोनों तरफ़ से सज़ा मिलती है।

चम्बा की प्रकृति ने और साधारण लोगों ने जीने की सीख दी और परिस्थितियों से लड़ना सिखाया। चम्बा शिमला के बचपन की अधूरी रह गई स्मृतियों को पूरा करता था। साधारण सुंदर लोग और उनका साथ बड़ा सुखद रहा पर व्यावसायिक केंद्र में वही ईर्ष्या द्वेष होड़ को नीचा दिखाने की प्रवृति शामिल थी। क्योंकि कॉलेज में अलग-अलग ढंग के अलग-अलग प्रांतों के लोग थे जिन्हें दूसरों को पछाड़ने में एक मज़ा आता था।

मैं जब भी अकेली होती हूँ तो शिमला की उन बेबाक़ सीधी-साधी पगडंडियों पर चढ़ना उतरना शुरू कर देती हूँ और कहीं अपने बचपन को छूने का सुख मिल जाता है।

मैट्रिक मैंने ग्वालियर से की। उस अध्याय को एक स्वर्णिम अध्याय कहना चाहिए और मेरे नन्हें बचपन से जवानी के बीच का यह पड़ाव था। इच्छाओं का उगना, प्रतिस्पर्धा, टीचर्स के प्रति अनन्य भाव यही से सीखा। कैसे कोई आपको चाहता है और नहीं चाहता है इसकी दूरअंदेशी यही से हुई। याद आती है मेरी इंग्लिश की टीचर बहुत रोयी थी जब मैंने ग्वालियर छोड़ा। एक टीचर का विद्यार्थी के लिए रोना आज भी अचंभा देता है पर उनकी सीख ज़िंदगी में बहुत काम आई।

सबसे पहले सीख तो यह आई कि कोई पास न आकर भी आपके प्रति कितना सौहार्दपूर्ण हो सकता है। एक गुरु होकर भी एक अंधविश्वास वाला प्यार विद्यार्थी के प्रति रख सकता है ये आज समझ में आया। क्योंकि मेरी श्रद्धा, मेरा प्यार, मेरी एक दूसरी टीचर्स के प्रति था और मैं उम्र भर उसी के साथ चलती रही और पूछती रही। फिर भी मेरे प्रति वह कितनी शील थी आज ज़िंदगी के उत्तरार्ध में ही समझ पा रही हूँ। पर उनकी दो बातें सीख या जीवन का निचोड़ बनकर आईं और उनको सदा सराहा और अपनाया। एक तो प्रोफ़ेशन अपने मन का चुनना। दूसरा अगर विवाह करना है तो समय रहते करना। दोनों बातें अपनाई और दोनों अपनी सच्चाई में खरी उतरी।

आज उनके प्रति केवल श्रद्धा के ये शब्द हैं, जिन्होंने उम्र भर मेरी नाव सँभाली। पालक जैसा धर्म निभाया। घर में सब से बड़ी - सात बहनों और दो-दो भाइयों की बड़ी बहन -जिस पर हर नियम, हर पाबंदी, हर रिवाज़ सब से पहले होकर गुज़रता था। कोई परंपरा पालूँ तो मैं !कोई बेजा इच्छा न करूँ तो मैं ! घर के बंधन मानूँ तो मैं ! सबको खिलाकर खाऊँ तो मैं ! सीमित संकुचित वातावरण जिसमें पैर फैलाने पसारने की भी जगह नहीं पर सिकुड़ूं भी तो मैं ! घर की परम्पराएँ रखूँ तो मैं ! घर में सुशासन रख सकूँ तो मैं ! छोटे बहन- भाई तो केवल पतवार पकड़ने वाले थे चप्पू तो मेरे हाथ में था। इसलिए कहीं नाव डोले तो दोषी मैं ! लड़खड़ाए तो दोषी मैं ! मैं भी शायद बचपन की उन काँटेदार झाड़ियों से तभी हर प्रकार का फल तोड़ने में इतनी पारंगत हो गई थी कि पता ही नहीं चला कि कब जीवन का समुद्र पार कर लिया। कब झाड़-झंखाड़ से निकल आए। पर उस सबने ज़िंदगी को सुदृढ़ कर दिया। मज़बूत कर दिया। जीवन एक रिहर्सल में युद्ध की तरह लड़ा और लगता है, आज जहाँ खड़ी हूँ उस ज़मीन पर बिछे उबड़ ख़ाबड़ रोड़े - और उन की चुभन से कभी लगा ही नहीं कि कहीं कुछ चुभ रहा है। लोग कहते या समझते कि मैंने नाव में छेद कर लिया है। पर मैं तब भी तैयार होकर निकलती रही। हारी बीमारी आई, बच्चों की व्यक्तिगत जीवन की चुनौतियाँ आईं पर सिर्फ़ उन से लड़ना और समझौता करना सीख लिया, नहीं सीखा तो हारना। एक बात ज़रूर सीखी - परिस्थितियों के समक्ष घुटने नहीं टेकना। माथा झुकाया और पार कर गई सब कुछ।

आज बुढ़ापे की इस मार ने बड़ा झुकाने की कोशिश की पर अभी तक झुकी नहीं। नम्र ज़रूर हो गई और इसे नियति मानकर स्वीकार कर लिया।

वह कच्ची-पक्की में पढ़ने का समय, रास्ते में ऊपर नीचे पगडंडियाँ, पटरी को सड़क पर पटकने तक, सहेलियों के साथ आगे बढ़ना कितना सुनहरा समय था। माँ-

बाप ने कभी सोचा तक नहीं कि बच्चे इतनी दूर स्कूल सुनसान सड़कों पर पहाड़ियों को काटते हुए अकेले जा रहे हैं और हम है कि रास्ते में हँसी ठिठोली और उस शरारत में मस्त रास्ते में एक मंदिर पड़ता था। उस पर सब सहेलियों-दोस्तों की चढ़ाई होती थी और पुजारी की आँख बचाकर सुबह का ताज़ा चढ़ाया हुआ लड्डू बर्फ़ी का प्रसाद खाते-खाते हम पहुँचते। एक चढ़ाई पर जहाँ से रेल गुज़रती थी और हम कई बार इंतज़ार करते रेल गुज़रे और हम उसकी छुकछुक देखें। जब देखते तो ताली बजाते और ख़ूब मस्ती और हँसी करते।

एक बार ऐसा हुआ कि हम दो सहेलियाँ बाक़ी दोस्तों से पीछे रह गए शायद ये सायास था या अनायास और मैं शरारती रेल की पटरी पर अपने कान लगाकर सोचने लगी कि ट्रेन कितनी दूर है। कुछ ही दूरी पर एक सुरंग थी जिसमें से ट्रेन निकल कर आती थी। मैं उसी पटरी पर औंधे होकर कान लगाकर ट्रेन की दूरी का अंदाज़ा लगाने लगी। नहीं ख़याल रहा कि ट्रेन सुरंग से निकल कर अभी आ सकती है। मैं ट्रेन की पटरी पर कान लगाए ट्रेन के आने के अनुमान में सहली से बतिया रही थी कि सामने से ट्रेन सुरंग से निकलती दिखाई दी। पर मेरे उस कृत्य में कोई भय नहीं तभी ट्रेन की रफ़्तार बढ़ रही थी शायद कुछ का कुछ हो जाता अगर चाचा अकस्मात् दूसरा कान पकड़कर उठा न लेते और ज़ोरदार थप्पड़ न जड़ देते। बड़ा भयानक दृश्य था मैं सकपका गई। मुझे अभी भी पता नहीं चला कि मैं क्या कर रही थी। उस दिन उन सभी शरारतों की सज़ा मिली और मार पड़ी और प्रतिज्ञा ली गई कि भविष्य में ऐसा न करने की, नहीं तो भविष्य में स्कूल जाना बंद। ज़िंदगी के इस सबक़ ने आज तक डरा रखा है। उस सीख को काँठ में दबाकर रखने का शऊर आया। पहले से सोच लेने की बुद्धि आई और चाचा पिता से डर का हौवा -आँखों में सदैव के लिए बैठ गया। पता नहीं आज उस डर का क्या भविष्य है लेकिन कुछ भी भयावह करने से पहले एक सीख की तरह चाचा सामने खड़े हो जाते हैं।

000

लघुकथा

वित्तीय संकट

प्रो. नव संगीत सिंह

यह प्रबंधन-समिति की अध्यक्षता में पूरे क्षेत्र में उच्च-शिक्षा के सर्वश्रेष्ठ कॉलेजों में से एक था। उत्कृष्ट छात्रावासों और अच्छी प्रयोगशालाओं के साथ, कॉलेज में उच्च कोटि के व्याख्याता थे। हाल ही में, जब प्राचार्य सेवानिवृत्त हुए, तो रोज़ी, एक तीसरे नं. की व्याख्याता, ने जोड़-तोड़ किया और प्राध्यापिका से प्रधानाचार्य का पद हथिया लिया। रोज़ी ने बस अपने विषय में दूसरे डिवीजन में एम.ए. किया था। कॉलेज में तीन-चार पीएॅच.डी शिक्षक थे और वे उस से उम्र में भी बड़े थे। लेकिन मिसेज़ रोज़ी ने अपनी ब्यूटी का मैनेजमेंट-कमेटी पर ऐसा जादू बिखेरा कि हर कोई उसे कार्यवाहक-प्रिंसिपल बनाने के लिए राज़ी हो गया। उसके पास और कोई गुण नहीं था। उसने कक्षाएँ भी कम ही लीं थीं। वह या तो पुराने प्रिंसिपल के साथ फ्लर्ट करती, स्टाफ के सदस्यों के बारे में गपशप करती या समिति के सदस्यों के साथ बातचीत करती। अब जबकि बटेर मिसेज़ रोज़ी के पैरों तले आ गई थी, उसने कर्मचारियों को डाँटना शुरू कर दिया। कुछ हफ़्ते बाद उसने शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों को अपने तेवर दिखाने शुरू कर दिए। यद्यपि वह एक स्थायी-प्रधानाचार्या नहीं थी, फिर भी वह अपने अधीनस्थों को नीचा दिखाने से नहीं हिचकिचाती थी। कईयों को फटकार लगाती, डाँटती और वरिष्ठ शिक्षकों को उनके कार्यों के लिए दोषी ठहराती। उसके व्यवहार से सभी शिक्षक और अन्य कर्मचारी नाराज़ थे। लेकिन उसके सामने कोई कुछ नहीं बोल सकता था। वह ख़ुद कई दिनों तक कॉलेज से अनुपस्थित रहती और वापस आकर अपने टीए, डीए का दावा करती। लेकिन दूसरे कर्मचारी और शिक्षक बिना पूर्वानुमति के कहीं नहीं जा सकते थे, टीए मिलना तो अलग बात है। भले ही उन्हें कॉलेज के काम के लिए भेजा गया हो। स्टाफ-सदस्यों ने मेहनत से काम किया, कॉलेज को पूरा समय दिया - लेकिन उनके काम की सराहना नहीं की गई। अच्छे परिणाम के बावजूद प्राचार्या ने जब शिक्षकों को प्रताड़ित किया तो सभी मायूस हो गए। कभी-कभी प्रधानाचार्या शिक्षकों की कक्षों में जाकर छात्रों के सामने उनकी ग़लतियों को सुलझाती थी। एक दिन तो हद ही हो गई। स्टाफ-मीटिंग में प्राचार्या ने सभी को निर्देश दिया कि "कॉलेज आर्थिक तंगी से गुज़र रहा है, अपने सारे खर्चे कम करो...इस बार नामांकन बहुत कम हुआ है...हॉस्टल खाली पड़ा है...समिति बहुत ग़ुस्से में है।" कई शिक्षकों की वेतन-वृद्धि रोक दी गई, कुछेक टीए बिल पेंडिंग कर दिये, कुछेक ने कॉलेज के लिए पहले ही अपनी ओर से भुगतान कर दिया था, लेकिन प्राचार्या के आदेश पर सभी के चेहरे उड़ गए। बैठक के अंत में, सभी ने दिन के उजाले में प्रिंसिपल के कमरे में जलतीं ट्यूब-लाइट्स, टेबल लैंप, दो एसी और चार पंखों की ओर आश्चर्य से देखा और एक-दूसरे को इशारों-इशारों में कहा- 'वित्तीय संकट है भई!'

000

प्रो. नव संगीत सिंह, स्नातकोत्तर पंजाबी विभाग, अकाल यूनिवर्सिटी, तलवंडी साबो-151302 (बठिंडा) पंजाब

मोबाइल– 9417692015, ईमेल- navsangeetsingh1957@gmail.com

दूध की धुली

डॉ. रमाकांत शर्मा

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीरामनिवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं.3, चेम्बूर, मुंबई-400089
मोबाइल- 9833443274
ईमेल- rks.mun@gmail.com

वह अपनी रिसर्च के सिलसिले में दो दिन से गुवाहाटी के इस ट्रेनिंग कॉलेज में ठहरा हुआ है। शहर के बाहर शांत वातावरण में बना यह कॉलेज किसी बड़े फार्महाउस का आभास देता है। हॉस्टल में सारी सुविधाएँ मौजूद हैं। यहाँ के फेकल्टी मेंबरों और प्रिंसिपल का पूरा सहयोग उसे मिल रहा है।

उसका काम ख़त्म होने में कम से कम दो दिन तो और लगेंगे। रिसर्च के काम के लिए उसे बैंक से सिर्फ चार दिन की छुट्टी मिली है। वह सुबह दस बजे से काम में लग जाता है। लंच के लिए उसे ठीक एक बजे लाउंज में पहुँचना होता है; क्योंकि इस समय कॉलेज में कोई प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं चल रहा है। पूरे हॉस्टल में वह अकेला है। खाना सिर्फ उसके लिए और कॉलेज परिसर में बने क्वार्टरों में रहने वाले उन दो फेकल्टी मेंबरों के लिए ही बनता है, जिनकी फ़ैमिली फिलहाल उनके साथ नहीं रहती।

खाना खाने के बाद वह फिर से लाइब्रेरी में आ बैठता है। नोट्स लेते-लेते कब शाम रात में ढल जाती है, पता ही नहीं चलता। हाँ, काम ख़त्म करने के बाद उसे बहुत अकेलापन लगने लगता है। जैसे ही हॉस्टल में जाने के लिए वह कॉलेज से होकर गुज़रता है, रात का सन्नाटा उसके भीतर उतरने लगता है। यह ख़याल मन में आने लगता है कि इस इतनी बड़ी इमारत में वह बिलकुल अकेला है।

अकेलेपन का अहसास लिये वह बिस्तर पर पड़ जाता है, पर दिन भर की थकन शीघ्र ही

उसे नींद के आगोश में डाल देती है। सुबह उसकी नींद चिड़ियों की चहचहाहट और अन्य पक्षियों की सुमधुर आवाज़ के साथ खुलती है। लेकिन, आज उसकी नींद कुछ अलग तरह की आवाज़ों के साथ खुली है। ऐसा लगता है जैसे ढेरों पक्षी पेड़ों से उतरकर कॉलेज के अंदर घुस आए हैं और कोई बड़ी सभा कर रहे हैं। इन अनोखी आवाज़ों के शोर से वह हड़बड़ाकर उठ बैठा है।

कमरे की खिड़की से झाँक कर देखता है तो चौंककर रह जाता है। कॉलेज और हॉस्टल में बहुत सारी महिलाएँ नज़र आ रही हैं। इधर-उधर चहलकदमी करती या फिर यहाँ-वहाँ झुंड बनाकर खड़ी इतनी सारी महिलाओं को देखकर वह अचंभित है। अचानक ये सब कहाँ से नमूदार हो गईं। कॉलेज का शांत पड़ा रहने वाला परिसर उनकी खनकती आवाज़ों और खिलखिलाहट से जीवंत हो उठा है। वह अपनी उत्सुकता शांत नहीं कर पा रहा। जल्दी-जल्दी तैयार होता है और नीचे उतर आता है।

सूरत से वे सभी उत्तरपूर्व की लग रही हैं। वह हॉस्टल की लॉबी में खड़ी उन चार-पाँच महिलाओं के पास जाकर रुक जाता है। वे बातें बंद करके उसकी तरफ उत्सुकता से देखने लगती हैं। वह सोचता है, इनसे किस भाषा में बात करूँ, देश के इस भाग में किसी को हिन्दी आती भी होगी या नहीं। वह उनसे अंग्रेज़ी में पूछता है – "व्हाट ब्रिंग्स यू ऑल इन दिस कॉलेज? हेव यू कम हेयर फॉर सम ट्रेनिंग प्रोग्राम? बट दिस कॉलेज ट्रेन्स ओनली बैंकर्स, यू डू नॉट लुक लाइक बैंकर।" वे उसका मुँह देखने लगती हैं। शायद उन्हें उसकी बात समझ नहीं आई है। बड़ी दिक़्क़त है, उसे उनकी भाषा नहीं आती और अंग्रेज़ी वे समझ नहीं पा रहीं तो उनसे कैसे बातचीत करे। उसने हिन्दी में अपना प्रश्न दोहराया तो लगा वे समझ रही हैं। उनमें से एक ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में कुछ कहना शुरू किया ही था कि किसी ने बहुत शुद्ध हिन्दी में कहा–"मुझसे पूछिए क्या पूछना है?"

उसने पीछे मुड़कर देखा तो देखता ही रह गया। वह तस्वीर सी सुंदर लड़की हॉस्टल की सीढ़ियाँ उतरती हुई उसी से मुखातिब थी। उसने उत्तरपूर्व की लड़कियों के सौंदर्य के बारे में बहुत सुन रखा है, पर यह तो आसमान से उतरी परी लग रही है। वह उसके पास आकर प्रश्न भरी दृष्टि से उसे देख रही है, पर वह उसके अप्रतिम सौंदर्य में खोया है। उसे लग रहा है जैसे वह अभी-अभी दूध से नहाकर आई है। उसके दूधिया चेहरे पर सुबह की लालिमा खिली हुई है। उसकी त्वचा की स्निग्धता उसे सम्मोहित किए है।

उसे चुप देखकर उसने पूछा है – "क्या जानना चाहते हैं आप?"

"तुम्हारे साथ की ये महिलाएँ न तो अंग्रेज़ी समझ पा रही हैं और न ही ठीक से हिन्दी बोल पा रही हैं, फिर तुम इतनी अच्छी हिन्दी कैसे बोल रही हो?"

"देखिए, हम सभी पूर्वोत्तर भारत की सेवन सिस्टर कही जाने वाली सात अलग-अलग स्टेट से हैं।

हममें से कुछ मेघालय से, कुछ अरुणाचल प्रदेश से, कुछ मिजोरम से, कुछ असम से और कुछ मणिपुर, नागालैंड और त्रिपुरा से हैं।"

"ओह, तुम कहाँ से हो?"

"मैं मिजोरम से हूँ..।"

"फिर इतनी अच्छी हिन्दी?"

"ग्रेजुएशन मैंने दिल्ली के मिरांडा कॉलेज से किया है। दिल्ली में मेरे मामा रहते हैं।"

"अच्छा तभी........ लेकिन, तुम सब यहाँ किसलिए आए हो? यह कॉलेज तो बैंक के अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए है और तुममें से कोई भी बैंक अधिकारी नहीं लग रहा।"

"बात ऐसी है कि भारत सरकार पूर्वोत्तर के इन राज्यों की उन महिलाओं के लिए यहाँ तीन दिन का कार्यक्रम चला रही है जो किसी न किसी दस्तकारी में निपुण है। ज़्यादातर गाँव की महिलाएँ हैं। इन्हें कल्पना भी नहीं है कि ये जो इतनी सुंदर और उपयोगी चीज़ें बनाती हैं, उन्हें कितना बड़ा बाज़ार मिल सकता है। इन्हें यह भी नहीं मालूम कि इसके लिए सरकार से इन्हें कैसे, कहाँ से और कितनी मदद मिल सकती है। इस कार्यक्रम में इस सबके बारे में इन्हें विस्तार से बताया जाएगा। इनकी बनाई चीज़ों की यहाँ प्रदर्शनी भी लगाई जाएगी जिसमें देशी, विदेशी व्यापारी भाग लेंगे।"

"अच्छा लगा सुनकर। तुम हो तो सब कुछ समझने में आसानी हो गई। अच्छा यह बताओ, तुम क्या बनाती हो?"

वह हँसी – "मैं कुछ नहीं बनाती। मैं तो एक एनजीओ की वालंटियर हूँ। इन संकोची महिलाओं की सहायता के लिए मुझे बुलाया गया है।"

उसकी हँसी ने आसपास चाँदनी बिखेर दी है। उसे लग रहा है, चाँदनी की किरणों में सराबोर होकर वह किसी और ही संसार में पहुँच गया है।

आज लाउंज पूरा भरा हुआ है। वह दोनों फेकल्टी मेंबर्स के साथ उनके लिए रिज़र्व टेबल पर लंच ले रहा है। उसकी निगाहें भीड़ में उसे खोज रही हैं। तभी उसे एक हाथ हिलता दिखाई दिया है। चौथी टेबल पर खाना खा रही वह उसकी तरफ हाथ हिला रही है। उसने भी उसकी तरफ हाथ हिलाया है। यह सोचकर वह रोमांचित हो उठा है कि उस दूध की धुली लड़की की निगाहें भी उसे तलाश रही थीं। लंच के बाद वह सीधे लाइब्रेरी में चला आया है। खुली किताबों में उस लड़की का मुस्कराता चेहरा देखकर उसके ख़ुद के चेहरे पर भी मुस्कराहट खेल गई है। वह उस पर से बलपूर्वक अपना ध्यान हटाना चाहता है, नहीं तो काम नहीं कर पाएगा। वह अच्छी तरह जानता है कि इस ज़रा सी मुलाकात का कोई मतलब नहीं है। परसों वह यहाँ से चला जाएगा और वह मिजोरम। फिर ज़िंदगी में वे शायद ही मिल पाएँ। हाँ, उस दूध की धुली लड़की का कुछ पलों का साथ भी मिल जाता है तो बहुत अच्छा होगा। सच, आसमान के चाँद को अपनी हथेलियों में समेटने का बेमानी सपना उसे नहीं देखना चाहिए। उसने सिर को एक झटका दिया और काम में लग गया। दो-तीन महिलाओं के साथ उसने उसे लाइब्रेरी में आते देखा तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। वह सीधी उसके पास चली आई और पूछा – "आप इस कॉलेज में फेकल्टी हैं क्या?"

"नहीं तो .....।'

"वो आपको फेकल्टी टेबल पर लंच करते देखा न इसलिए.....।"

"मैं अपनी रिसर्च के सिलसिले में यहाँ आया हुआ हूँ। परसों वापस चला जाऊँगा।"

"कहाँ?"

"पुणे, मैं वहाँ एक सरकारी बैंक में प्रोबेशनरी ऑफ़िसर हूँ।"

"अच्छा, तो फिर यह रिसर्च?"

"बैंक में लगने से पहले ही मैंने रिसर्च के लिए पुणे यूनिवर्सिटी में रजिस्ट्रेशन करा लिया था।"

"मतलब बैंक में नौकरी के साथ-साथ रिसर्च भी कर रहे हैं। मैं भी बैंक में काम करना चाहती हूँ। आपसे पूछूँगी क्या करना होगा।"

"ज़रूर....।"

"इसके लिए मेरे पास आपका मोबाइल नंबर होना चाहिए।" – वह बोली।

"ठीक है, अपना नंबर बताओ, मैं तुम्हें मिस्ड कॉल देता हूँ। दोनों के पास एक-दूसरे के नंबर हो जाएँगे।"

"ओके लो अभी करती हूँ...।"

"तुम्हारे नंबर पर मैंने मिस्ड कॉल कर दिया है, सेव कर लेना।"

"कर लिया........सॉरी आपको काम में डिस्टर्व किया, अब मैं चलती हूँ" – कहकर वह तुरंत चली गई तो उसे लगा जैसे चाँद अचानक बादलों के पीछे छुप गया है और उसके आसपास बिखरी दूधिया चाँदनी कहीं खो गई है।

डिनर के बाद वह हमेशा की तरह बाहर गार्डन में घूमने निकल ही रहा था कि सामने से वह आती नज़र आई और वहीं से उसकी तरफ हाथ हिलाते हुए बोली – "कहाँ जा रहे हो?"

"बस यहीं बाहर तक... इस समय मैं कुछ देर गार्डन में टहलता हूँ।"

"गार्डन में.....वाह। मैं भी चलती हूँ आपके साथ। चल सकती हूँ न?"

"क्यों नहीं.... आ जाओ।"

उसके साथ गार्डन में घूमना कितना अच्छा लग रहा है। उसे ये पल सुंदर सपने जैसे लग रहे हैं। उसने सोचा, अगर यह सपना है तो कभी ख़त्म न हो। वे बहुत सी बातें करते रहे। उसने मिजोरम के बारे में उसे बहुत सी बातें बताईं और कहा – "कभी आइजोल आना हो तो मुझे बताना, आपको सारी जगह घुमा दूँगी।"

"देखता हूँ, फिलहाल तो मिजोरम जाने का कोई चांस नहीं दिखता। तुम कभी पुणे आओ तो मुझे फ़ोन कर लेना....।"

"मुझे भी लगता तो नहीं है कि कभी पुणे आना होगा। हाँ, कभी ऐसा मौका मिला तो आपसे ही संपर्क करूँगी, पुणे में आपके सिवा और किसी को जानती भी नहीं मैं।"

दूसरे दिन सुबह से वह दिखाई नहीं दी। उनका कार्यक्रम आज से शुरू हो रहा था, इसलिए वे लोग चाय-नाश्ता बहुत जल्दी करके निकल गए लगते थे।

लंच के समय वह कई महिलाओं से घिरी दिखाई दी। दोनों के बीच सिर्फ मुस्कानों का आदान-प्रदान हो पाया। उसके पास भी काम ख़त्म करने के लिए बस आज का ही दिन बचा था, इसलिए वह पूरी तरह काम में डूबा रहा।

शाम को भी उसकी नज़रें उसे ढूँढ़ती रहीं, पर वह कहीं नज़र नहीं आई। काश, वह चाँद अपनी दूधिया चाँदनी बिखेरता किसी ओट से बाहर निकल आता। पर, वह तो ईद का चाँद हो गया लगता है। गार्डन में घूमते समय उसे ऐसा लगता रहा जैसे कल की तरह वह अभी भी साथ हो। कल वह साथ थी फिर भी उसे सपना लग रहा था, पर आज तो वह सचमुच खुली आँखों से सपना ही देख रहा है।

इंतज़ार में थकी और नींद से भरी आँखें लिये वह कमरे में आ गया और सोने की तैयारी करने लगा। तभी दरवाज़े पर ठकठक हुई। उसने दरवाज़ा खोला तो देखा वह अन्य तीन महिलाओं के साथ खड़ी है। उसे देखकर उसकी आँखों की नींद उड़ गई। "अंदर आ जाएँ" – कहते हुए वे सभी उसके जवाब का इंतज़ार किए बिना कमरे में चली आईं। उसके कहे बिना ही दो महिलाएँ कुर्सियों पर जम गईं और वह एक महिला के साथ उसके बेड पर बैठ गई। वह वहाँ पड़ी छोटी मेज़ खिसकाकर उस पर बैठ गया।

"देखिए, ये तीनों अलग-अलग राज्यों से हैं। मेरे साथ जो बैठी है यह अरुणाचल प्रदेश से है, कुर्सी पर आपकी तरफ जो बैठी है, वह नागालैंड से है और वह दूसरी मणिपुर से है।"। तीनों महिलाओं ने उसे नमस्ते की तो उसने भी हाथ जोड़ दिए।

"हम यहाँ से गुज़र रहे थे तो आपके कमरे की बत्ती जली देखकर रुक गए। सोचा, आपसे मिलते चलें। ये तीनों भी आपसे मिलना चाहती थीं।"

"मुझसे? क्यों?"

"कुछ ख़ास नहीं। मैंने जब इन्हें बताया कि आप पुणे से रिसर्च के सिलसिले में यहाँ आए हुए हैं तो ये बहुत हैरान हुईं। ये सब चौथी-पाँचवीं से ज़्यादा नहीं पढ़ी हैं। देखना चाहती थीं कि रिसर्च स्कॉलर कैसा होता है।" उसने ज़ोर से हँसते हुए कहा।

उसे भी हँसी आ गई "मैं भी एक साधारण इंसान हूँ, मेरे सिर पर सींग नहीं लगे हुए हैं।"

उन सभी को थोड़ी-बहुत हिन्दी आती थी। फिर, वह भी वहाँ थी, जिसे पूर्वोत्तर की कई भाषाओं की समझ थी। उसकी सहायता से वे आपस में बातें करने लगे। उन महिलाओं ने अपना नाम, गाँव और जिले का नाम बताया और यह भी बताया कि वे किस दस्तकारी में निपुण हैं। थोड़ी देर में ही वे घुलमिल कर बातें करने लगे। उन सभी ने उसे अपने घर का पता दिया और कहा कि अगर वह कभी उधर आए तो उनसे ज़रूर मिले, उन्हें ही नहीं उनके घरवालों को भी इतने पढ़े-लिखे इंसान से मिलकर बहुत खुशी होगी।

समय काफी हो गया था। घड़ी देखते हुए वह उठ खड़ी हुई तो वे तीनों भी उसके साथ खड़ी हो गईं। जाने से पहले उसने पूछा "आप कल कितने बजे जाएँगे?"

"रात आठ बजे की फ्लाइट है मेरी।"

"आपका काम ख़त्म हो गया या नहीं?"

"हो गया है, बस एक-आध घंटे का काम बाकी है।"

"मतलब कल आप फ्री हैं?"

"हाँ, पर......।"

"कल ये सब तो प्रदर्शनी के लिए अपनी चीज़ें सँवारने में लगी रहेंगी और मैं फ्री रहूँगी।

गुवाहाटी पहली बार आई हूँ, सोचती हूँ, कामाख्या देवी के दर्शन कर लूँ। नई जगह में आपका साथ रहेगा तो ठीक।"

"मैं भी यहाँ के लिए नया ही हूँ। पर, साथ चलेंगे तो बेहतर रहेगा, कामाख्या देवी के दर्शन तो मैं भी करना चाहता हूँ।" उसने अपनी खुशी छुपाते हुए कहा।

मंदिर जाते समय टैक्सी में वह उसके पास बहुत बेफिक्री से बैठी है। मोड़ पर टैक्सी के झुकाव के साथ वह उसके इतने पास आ जाती है कि वह उसके बालों की खुशबू और उसके बदन की छुअन महसूस कर सकता है। बातें वही कर रही है, उसके पास बताने को बहुत कुछ है। वह उसकी बातों पर बहुत कम ध्यान दे पा रहा है; क्योंकि उसकी यह समीपता उसके भीतर तूफ़ान उठा रही है।

किसी-किसी मोड़ पर वह जानबूझकर भी उसके बहुत पास खिसक आता है। पर, लगता है, उसे उसकी इस हरकत का कोई भान नहीं है या फिर वह जानबूझकर अनजान बनी हुई है। वह समझ नहीं पा रहा है। मंदिर की भीड़ में वह उसका हाथ पकड़ लेती है, उसके स्पर्श से उसमें सिहरन भर गई है। मंदिर के गर्भगृह में उतरते समय उसके हाथ पर उसका कसाब और बढ़ गया है। दर्शन के बाद वे ऊपर आकर एक चबूतरे पर कुछ खाली जगह देखकर बैठ गए हैं। उन्हें वहाँ बैठा देखकर भभूत रमाए एक साधु उनके पास आकर खड़ा हो गया है "तुम्हारी जोड़ी सलामत रहे बच्चा।"

वह तुरंत बोली "बाबा हम दोस्त हैं, पति-पत्नी नहीं।"

"कोई बात नहीं बच्चा, पहली बार आए हो यहाँ?"

"जी हाँ।"

"इस मंदिर के इतिहास और महिमा की कोई जानकारी है?"

"हाँ, थोड़ी बहुत।"

"बताता हूँ तुम्हें....यहाँ आकर भी इसे नहीं जाना तो क्या मतलब?"

वे कुछ कहते, उससे पहले ही साधु ने बोलना शुरू कर दिया – "पुराणों के अनुसार भगवान् शिव का माता सती के प्रति मोह भंग करने के लिए भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से माता सती के 51 टुकड़े कर दिए। ये टुकड़े जहाँ-जहाँ गिरे वहाँ शक्ति पीठ बन गया। कहते हैं कि यहाँ महासती का गर्भ गिरा था। गर्भ को ही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण माना जाता है। इसे सर्वोच्च कौमारी तीर्थ भी माना जाता है। इसीलिए इस शक्तिपीठ में कौमारी पूजा अनुष्ठान का भी बहुत महत्त्व है।"

"उत्तर भारत में जैसे कुंभ महापर्व मनाया जाता है और उसका बड़ा महत्त्व है, वैसे ही यहाँ अंबूवाची पर्व मनाया जाता है। कहा जाता है कि अंबूवाची पर्व के दौरान देवी रजस्वला होती हैं और गर्भगृह स्थित महामुद्रा से लगातार तीन दिन तक जलप्रवाह के बजाए रक्त प्रवाहित होता है। यह अपने आप में अविश्वसनीय और अद्‌भुत बात है। है न? ऐसा माना जाता है कि अंबूवाची काल के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की दिव्य अलौकिक शक्तियों का आविर्भाव होता है। दूर-दूर से और यहाँ तक कि तिब्बत से भी विशिष्ट तांत्रिक साधना के लिए यहाँ आते हैं। इस पर्व में माँ भगवती के रजस्वला होने से पूर्व गर्भगृह स्थित महामुद्रा पर सफेद वस्त्र चढ़ाए जाते हैं जो कि रक्तवर्ण हो जाते हैं। मंदिर के पुजारियों द्वारा ये वस्त्र प्रसाद के रूप में वितरित किए जाते हैं। वाममार्ग साधना का तो यह सर्वोच्च पीठ स्थल है।"

उसने देखा, वह साधु की बात बहुत ध्यान से सुन रही है। साधु ने अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा – "आइये, आपको पूरा मंदिर घुमा देता हूँ।"

"मंदिर हम घूम चुके हैं।" कहते हुए वह उठ खड़ा हुआ। उसने जेब से पचास रुपये निकालकर साधु के हाथ पर रखे तो वह "जय भगवती" का उच्चारण करता हुआ चला गया।

मंदिर से बाहर आकर उसने उससे पूछा – "कहीं और भी चलना है क्या?"

"नहीं.....फिर आपको जाने की तैयारी भी करनी है। हाँ, किसी अच्छी सी जगह देखकर चाय ज़रूर पी सकते हैं।"

रास्ते में उन्हें एक ठीक-ठाक रेस्त्रां नज़र आया तो उन्होंने टैक्सी रुकवा ली। चाय और बिस्किट का ऑर्डर देकर वे बैठ गए। बैठते ही वह बोली – "कामाख्या देवी मंदिर के बारे में सुना बहुत था, पर आज जो कुछ पता चला वह वह मेरे लिए नया तो है ही, आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय भी। है न यह सब कुछ रहस्यमय?"

"किस रहस्य की बात कर रही हो तुम?"

"यही कि एक विशेष अवधि में गर्भगृह में स्थित महामुद्रा से लगातार तीन दिन तक जल प्रवाह के बजाय रक्त प्रवाहित होता है।"

उसे बहुत आश्चर्य हुआ, लड़की होकर भी उसे इस बारे में बात करते हुए ज़रा भी झिझक नहीं हो रही थी। उसने सिर्फ इतना ही कहा – "हाँ, है तो अद्‌भुत।"

वह और कुछ कहने ही वाली थी कि चाय आ गई। उन्होंने चुपचाप चाय पी और फिर टैक्सी में बैठ गए। रास्ते भर वह ज़्यादातर आँखें मींचे बैठी रही। रास्तों के मोड़ वैसे ही उन दोनों को नज़दीक लाते रहे।

कमरे में जाकर वह निढाल सा पड़ गया। कुछ कागज़ मेज़ पर पड़े थे और दो कपड़े खूँटी पर टँगे थे। बाथरूम में उसकी शेविंग किट भी रखी होगी। सामान पैक करने के नाम पर यही सब कुछ था। उसमें ज़्यादा समय नहीं लगेगा। उसने आँखें बंद कीं और कुछ देर सोने की कोशिश करने लगा। पर, उसे नींद नहीं आई। उस लड़की का चेहरा बार-बार उसके सामने आता रहा। सिर्फ दो दिन ही तो हुए थे उससे मिले। वे दोनों एक-दूसरे को जानते ही कितना थे। उसके जैसे बिलकुल अनजान आदमी के साथ इतनी जल्दी उसका फ्रेंक हो जाना उसे समझ नहीं आ रहा था। फिर, वहाँ मंदिर में साधु की बातों को ध्यान से सुनना और रेस्त्रां में उन बातों पर उसके साथ चर्चा करना जिन पर सामान्यत: लड़कियाँ चर्चा करने से बचती हैं। उसे वह रहस्यमयी सी लगने लगी।

उसने जाने के लिए टैक्सी बुला ली और कमरा बंद करके अपना सामान उठाकर बाहर निकल आया। वह गेट तक पहुँचा ही था कि पीछे से आवाज़ आई "जा रहे हैं आप, मिले बिना ही?"

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं है, टाइम हो रहा है और तुम कहीं नज़र नहीं आ रही थीं।"

"ठीक है....ठीक है, भूल मत जाइएगा

पुणे जाकर। फ़ोन करना......मैं भी करूँगी।"

"हाँ, क्यों नहीं...अच्छा निकलता हूँ।"

"ओ.के. बाय।"

"बाय, बाय।"

उसने देखा, टैक्सी आँखों से ओझल होने तक वह वहीं खड़ी थी। रास्ते भर वह उसी के बारे में सोचता रहा। कितनी तेज़ी से वह इतनी जल्दी उसके नज़दीक आ गई। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि इतनी सुंदर लड़की उसे एक-दो दिन की जान-पहचान में इतनी लिफ्ट दे सकती है। बस, उसने ही उसकी लिफ्ट का फायदा नहीं उठाया। क्या था यह? सोच-सोचकर उसका दिमाग चकराने लगा। उस पर कितना विश्वास किया जा सकता है और कितना नहीं। क्या ज़रा सी जान-पहचान में वह हर लड़के के साथ ऐसे ही घुलमिल जाती होगी? उसे वह कठिन पहेली जैसी लगने लगी। उसने ख़ुद को समझाया, पुणे से हज़ारों मील दूर मिजोरम में रहने वाली उस लड़की से अकस्मात् हुई उस छोटी सी मुलाकात को बहुत गंभीरता से नहीं लेना चाहिए उसे। ज़िंदगी में ऐसे ही कितने लोग मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं। भविष्य में उससे मुलाकात की संभावना भी न के बराबर है। फिर, उस तरह की खुले स्वभाव की लड़की को लेकर भविष्य के सपने बुनने का कोई मतलब भी तो नहीं है। उस रहस्यमयी से दूरी बनाकर रखना ही बेहतर है।

पुणे पहुँचने के बाद भी वह कई दिनों तक उसके ख़यालों से नहीं निकल पाई। वह आसपास की लड़कियों से उसकी सुंदरता की तुलना करता तो कोई उसके पासंग में भी नज़र नहीं आती। उसने एक-दो बार सोचा कि उसे फ़ोन करे, पर उसने टाल दिया। उसका भी तो कोई फ़ोन नहीं आया। समय के साथ-साथ उसकी याद धूमिल होती गई और आश्चर्यजनक रूप से उसके दिलो-दिमाग़ में शांति सी छा गई।

वह ऑफ़िस और रिसर्च के काम में बुरी तरह व्यस्त हो गया। इस बीच उसने अपनी थीसिस पूरी की और उसे यूनिवर्सिटी को सबमिट कर दिया। महीने पर महीने बीतते गए। उस लड़की का चेहरा कभी-कभार उसके मस्तिष्क के आकाश पर बिजली सा कौंध जाता, पर वह उसकी यादों के घेरे से कहीं बहुत दूर जा चुकी थी।

उस दिन उसके फ़ोन की घंटी बजी और उसने फ़ोन उठाया तो वह बुरी तरह चौंक गया। शतप्रतिशत उसी की आवाज़ थी। वह कह रही थी – "पहचाना मुझे? हम गुवाहाटी के ट्रेनिंग कॉलेज में मिले थे।"

"मुझे सब याद है। कैसी हो?"

"मैं ठीक हूँ। आप कैसे हैं?"

"मैं भी ठीक हूँ। इतने समय बाद......?"

"जाने दीजिए, आपने भी कोई फ़ोन नहीं किया।"

"हाँ, ऑफ़िस और रिसर्च के काम में बहुत व्यस्त रहा इस बीच।"

"छोड़िए यह सब। मैं आज सुबह ही पुणे पहुँची हूँ...।"

"क्या मतलब? तुम पुणे में हो? कैसे? कहाँ ....?"

"सब बताती हूँ। मैंने वेस्टर्नबेस्ड एक बैंक में भर्ती की परीक्षा दी थी। टू माइ सरप्राइज़ मैं पास हो गई। इंटरव्यू के लिए उन्होंने जिन सेंटरों का ऑप्शन दिया था, उनमें पुणे भी था। मैंने सोचा इस बहाने आपसे भी मिलना हो जाएगा इसलिए मैंने पुणे सेंटर ले लिया।"

"बड़ी खुशी हुई। कब है इंटरव्यू?"

"कल ही है....। आपकी सहायता की बहुत ज़रूरत है मुझे। बैंक का इंटरव्यू पहली बार दे रही हूँ न। थोड़ी गाइडेंस लगेगी आपकी। ऑफ़िस के बाद यहाँ आ सकते हो? कोई परेशानी तो नहीं होगी?"

"कहाँ?"

"मैं यहाँ होटल में रुकी हूँ। एड्रेस बताऊँ आपको?"

"अरे, मुझे बताया होता, मैं कर देता कहीं तुम्हारे ठहरने का इंतज़ाम।"

"जाने दीजिए न, बस आप आ जाइये, बहुत कुछ जानना-समझना है मुझे और टाइम कुछ घंटों का ही बचा है।"

"ओके, मैं ऑफ़िस के बाद सीधा वहीं आता हूँ।"

वह उसका इंतज़ार ही कर रही थी। उसके घंटी बजाते ही उसने दरवाज़ा खोल दिया और बोली "थैंक्स ए लॉट, मुझे इस समय आपकी कितनी ज़रूरत थी।"

वह उसे देखता ही रह गया। वह और भी निखर आई थी। वही बिंदास स्वभाव था उसका, बेझिझक, बेलौस।

"देखा, पुणे सेंटर इसीलिए तो लिया था मैंने कि एक लंबे अर्से के बाद आपसे मिलना भी हो जाएगा और मेरे इंटरव्यू की अच्छी तैयारी भी हो जाएगी। आप बैठिए ना, चाय मँगवाती हूँ आपके लिए।"

कमरे में एक टू-सीटर सोफा पड़ा था। वह उस पर बैठ गया। उसने कमरे में नज़र दौड़ाई। कोने में पढ़ने की छोटी मेज़ और कुर्सी रखे हुए थे। मेज़ पर लैम्प भी रखा था। एक डबल बेड भी था जिस पर करीने से बिस्तर लगे हुए थे। चाय पीने के बाद वह कॉपी पैंसिल लेकर सोफे पर उसके पास ही बैठ गई और बोली – "आपको तो पता होगा इंटरव्यू के लिए कैसी तैयारी करनी चाहिए। आप मुझे बताते जाओ मैं नोट करती जाऊँगी।"

वह उसे बैंकों के बेसिक फंक्शन के बारे में और सामान्यत: पूछे जाने वाले प्रश्नों के बारे में विस्तार से बताता रहा। वह बहुत ध्यान से उन्हें नोट भी करती रही और बीच-बीच में प्रश्न भी पूछती रही। इस सब में समय बहुत तेज़ी से निकल गया। रात के आठ बज गए तो उसने कहा – "और भी कुछ रह गया हो तो पूछ लो, फिर में चलूँगा। अकेला रहता हूँ और अपने लिए ख़ुद खाना बनाना पड़ता है।"

"कैसी बातें कर रहे हैं आप। खाना तो मुझे भी खाना है। साथ ही खाएँगे, अभी मँगवा लेती हूँ मैं।" उसके मना करते-करते भी उसने कमरे में ही खाना मँगवा लिया। खाना खाते समय वह ढेर सी बातें करती रही। उसे लगा सचमुच बहुत रात हो रही है तो वह बोला – "अब मैं चलूँगा, बहुत देर हो गई है। फिर कल तुम्हारा इंटरव्यू भी है, जल्दी सोना चाहिए तुम्हें। इंटरव्यू के बाद मिलूँगा तुमसे। पुणे पहली बार आई हो तो यहाँ की कुछ जगहें घूम भी लेंगे।"

"ऐसे कैसे चले जाओगे, अभी तो आपको मेरा मॉक इंटरव्यू लेना है। इंटरव्यू के बाद तो

हम मिलेंगे ही। हाँ, घूमने के लिए फिर कभी आऊँगी।"

"क्यों, इतनी दूर आई हो तो........।"

"मैं ख़ुद भी चाहती थी कि रुकूँ, पर मेरी सबसे पक्की सहेली की शादी है। उसने कह दिया है कि मुझे उसकी शादी में पहुँचना ही है, नहीं तो वह मुझसे कभी नहीं बोलेगी। इसलिए कल शाम को ही मुझे निकलना होगा, वापसी का रिजर्वेशन करा लिया है मैंने।"

"ओह, मैं सोच रहा था कुछ दिन रुकोगी यहाँ.......।"

वह हल्के से मुस्करा दी और बोली – "फिर कभी....पक्का। चलो अब मेरा मॉक इंटरव्यू ले डालो।"

मॉक इंटरव्यू लेते-लेते और उसके बाद उस पर चर्चा करते-करते रात बहुत ज़्यादा हो गई। उसने घड़ी देखी और जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

वह बोली – "बहुत रात कर दी न मैंने। परेशान कर डाला आपको। पर सच कह रही हूँ इंटरव्यू के लिए आपने इतनी अच्छी तैयारी करा दी है कि मेरा सारा डर निकल गया है।"

"बहुत अच्छी बात है, तुम्हारा इंटरव्यू अच्छा हो जाए और क्या चाहिए। चलूँ अब?"

"आपने बताया कि अकेले ही रहते हैं आप। कोई इंतज़ार तो नहीं कर रहा आपका। अब इतनी रात को कहाँ जाओगे, यहीं सो जाओ।"

वह हैरत से उसका मुँह देखने लगा। अकेली लड़की होटल के कमरे में उसे अपने साथ पूरी रात रहने को कह रही है। वह भीतर से सिहर उठा। उफ..कैसा आमंत्रण है यह। उसकी आँखों के सामने गुवाहाटी में बिताए वे दो दिन घूम गए। आख़िर चाहती क्या है यह लड़की। वह मना नहीं कर पाया। ऐसा मौका फिर कभी मिले न मिले। उसने जानबूझकर कहा – "ठीक है, मैं सोफे पर सो जाऊँगा"।

"नहीं, आपकी लंबाई ज़्यादा है, आप सोफे पर नहीं सो पाएँगे, यह टू-सीटर सोफा है। आप आराम से बेड पर सो जाएँ, सोफे पर मैं सोऊँगी।"

वह कपड़े बदलने बाथरूम में चली गई। गाउन पहनकर बाहर निकली। उसके हाथ में एक धोती जैसी थी, उसे पकड़ाते हुए बोली – "पेंट पहनकर नहीं सो पाएँगे आप, यह पहन लें।" उसके हाथ से धोती लेते समय उसका पूरा शरीर रोमांचित था, उस रहस्यमयी लड़की के साथ आज की रात भी अपने में रहस्य छुपाए थी।

वह शीघ्र ही सोफे पर जा लेटी और उससे बोली "सॉरी, सचमुच बहुत रात कर दी मैंने। लाइट बुझाकर अब आप भी सो जाओ।"

वह पलंग पर जाकर लेट गया। नाइट लैंप की धुँधलाती रोशनी में वह उसे सोफे पर लेटे देख रहा था। वह सोने की पूरी कोशिश कर रहा था, पर आँखों से नींद ग़ायब थी। उसके भीतर से आवाज़ आ रही थी, कुछ तो होने वाला है, नहीं तो वह उसे रात में क्यों रोकती। क्या वह उसकी पहल का इंतज़ार कर रही है? क्या उसे पहल करनी चाहिए, वह तय नहीं कर पा रहा था। वह सोफे की तरफ करवट लेकर लेटा था। सिकुड़ी हुई वह बेफ़िक्र सो रही थी। उस दूधिया रोशनी में उसका दूध का धुला चेहरा बादलों में घिरे चाँद सा दिखाई दे रहा था। वह बड़ी मुश्किल से ख़ुद को रोके हुए था। उसने रोका है तो पहल भी वही करे।

इस ऊहापोह में पता नहीं कब उसे झपकी आ गई। अचानक उसकी आँख खुली तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। वह पलंग पर उसके बगल में सो रही थी। क्या वह सपना देख रहा है। नहीं तो..... वह यहाँ क्या कर रही है? क्या इरादे हैं उसके? सारी कड़ियाँ जुड़ रही है, उसे यहाँ बुलाना, जानबूझकर देर रात कर देना और फिर उसे वहाँ सोने के लिए कहना। ओह, तो इतनी दूध की धुली भी नहीं है यह।

इससे ज़्यादा खुला आमंत्रण और क्या होगा। अब भी उसने कोई कदम नहीं उठाया तो वह उसे निरा बेवकूफ ही समझेगी। वह धीरे से उठकर बैठ गया। उसकी साँस धौंकनी की तरह चलने लगी। वह है कि गहरी नींद में सोने का बहाना कर रही है। उसने धीरे से अपना हाथ उसकी तरफ बढ़ाया और फिर तुरंत पीछे खींच लिया। हड़बड़ाहट में बगल की छोटी टेबल पर रखा पानी का गिलास आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिर गया। उस आवाज़ के साथ ही उसकी नींद खुल गई और वह उठकर बैठ गई। उसने उसे अपने पास बैठे देखा तो पूछा – "क्या हुआ?"

"कुछ नहीं, अँधेरे में गिलास पर हाथ लग गया और वह ज़मीन पर गिर पड़ा।"

"वह तो ठीक है, पर आपको नींद नहीं आ रही क्या? फिर, यह साँस इतनी तेज़ क्यों चल रही है? तबीयत तो ठीक है? पानी लाती हूँ आपके लिए।"

"नहीं रहने दो, तुम्हें यहाँ अपने पास सोते देखा तो....।"

"ओह तो क्या लगा तुम्हें?"

"कुछ नहीं......" उसकी आवाज़ गले में फंस रही है।

"देखो मुझे ग़लत मत समझना। उस टू-सीटर सोफे पर मैं लाख कोशिशों के बाद भी सो नहीं पाई। सुबह इंटरव्यू है मेरा.... इसलिए यहाँ आकर सो गई।"

"डर नहीं लगा तुम्हें यहाँ मेरे पास आकर सोते हुए?" उसने हकलाते हुए पूछा।

"डर, क्यों लगेगा डर। आपसे मिलने के बाद से ही मुझे लगा कि आप औरों जैसे नहीं हो। आपको क्या लगता है कि आपकी जगह कोई और होता तो मैं उसे यहाँ रुकने के लिए कहती? बस, आप पर दिल ने विश्वास कर लिया। मेरी छठी इंद्री ने कभी भी आप पर अविश्वास नहीं होने दिया। मुझे पता है, आप मेरा विश्वास तोड़ोगे भी नहीं। सुबह जल्दी उठना है, अब सो जाएँ?

वह कुछ कहता उससे पहले ही वह फिर से लेट गई और लेटते ही सो गई। वह वहीं बैठा अपने काँपते शरीर पर नियंत्रण करने की कोशिश करता रहा। वह गहरी नींद में बेफ़िक्र सोई हुई है। वह भी धीरे से बेआवाज़ वहीं लेट गया, वह नहीं चाहता था कि उसकी नींद में कोई खलल पड़े।

सुबह उसकी नींद देर से खुली है। वह उससे पहले ही उठ चुकी है और अभी-अभी नहाकर निकली है, उसके दमकते चेहरे से मासूमियत छलकी पड़ रही है। उसका अद्‌भुत अलौकिक सौंदर्य देखकर उसे विश्वास हो चला है कि वह सचमुच पानी से नहीं दूध से नहाकर निकली है।

000

मन न भये दस बीस

सुधा जुगरान

आरुषि ने ट्रैक सूट पहना। कटे बालों को पोनी बना कर हेयर बैंड के हवाले किया। स्पोर्टस शूज के तस्मे कसे। एक झलक ख़ुद को शीशे में देखा और फ्लैट से बाहर हो ली। सामने वाले फ्लैट में रहने वाले विभोर जी हमेशा की तरह उसे कॉरिडोर में मिल गए। उफ, वह मन ही मन झुँझलाई। उसे सुबह सवेरे किसी को भी दुआ सलाम करने से बहुत परहेज़ था। इसी डर से रोज़ टाइम 10-5 मिनट इधर-उधर कर देती थी; लेकिन विभोर जी अक्सर ही उसे कॉरिडोर में लिफ्ट की वेट करते हुए ही मिलते हैं।

'अजीब इत्तेफ़ाक़ है।'

'नमस्कार आरुषि जी...आप एकदम चुस्त-दुरस्त रहती हैं।' उनके स्वर में प्रशंसा कम, उसे खुश करने की मानसिकता अधिक झलक रही थी, 'सुबह की सैर स्वास्थ्य के लिए बहुत ही आवश्यक है। एक हमारी श्रीमती जी हैं...घोड़े बेच कर सो रही हैं।' कह कर विभोर जी उस का समर्थन पाने के लिए हें-हें कर हँसने लगे। उसे अजीब सी वितृष्णा हुई।

'जी नमस्कार..' प्रत्यक्ष में उस ने शालीनता से हाथ जोड़ दिए। लेकिन मन ही मन उन से छुटकारा पाने का रास्ता तलाशने लगी। उसे रोज़ ही कोई न कोई बहाना बनाना पड़ता है। कभी रास्ते में आते-जाते काफी कम जानने वाले को देख कर भी रुक जाती है। कभी रास्ता बदल देती है। कभी कुछ याद आ जाने जैसा बहाना बना कर फ्लैट में वापस घुस जाती है। अब तो सभी बहाने भी बासी होने लगे हैं। रोज़ क्या बहाने लगाए आख़िर। उसे आश्चर्य भी होता है कि विभोर जी जैसे लोगों को क्या उस के बहाने समझ में नहीं आते होंगे? लेकिन कुछ लोग अपना स्वाभिमान औरतों के मामले में खूँटी पर टाँग आते हैं। फिर वह तो कुँवारी ही है, चाहे 49 बसंत पूरे कर कुछ ही महीने में 50 की होने वाली है। पर उस से क्या फर्क पड़ता है। ख़ूबसूरती उसके तन व चेहरे पर ही नहीं मन में भी जवाँ है और इसे विभोर जी जैसे पुरुष अच्छी तरह से देख-सूँघ लेते हैं।

तभी लिफ्ट का दरवाज़ा खुल गया, 'आइए..' विभोर जी अंदर घुस कर लिफ्ट में उस के लिए जगह बनाते हुए बोले।

'ओह, आप चलिए...मुझे एक ज़रूरी कॉल करनी है...' कह कर वह वापस मुड़ गई। बंद होती लिफ्ट से विभोर जी का बुझा चेहरा उससे छिपा न रह सका।

फ्लैट में वापस आ कर सोच रही थी, अभी जाना तो बेकार ही है। विभोरजी 10-15 मिनट बिल्डिंग के अंदर ही टहलते मिलेंगे। उनके जाने की इंतज़ारी में उसे देर हो जाएगी। खिन्न हो वह काउच पर अधलेटी हो सोचने लगी अब क्या करे। शनिवार, रविवार ऑफ़िस की छुट्टी थी। न तो नींद ही पूरी हो पाई और न वॉक ही। एकाएक मुस्कान उसके होंठो पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ गई। जान्हवी से बात करती हूँ। कुछ दिनों से उससे बात भी नहीं हो पाई थी। दोनों साथ ही पढ़ीं, बड़ी हुई। साधारण शक्ल-सूरत की जान्हवी अपने लचीले स्वभाव के कारण किस्मत की धनी रही। उस ने कॉलेज की पढ़ाई के बाद कॅरियर को बाय-बाय किया और एक इज़्ज़तदार घर के उच्च पदस्त पति की ठसकदार बीवी बन गई। तब कितना मज़ाक उड़ाया था उस ने जान्हवी का। रही न आख़िर देसी की देसी। अब बन जा लज्जा की नायिका और डालती रहना खीर में किसमिस-मेवा, चाहे सामने से जुलूस निकल जाए।

'तो तू है न झाँसी की रानी बनने के लिए...मैं तो लज्जा की नायिका ही ठीक हूँ।' जान्हवी

सुधा जुगरान
दिव्या देवी भवन, 16 ई, ई. सी. रोड़,
देहरादून-248001, उत्तराखंड
मोबाइल– 9997700506
ईमेल– sudhajugran@gmail.com

बिना चिढ़े बोली थी, "देख आरुषि तू तो पढ़ने में हाशियार है। तेरा बेड़ा तो पार लग जाएगा। लेकिन मेरे लिए यही सब से सही है।' फिर आरुषि ने उसे कभी नहीं चिढ़ाया।

लेकिन दोनों की दोस्ती बनी रही। बल्कि कहना चाहिए चोली-दामन का सा साथ रहा दोनों का।

कॅरियर में सब कुछ हासिल करने के बाद एक वक्त आरुषि की ज़िंदगी में भी ऐसा आया, जब उसने भी लज्जा की नायिका बनना चाहा। पर ख़ूबसूरत होते हुए भी उसकी अफ़सरी की ठसक के सामने बड़े-बड़े न टिक पाए और वह अकेली ही रह गई। लज्जा की नायिका बनने की इंतज़ारी में समय फिसलता चला गया और वह आजकल करते-करते 50 के पास पहुँच गई। जान्हवी की भरी पूरी गृहस्थी देख उसे रश्क होता था। एक स्त्री के लिए ज़िंदगी के तराज़ू में संतुलन क्यों नहीं रहता। सब कुछ आधा-अधूरा सा ही रह जाता है। एक आम सी लड़की की तरह आज भी उस का दिल तरस जाता है किसी की बाँहों में बँधने के लिए। किसी से रूठने-मनाने के लिए। किसी की मीठी छुअन के लिए जो तन-मन को तरंगित कर ज़िंदगी के प्रति सारे के सारे उलाहने, कसक समाप्त कर दे। हर वो बात जो एक युवा मन में उठ सकती है, उसे आज भी पुलकित करती है, लेकिन सब कुछ उस की अफ़सरी की कड़क दीवारों के पीछे बेमौत ही दफ़न हो कर मरा जा रहा था। आज उम्र भले ही हाथ छुड़ाने पर आमादा हो लेकिन तन-मन की उन तरंगों को तो अभी सिला मिलना शेष था। कभी-कभी अफसोस से भर जाती है आरुषि, क्या ऐसे ही चली जाएगी इस दुनिया से।

कुछ दिनों से उसे जान्हवी को एक बहुत ज़रूरी बात बतानी थी। सोच कर उस ने जान्हवी को फ़ोन मिला दिया। उसे पता था इस समय जान्हवी उठ जाती है। उस की एक रिंग पर ही जान्हवी ने फ़ोन उठा लिया।

'हाय स्वीटहार्ट कैसी है...अभी तुझे ही याद कर रही थी।' चहकते हुए जान्हवी बोली।

'क्या बात है आज वॉक पर नहीं गई?'

'नहीं यार बस ऐसे ही..तुझे कुछ बताना था।'

'उसी हैंडसम के बारे में...।'

'अरे, तुझे कैसे पता...?'

'मेरी यह सुंदर, मगर नीरस सी सखी...किसी पुरुष के बारे में एक से दूसरी बार ज़िक्र नहीं करती और उस का ज़िक्र तो तू कई बार कर चुकी है।' जान्हवी छेड़ू अंदाज़ में बोली, "अब बता, क्या बात है?"

'बात तो कुछ ख़ास नहीं...वह काफी दिनों से दिखाई नहीं दे रहा..।'

'हे भगवान्, पहले तो ये शिकायत थी कि वह रोज़ तेरे टाइम पर ही वॉक पर क्यों आता है। फिर यह कि वह जब तुझे क्रॉस करता है तो 4 हाथ की दूरी से...अब आ नहीं रहा, तब भी तुझे चैन नहीं...एक बात कहूँ?'

'क्या?'

'कोई मुड़ कर देखे तो क्यों देख रहा और न देखे तो क्यों नहीं देख रहा...औरतों का भी कोई जवाब नहीं..।' जान्हवी खिलखिलाते हुए बोली।

'झूठ, औरत तू है...मैं तो अभी भी लड़की हूँ..।'आरुषि ने इतराते हुए नहले पर दहला मारा।

'तो प्रॉब्लम क्या है...कहीं दिल-विल के तार तो नहीं अटक गए?'

'बेकार की बात मत कर..दिल के तार अटकाने के लिए बस वही रह गया।' लेकिन कहते-कहते न चाहते हुए भी आरुषि के कपोल आरक्त हो गए थे।

'तो फिर छोड़ उस की चिंता...गया होगा कहीं शहर से बाहर...कुछ ही दिनों में आने लगेगा। तू भी कुछ दिनों के लिए मेरे पास आजा।'

'सोचती हूँ ...।' कह कर आरुषि ने बात ख़त्म कर फ़ोन रख दिया। लेकिन जिस बेकरारी से उस अजनबी के बारे में बात करने के लिए उस ने आरुषि को फ़ोन किया था उसे करार न मिला था। बात मात्र इतनी सी नहीं थी कि उसे उसका इंतज़ार था। पिछले लगभग 5 साल से वह वॉक पर जा रही थी और दो साल से उस अजनबी का दिखना बदस्तूर जारी था। उसे एक तरह से उस की आदत सी हो गई थी। पहली बार उसके दिखने में यह विघ्न-बाधा आई थी जिस ने उसे अपसेट कर दिया था। वह कुछ खोई-खोई सी हो गई। एक रिक्तता थी उस के जीवन में जिसे अनायास ही उस का इंतज़ार या होने का अहसास भरने लगा था।

'अब यह कोई इस उम्र में प्यार जैसी चीज़ तो नहीं हो सकती न।' आरुषि ख़ुद को समझाती हुई बोली, 'जान्हवी भी बस...जहाँ स्त्री-पुरुष खड़े हुए नहीं...प्यार वहाँ से शुरू हुआ नहीं। उसे तो बस एक चिंता सी है कि इस क्रम में आख़िर यह व्यवधान आया क्यों। ऐसी क्या बात हो गई। बाहर भी गया हो तो अभी तक तो आ जाना चाहिए था। कहीं बीमार न हो। कैसे पता चले। पता नहीं कहाँ रहता होगा!'

तभी मोबाइल की घंटी बज गई। उसकी ऑफ़िस-कर्मी रूमा का फ़ोन था। ऑफ़िस में उस की सबसे अधिक रूमा से ही बनती थी, हालाँकि दोनों के विभाग अलग थे।

'हाय आरुषि...मूवी देखने का और शॉपिंग का इरादा हो तो चलें।' रूमा पूछ रही थी।

'क्यों, पतिदेव कहाँ गए आज...?' उस ने भी हँसते हुए पूछा।

'पति को अपने एक दोस्त के बेटे की शादी में शहर से बाहर जाना पड़ गया। मैं दो दिन बिलकुल फ्री हूँ ...तेरे लिए...।' वह हँस रही थी।

'अच्छा, जब कोई नहीं, तब मैं, ...चलते हैं...मैं ठीक 12 बजे तुझे पिक कर लूँगी।'

'ओके डन....'

ठीक 11 बजे वह रूमा के अपार्टमेंट के नीचे से उसे कॉल कर रही थी। आज रूमा का निमंत्रण उसे अच्छा लगा था। जाने क्यों मन कुछ अधिक ही उदास हो रहा था। लग रहा था शरीर की ताकत कम हो गई या फिर उस के उत्साह में कमी आई है; जिससे शरीर में शिथिलता पसर रही है। दिल कर रहा था थोड़ा रो ले पर क्यों? तभी रूमा नीचे आ गई। धम्म से कार में बैठी तो ख़ुशबू का झोंका उसके नथुनों में भर गया। उसने ख़ूब भड़कीला सा फुल ड्रेस पहना हुआ था। वह हमेशा ऐसी ही तैयार होती है। लगे हाथों आरुषि को भी टोक देती थी, 'क्या विधवा का सा भेष बनाए घूमती

रहती है। बस नीली जींस और सफेद के आसपास का टॉप। तेरे पास कपड़े नहीं है क्या?' सोचते हुए आरुषि ने कार स्टार्ट की कि रूमा बोल पड़ी, 'तेरे पास कपड़े नहीं है क्या...हमेशा इसी हुलिये में दिखाई देती है?' आरुषि हँस पड़ी।

'मैं हमेशा अलग पहनती हूँ...पर बस दूसरे को दिखाई नहीं देता है।'

'हम्म..' रूमा ने मुँह बनाया। आरुषि ने कार आगे बढ़ा दी। 20-25 मिनट की ड्राइव के बाद वे मॉल में पहुँच गए। मूवी स्टार्ट होने को थी। टिकट ऑनलाइन बुक्ड थे। इसलिए जल्दी से लेकर अंदर घुस गए। मूवी देख कर लंच करने बैठ गए।

'क्या खाएगी बता...।' रूमा मेन्यू कार्ड चेक करते हुए बोली।

'कुछ भी जो तुझे पसंद हो।' वह खिन्न सी हो रही थी। मूवी में भी उस का मन ज़रा भी नहीं लगा था। रूमा ने लंच आर्डर कर दिया।

'आज मैं पूरा दिन फ्री हूँ..लंच के बाद तेरे लिए कुछ कलरफुल कपड़े खरीदते हैं।'

'मेरा खरीददारी का बिल्कुल भी मूड नहीं है..।'

'है कैसे नहीं...?'

लंच के बाद रूमा उसे जबरदस्ती शॉपिंग के लिए ले गई। वह जींस-टॉप के बजाए सूट्स-सेक्शन की तरफ जाने लगी तो आरुषि ने टोक दिया- 'वहाँ - कहाँ जा रही है?'

'आज तू कुछ सूट्स खरीद ले कलरफुल।'

'हाँ, जैसे तू पहनती है...।'

'हाँ, यही सही...।' वह उसे खींचती चली गई। आरुषि रूमा के साथ खिंची चली जा रही थी कि सामने से आते सैर के साथी वाले 'उस अजनबी' को देख कर तो पलभर में जैसे ब्रह्मांड ही घूम गया। जिसे ढूँढ़ा गली-गली वह मिला भी तो मॉल में मिला, वह भी बिना ढूँढ़े। इस के बाद एक आश्चर्य और होना शेष था- 'अरे शिशिर जी आप...आज मॉल में...? खुशी हुई आप को देख कर..।' रूमा प्रसन्नता से उस की तरफ मुख़ातिब थी।

'हाँ, माँ और नीतू दी भी आई हैं...वे ज़बरदस्ती ले आईं..।' वह अजनबी जिसको अभी-अभी रूमा ने शिशिर नाम से संबोधित किया था, उससे नज़रें चुरा कर उन से पीछा छुड़ाने की फिराक में लग रहा था।

'आप नीतू दी व माँ से मिल लीजिए...उधर रेस्तरां में बैठी कॉफी पी रही हैं...मुझे थोड़ा सा काम है, अभी आया।' कह कर वह तो यह गया और वह गया। आरुषि उसे खोई निधी सी निहारती रह गई।

'अरे तुझे क्या हुआ...और शिशिर को ऐसे क्या देख रही है..?'

'तू इन्हें कैसे जानती है?'

'इनकी बड़ी बहन नीतू, मेरी बड़ी बहन की बहुत अच्छी फ्रेंड है...इसी नाते दीदी के साथ कभी-कभार इनके घर में जाना हुआ करता रहा...कभी नीतू दीदी को शिशिर भी हमारे घर लेने-छोड़ने आते रहे हैं।'

'इनके परिवार में और कौन है...?' आरुषि के मुँह से न चाहते हुए भी फिसल गया।

'अरे मत पूछ...इनका अपना परिवार तो कोई नहीं है...ले दे कर एक माँ ही है साथ में...किस्मत ने बहुत बुरा किया इनके साथ।'

'क्या..?' आरुषि की व्यग्रता उसके चेहरे पर उछाल मार रही थी।

'इनकी शादी हुई थी...माँ-बाप की मर्ज़ी से...अच्छी लड़की, घर-परिवार देख सुन कर। लेकिन लड़की लेस्बियन निकली। ख़ुद तो जो भी थी पर इनसे पीछा छुड़ाने के लिए इन्हें गे साबित कर दिया। बेचारे की इतनी बदनामी हुई कि तब से औरत नाम की चीज़ से ही नफ़रत करने लगा।'

'क्या..?' आरुषि का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया, 'लेकिन तुझे क्या पता कि सच आख़िर है क्या?'

'सब पता है यार...छोटे से ही देखा है शिशिर को...दोनों की दीदियाँ स्कूल फ्रेंड रही हैं। जिस दौर से यह लड़का गुज़रा है उस अवसाद के दौर को यही जानता है या इसका परिवार। अपनी पहली नौकरी तक छोड़ दी थी इस ने। बाद में किसी दूसरी जगह बहुत मुश्किल से नौकरी ज्वाइन की। मुझे तो यही समझ नहीं आता कि अगर कोई मेल या फीमेल यह महसूस कर जाते हैं कि वे गे या लेस्बियन है तो दूसरे की ज़िंदगी क्यों लपेट लेते हैं साथ में। शादी से पहले अपने माता-पिता को अपनी फीलिंग्स के बारे में दृढ़ता से समझा नहीं पाते हैं और बाद में इतना बड़ा कदम उठाने की हिम्मत आ जाती है। दूसरा ऐसे बच्चों के माता-पिता को भी समझदारी से काम लेना चाहिए। आज यह छुपने-छुपाने वाली बात नहीं रह गई। लेकिन लगभग बीस - इक्कीस साल पहले जब शिशिर के साथ यह हुआ था तब, सब को ये बातें समझ में नहीं आतीं थीं। लड़की ने इसके पौरुष पर कई सवाल उठा कर इससे तलाक की माँग कर दी थी। हक़ीक़त तो यह थी कि उस ने इसे छूने भी न दिया था और स्वयं शिशिर से कहा था कि वह पुरुष के प्रति कोई आकर्षण महसूस नहीं करती, उसके आकर्षण का केंद्र हमेशा महिला ही रहती है।'

'तो शिशिर जी ने इतनी बात बढ़ने क्यों दी। जब लड़की नहीं रहना चाहती थी तो इतनी छिछालेदर क्यों करवाई..तलाक दे देना चाहिए था।'

'शादी तोड़ना किसी भी शरीफ घर परिवार के लिए बिना बाहरी कारण के इतना भी आसान नहीं होता है। माता-पिता को और समाज को क्या जवाब देता। उस समय किसी लड़की का लेस्बियन होना या किसी पुरुष का गे होना सामाजिक रूप से न स्वीकार्य था, न ही समझ में आने वाली बातें थीं। ये तो महसूस करने वाली बातें हैं जिन्हें सिर्फ वे ही समझ सकते हैं जिनके साथ यह होता है। मेडिकली तो प्रूव नहीं किया जा सकता न। फिर समय के साथ सब कुछ ठीक हो जाएगा की उम्मीद में शादी बचाने की कोशिश सभी करते हैं आरुषि। इसी दुख में इसके पिता भी हार्ट अटैक से चले गए।' रूमा दुखी स्वर में बोली।

'पर तू शिशिर को कैसे जानती है?' रूमा को एकाएक ख़याल आया।

'व्यक्तिगत रूप से तो नहीं जानती हूँ...पर ये मुझे हमेशा सुबह की सैर की दौरान मिलते हैं। लेकिन काफी समय से नहीं आ रहे थे।' आरुषि ने सच्ची बात कह दी।

'अरे, कहीं तूने शिशिर की तरफ ज़्यादा देख-वेख तो नहीं लिया न...यह किसी महिला

का अपने प्रति ज़रा भी अटेंशन से बहुत घबराता है। रास्ता बदल देता है।'

सारी बातें सुन कर तो यही लग रहा है, पिछले कुछ समय से उसे शिशिर में दिलचस्पी होने लगी थी। शायद उसकी निगाहों का मुग्ध भाव वह भाँप गया हो। इतने हैंडसम और अच्छे इंसान की ज़िंदगी का ऐसा अजीबोग़रीब स्याह पहलू सुन कर तो आरुषि का दिल ही ख़राब हो गया था।

'हाँ, यार, बहुत जतन किए इनकी माँ व बहन ने कि दोबारा शादी कर ले। लेकिन एक तो तलाक में हुई बदनामी, किस-किस को विश्वास दिलाते बेचारे कि सच क्या था, दूसरा शिशिर शादी के लिए तैयार भी नहीं होता था। यह तो किसी से मिलना भी पसंद नहीं करता था। बहुत मुश्किल से ही अपनी ज़िंदगी के अँधेरों से बाहर निकल पाया है।'

थोड़ी देर दोनों ग़मगीन सी खड़ी रह गईं।

'अच्छा चल...मेरी शापिंग तो करवा दे।' आरुषि बात बदल कर मुस्कराते हुए बोली।

'हाँ चल...पर तू अपनी ही पसंद का ले ले आरुषि..सही में किसी पर अपनी पसंद ज़बरदस्ती थोपनी नहीं चाहिए...।" रूमा वेस्टर्न कपड़ों के सेक्शन की तरफ मुड़ती हुई बोली।

'उधर नहीं इधर...' आरुषि ने उसका हाथ खींचा।

'इधर क्यों? जींस-टॉप तो उधर हैं न..।'

'हाँ, पर तू कुछ अपनी पसंद के ले न, कुछ कलरफुल सूट्स...मुझे चलेंगे।" आरुषि की काली आँखों में जुगनू चमक रहे थे।

'पर...अचानक, यह परिवर्तन कैसे?' रूमा उसे आश्चर्य से देखती हुई बोली।

'एक बात और...कल भी तू फ्री है न...रविवार भी है...शिशिर के घर चलेंगे, बिना बताए...ताकि वह घर से कहीं भाग न सके।'

'क्या..? तेरा इरादा तो नेक है न...।' रूमा ने उस की आँखों में झाँका तो कुछ जुगनू उस की पकड़ में भी आ ही गए।

'ठीक है...' वह मुस्करा कर सिर हिलाती हुई सूट्स सेक्शन की तरफ मुड़ गई।

000

लघुकथा

दो लघुकथाएँ

ज्ञानदेव मुकेश

शिकारी

दयाल जी आपने गाँव गए हुए थे। उनके माता-पिता गाँव पर ही रहते थे। गाँव की एक औरत उनके माता-पिता का सारा काम सँभालती थी। एक दिन उस औरत के साथ उसकी नौ-दस बरस की एक बेटी भी आई थी। वह गाँव के ही स्कूल जाती थी। दयाल जी उससे कुछ सवाल पूछने लगे। लड़की धड़ाधड़ जवाब देने लगी। दयाल जी समझ गए, यह तो बड़ी होनहार है। दयाल जी ने लड़की से कहा, "तू मेरे साथ शहर चल। तुझे बेटी बनाकर रखूँगा। अच्छे प्राइवेट स्कूल में नाम लिखवा दूँगा। तेरा जीवन सँवर जाएगा। बस, खाली समय में घर का छोटा-मोटा काम कर देना।"

लड़की ने तुरंत विरोध जताया, "मैं काम नहीं करूँगी..!"

दयाल जी ने पूछा, "क्या बेटियाँ घर का काम नहीं करतीं..?"

लड़की की भृकुटी तन गई, कहा, "तुम शहर वाले बेटी कहते-कहते बड़ी चालाकी से नौकरानी बना देते हो। क्या मैं यह नहीं जानती...?"

यह कह वह घर की तरफ बेलाग दौड़ पड़ी, मानों अभी-अभी किसी बहेलिए ने जाल लेकर उसका पीछा किया हो।

000

नेगटिव मार्किंग

लड़के वालों ने जैसे ही घर में कदम रखा 18 साल की बच्ची दौड़कर दरवाज़े की ओट में छुप गई। लड़के वालों ने यह देख लिया। उन्हें बड़ी तकलीफ सी हुई कि लड़की निडर नहीं है।

बुज़ुर्गों के बीच में शादी-विवाह की बात चलने लगी। लड़की दिखाने पर बात आई।

पिता अंदर गए और 18 साल की बच्ची को आदेश दिया, "तुरंत तैयार होकर बाहर आ जाओ...!"

लड़की ख़ुद से तैयार हुई और बाहर आ गई। उसने साड़ी सलीके से नहीं पहनी थी। नीचे टाँग दिख रही थी, तो ऊपर कमर। कुछ-कुछ गर्दन के नीचे का हिस्सा भी। यह देख पिता नाराज़ हो गए और चिल्लाए "बेशर्म...बेहया...! क्या ऐसे तैयार होते हैं..?"

बेटी आँखों में आँसू लिए अंदर लौट गई। सन्नाटा पसर गया।

'बाद में आते हैं", कहकर लड़के वाले वापस चले गए। बात शायद बिगड़ चुकी थी।

विडंबना यह थी कि शुरू में जिसे 'डर' समझा गया वह लड़की का लिहाज़ था। और बाद में उसकी जो 'बेशर्मी' मानी गई, वह उसका अल्हड़पन मात्र था। मगर औरत क्या करे..? वह परिवार, समाज की नज़रों में ऐसे ही मूल्यांकित हो जाती है।

000

ज्ञानदेव मुकेश, 301, साई हॉरमनी अपार्टमेन्ट, अल्पना मार्केट के पास, न्यू पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना- 800013 (बिहार)

मोबाइल– 9470200491, ईमेल- gyandevam@rediffmail.com

शून्य से आगे

कमलेश भारतीय

मैं गिड़गिड़ाया था !

यह भेद कोई नहीं जानता। मैं ख़ुद भी न जान पाता।

अगर एकदम अकेला न पड़ गया होता। मैं अकेला रह गया था और मुझे बीते हुए समय को तटस्थ भाव से परखने का मौका मिल गया था। पहली प्रतिक्रिया यही रही कि मैं ? एक भरा पूरा नौजवान और ज़रा सी बात पर अख़बारों के पन्ने रंग देने वाला गर्म मिज़ाज लेखक या कह लीजिए पत्रकार उनके सामने, जो मेरे सम्पूर्ण घृणा के पात्र रहे थे, बच्चों के समान गिड़गिड़ाया था ? उन्होंने बच्चों के समान ही लगभग झिड़कते हुए मुझे बाहर, जाने को कह दिया था।

पार्क तक पहुँचते पहुँचते मुझे अपने ऊपर शर्म सी हो आई कि इंटरव्यू के बाद मैं बात करते-करते अचानक गिड़गिड़ाने पर क्यों उतर आया था ? और दूसरी प्रतिक्रिया यह हुई कि क्या वह वास्तव में मैं ही था जो दुत्कारे जाने पर भी गिड़गिड़ा दिया था? निश्चित रूप से वह आदमी मैं ही था। यह जानते हुए मुझे बहुत हैरानी हुई कि मैं...मैं गिड़गिड़ाया था ? मुझे ऐसी क्या ज़रूरत आन पड़ी थी ?

पार्क की बैंच पर बैठते, भारी पड़ रहे सर्टिफिकेट्स का बोझ एक तरफ रखते मैं अपनी स्थिति को अपने देखने समझने की कोशिश में लग गया।

ऐसा होता है भाई ! जब आदमी घर से चलते वक्त सोची गई बात को बाहर आकर दूसरे रूप में सामने पाए ! अचानक यह सामना करना बहुत मुश्किल होता है। करना कुछ और चाहता है और कर कुछ और ही बैठता है ! कहना कुछ चाहता है और मुँह से निकल कुछ जाता है ! बस ! इतना भर ही तो हुआ है। ज़रा गौर करने की बात है और कुछ भी नहीं ! यों ही हीन भाव में डूब जाने की कोई वजह नहीं !

अकेले में कुछ सोचना हो तो सिगरेट से अच्छा कोई दूसरा साथी नहीं मिलेगा। मैंने जेब से डिब्बी निकालकर सिगरेट सुलगा ली और पार्क के पार वाली सड़क पर नज़रें जमा दीं। गर्मियों के दिन और झुलसाने वाली धूप ! इक्का-दुक्का लोग ही सड़क पर दिखाई दे रहे थे। कॉलेज जो कभी मेरा अपना हुआ करता था, तीन साल बाद इंटरव्यू देने पहुँचा था। इस बीच बहुत कुछ बदल गया था। यहाँ तक कि पेड़-पौधे तक मेरी पहचान भूल चुके थे। कैंटीन कॉन्ट्रेक्टर भी एक बार मुझे देखकर ठगा सा रह गया था -अरे...रे...अपने कवि जी ! याद दिलाने पर ही बोला था पुराने लहजे में। कैंटीन से लेकर कॉलेज तक हर जगह चर्चा का विषय मैं ही तो बना रहता था ! पढ़ाई में, खेल में सबसे आगे। सुबह सवेरे आठ बजे आकर टेबल टेनिस रूम में जाता तो नाश्ता,

कमलेश भारतीय
1034 बी, अर्बन एस्टेट 2, हिसार
(हरियाणा) 125005
मोबाइल- 9416047075
ईमेल- bhartiyakamleshhsr@gmail.com

दोपहर का खाना और शाम की चाय वहीं होती! खेल चलता और एक ही शर्त रहती - विनर टू कान्टीन्यू ! जो जीतता चलेगा, वही एक छोर पर खेलता रहेगा। दूसरी तरफ के खिलाड़ी हारते जाते और मैं बहुत थक जाने के बाद ही तानें सुनने के बाद ही हटता तो भी अपनी खुशी से ! यार लोग कहते -तू साले लिखता है तो ज़ोरदार और पढ़ता है तो ज़ोरदार ! खेलता है तो मार-मार कर कोर्ट से बाहर भेज देता है। इस उम्र में इतना कुछ एक बार करेगा तो कितने दिन जिएगा ?

सब तीन बरस पहले की बातें हैं। अब तो सामने खाली सड़क है और है वही एक सड़क छाप पुराना ज्योतिषी ! जो पहले केवल भगवान् के नाम कुछ दे दो कह कर गिड़गिड़ाया करता था और अब बड़ी चालाकी से ज्योतिषी बन बैठा है ! लड़के लड़कियों की प्रेम संबंधी समस्याएँ हल करने लगा है। रोटी तो रोटी अब तो शाम को रंगीन करने का जुगाड़ हो गया है !

यह बहुत दिनों की बात नहीं है। थोड़े दिन पहले मैं भला चंगा था। मस्ती भरे दिन थे। इसी छोटे से कस्बे में बहुत सम्मान के साथ जी रहा था। एक बड़े दायरे में उठता बैठता था। दोस्तों के बीच हर करंट टॉपिक पर बहस करता था। अपने आप में एक भरा पूरा, खुशमिज़ाज आदमी था। हर तरफ से निश्चिंत ! हर फ़िक्र को धुएँ में उड़ाने की कला ! बहुत धनी और रौबदार बेशक नहीं था लेकिन अपनी छोटी सी नौकरी और कलम के बल पर अपनी घर गृहस्थी से लेकर दुनिया की नज़रों में ठाठ की ज़िंदगी जी रहा था। सुबह बड़ी अच्छी शुरू होती थी और शामें...अक्सर पत्नी के साथ सैर करते बीत जाती ! फूलों के बारे में बातें करते, किसी ग़ज़ल का कोई प्यारा सा शेर गुनगुनाते!

फिर अचानक यह सिलसिला टूट कर रह गया। चुनाव आयोग पहुँचे थे। मैं भी एक पक्ष को सही मानते हुए अपनी कलम सहित उसमें शरीक हो गया था। रात-रात भर जाग कर लेख लिखता, सुबह नौकरी पर चल देता। शाम को छुट्टी के बाद चुनाव कैप में पहुँच जाता। इधर-उधर से चंदा भी इकट्ठा करता। अनपढ़ लोगों के साथ माथापच्ची करता -अपने वोट का सही इस्तेमाल करना। मज़दूर बस्तियों में छोटे-छोटे भाषण भी देने लगा था -अपने वोट का सही इस्तेमाल करना। यह तुम्हारा हक है। इसे तुमसे कोई छीन नहीं सकता। आधी रात तक घर लौटता। पत्नी थाली में खाना लगाये तैयार मिलती। अगले दिन के मोर्चे के बारे में लिखकर, करवटें बदलते जैसे-तैसे बची हुई रात गुज़ार देता।

एक सुबह दफ्तर पहुँचा तो बड़े बाबू ने मेरे नाम बुलावा भेजा। उनके कमरे में गया तो सामने कुर्सी पर विपक्ष के प्रत्याशी को अपने स्वागत में मुस्कराते पाया।

'आओ देखो ! कौन मिलने आए हैं !' बड़े बाबू पहली बार शायद मुझसे इतना मीठा बोले थे।

मैं आराम से कुर्सी पर बैठ गया। पर जैसे जैसे सवाल जवाब बढ़ते गए मैं आराम से कुर्सी पर बैठा न रह सका !

'नहीं, नहीं, बड़े बाबू मुझसे यह न हो सकेगा। मेरी कलम रुक नहीं सकती। कलम के प्रहार इतने ही तीखे रहेंगे ! यह कलम शोषण की चक्की में पिसते लोगों की आवाज़ बनी रहेगी।'

'और तुम्हारी आवाज़ कौन पहुँचाएगा?'

'किस मामले में?'

'एम ए कर रखी है भाई ! क्या सारी उम्र इसी क्लर्की में सड़ना है ? हम तो भैया अब टूटे सींग वाले साँड हुए किसी काम के नहीं रहे। तुम तो अभी जवान हो। आँखों में कई ख्वाब होंगे ! क्यों जानबूझकर उनको भुलाये हुए हो?'

'मेरी कलम ही मेरा सपना है, मेरा सत्य है!'

'और अगर तुम्हारी कलम ही तुम्हारे साथ न रहे तो?'

'कौन माई का लाल इसे छीन सकता है ? देखूँ तो !'

'बरखुरदार ! लिखने बैठते हो, कोई पाँव के नीचे ज़मीन तो चाहिए कि नहीं ? और तुम्हारा आधार है यह नौकरी। जिसके बल पर तुम ऐंठ रहे हो। नौकरी से निकालना कोई मुश्किल काम नहीं। फिर तुम्हारी यह कलम तुम्हें रोटी दे देगी ? तुम्हारी माँ, तुम्हारी पत्नी, छोटे बच्चे भूखे रह लेंगे ? कुछ सोच विचार करो !

फिर वे मुझे यह दलील देकर कि यह एक दफ्तर है। यहाँ हर ऐरा गैरा आता-जाता है, और यहाँ राजनैतिक बात करना शोभा नहीं देता, वे मुझे अपने साथ कार में ले गए थे। वहाँ उनके चमक- दमक वाले ऑफ़िस में मेरा भविष्य हवा में लटक रहा था। मेरे सामने मेरे उज्ज्वल भविष्य की तस्वीर पेश की जा रही थी, जिसमें मेरे सपने पूरे हो सकते थे। पहली बार मुझे अपनी बीमार माँ का चेहरा याद आया, जो सरकारी अस्पताल से रंगीन पानी के घोल को पी पीकर ख़ुद को छलती हुई दिन गुज़ार रही थी। फिर पत्नी का चेहरा याद आया जिसमें ज़िंदगी को भरपूर जीने की ललक दिखाई देती थी, पर वह मेरी खस्ता हालत का अंदाज़ लगा कभी कोई बेवजह माँग नहीं करती थी। पीछे-पीछे दोनों छोटे भाइयों के चेहरे भी आ मिले थे। वे जब से स्कूल कॉलेज में पढ़ रहे थे तब से फीस माफी की अर्ज़ी लिखते आ रहे थे और जिस-तिस लड़के से उधार किताबें माँग-माँग कर क्लासें पास कर रहे थे। विवाहित बहन भी याद हो आई जो अपने नन्हे-मुन्ने के लिये मामा की ओर से किसी बड़े तोहफे की उम्मीद लिये हर बार यूँ ही लौट जाती थी। बच्चे को बहलाती फुसलाती ससुराल जाकर कई झूठ बोल देती थी।

वह फैसले का क्षण था। क्षण जो दोबारा नहीं लौटता। उसी क्षण मुझे मज़दूरों के साथ की गई माथापच्ची याद आ गई थी।

'देखो ! टूटना नहीं। झुकना नहीं। वह हमारा विरोधी हर चंद कोशिश करेगा कि तुम्हें तोड़ लिया जाए ! तोड़ न पाये तो तुम्हें खरीद लिया जाए। तुम्हें खरीदने की कोशिश होगी उसकी। देखो, मेरे दोस्तो, बिकना नहीं ! तुम कोई भेड़ बकरी नहीं हो जो तुम्हारा सौदा होगा, मंडी लगेगी, बोली लगेगी ! याद रखो, एक-एक आदमी की वोट जब तक सही आदमी के हक में नहीं जाएगी तब तक आपके सच्चे उम्मीदवार आगे नहीं आएँगे ! जागो, दोस्तो जागो ! तभी लोकतंत्र जागेगा !'

'बोलो नौजवान ! क्या इरादा है?'

बिना कोई जवाब दिये मैंने बियर के पैग को उनके पैग से टकरा दिया था अनजाने में थोड़ा ज़ोर से ! एकाएक नशे के पहले सुरूर में कॉलेज के दोस्तों की बात याद आई थी- स्साले ! इस कलम से तू हमें मारता है, हमारी बददुआ है कि एक दिन यह कलम तुझे मारे !

बड़े बाबू मेरी पीठ थपथपाते कह रहे थे - आज तुमने मेरी क़द्र बढ़ा दी। बड़े समझदार हो और इसी समझदारी से बाप के मरने के बाद घर परिवार सँभाल लिया।

चलते समय मुझे एक बंद लिफाफा और ढेर सारे आश्वासन मिले थे। जैसे ही ड्राइवर मुझे उतार कर कार मोड़ने लगा वैसे ही मैंने जेब टटोलते आवाज़ दी, ज़रा ठहरना !

वह साहबी आदेश को कैसे टाल सकता था ? मैंने दरवाज़ा खोलकर पूरी कार छान मारी लेकिन वह चीज़ नहीं मिली जिसकी तलाश में था !

'क्या खो गया साहब ? मुझे बताइए। मैं ढूँढ़ कर देता हूँ।'

'नहीं। नहीं। जाओ। कुछ नहीं खोया है।'

'वह सब मैं नशे में कह रहा था। जैसे ही नशा उतरा वैसे ही मुझे मालूम हुआ कि मेरी सबसे सस्ती लेकिन कीमती कलम खो गई थी। ऊपर से देखने पर मैंने कोई ख़ास चीज़ नहीं खोई थी लेकिन अंदर से मैं अपना आप ही खो आया था ! सब कुछ ठीक कहाँ था ? सब कुछ उलट पुलट हो गया था। अपनी कलम के बगैर मैं अपनी ही नज़रों में एक दफ्तर का मामूली सा क्लर्क ही रह गया था ! मज़दूर बस्तियों के सस्ते दारू पर वोट डालने वाले मज़दूरों के दर्जे से कहीं नीचे गिर चुका था। कहीं से भी गुज़रता अपने ख़िलाफ़ नारे, बातें और कानाफूसियाँ सुनने को मिलतीं। सब सहता और सुनता ! न पक्ष, न विपक्ष...मैं किसके साथ था ? न इधर, न उधर... किस तरफ था मैं ? मेरी ज़मीन कौन सी थी ? पर फैसले का पल तो हाथ से निकल चुका था ! हाथ से फिसल चुका था। दोबारा कैसे लौटता? घर में अलग वातावरण में मेरे भाई रह रहे थे। वे पीछे हटते भी कैसे ? मेरे साथ ही तो पार्टी का झंडा और पर्चे बाँटने जाते थे। वे तो नहीं झुके थे किसी के आगे ! उनकी धड़कन तो उसी तरह चल रही थी, उसी पार्टी के साथ ! उनकी आवाज़ कोई नहीं दबा सकता था। उन्हें कोई खरीद नहीं सकता था। अंदर ही अंदर मैं उनके इस कदम पर खुश भी था। उनकी वजह से ही मेरा बचाव हो रहा था। लोग अब मुझे सरेआम टोकते नहीं थे। न मेरे घर के आगे से जुलूस निकाला गया था। इतने पर भी उस जीत को जिसकी खातिर मेरी कलम की नोक ही तोड़ दी गई थी, उस जीत को तहेदिल से महसूस कर रहा था। मेरे सहयोग के बिना ही सही मेरे दूसरे भाइयों के सहयोग से शहर में से बुराई का अंत तो किया जा सका ! मैं भी जुलूस में शामिल होकर खुशी से झूमते नाचना चाहता था लेकिन मन मसोस कर रह गया ! जुलूस को दूर से गुज़रते देखते रह जाना पड़ा! वक्त किसी को माफ़ नहीं करता ! राजनीति बड़ी क्रूर है। मुझ जैसे अदने से पत्रकार को माफ कैसे कर सकती थी ? राजनीति गले लगाती है मौकापरस्तों को ! हवा को बदलते देख बदलने वालों को !

तभी आज मुझे पूरी योग्यता के होते हुए भी राजनीति के चलते दुत्कारा गया। किसी ने नहीं पहचाना मुझे। सबने इंकार कर दिया पहचानने से ! दिल रखने के लिए इंटरव्यू ले लिया। बस! मैंने उठते-उठते ग़लती की थी गिड़गिड़ाने पर उतर आया था ! तब से पार्क में बैठा अफसोस मना रहा हूँ -क्यों गिड़गिड़ाया था मैं ? क्या मेरे कंधे टूट चुके थे ? अब मैं बोझ नहीं उठा सकता राजनीति का ? राजनीति क्या मेरे जैसों के खेलने लायक खेल नहीं ? पर मुझे जीना है। जीना है तो खेलना होगा ! फिर से टेबल टेनिस वाला खिलाड़ी मेरे भीतर ज़िंदा हो रहा है। वही खिलाड़ी जो एक छोर पर खड़ा हो जाता था तो दूसरे छोर के खिलाड़ी एक-एक कर हारते चले जाते थे और उस खेल का एक ही नियम था -विनर टू कांटीन्यू! जो जीतता रहेगा, वह खेलता रहेगा ! मैं इस खेल में शून्य पर रह जाने के बावजूद बिल्कुल घबराता नहीं था। शून्य से ही आगे बढ़कर जीत जाता था। आज फिर मुझे शून्य पर लाकर खड़ा कर दिया गया है ! मैं शून्य से ही फिर आगे बढ़ने के लिए उठ खड़ा होता हूँ!

000

लघुकथा

निर्णय

राजनंदिनी राजपूत

घर में खुशी का माहौल था। सब शालिनी के लिए आए रिश्ते के बारे में बात कर रहे थे, लड़का अच्छे और ऊँचे खानदान था। घर में किसी चीज़ की कमी नहीं थी लेकिन शालिनी अभी तक उलझन में थी, क्या यहीं काफी था ज़िंदगी के लिए ? घर में लगभग सब इस रिश्ते के लिए तैयार थे पर शालिनी...

शालिनी हर बार की तरह इस बार भी साहित्य में अपनी उलझन का जवाब ढूँढ़ रही थीं... तभी उसकी नज़र एक कहानी पर गईं... कहानी में एक पिता अपनी बेटी के लिए रिश्ता देखने के लिए जाता हैं... घर बड़ा और लड़का अच्छा होने के बावजूद वह रिश्ता मना करके आ जाता हैं... अपनी पत्नी के पूछने पर कि आख़िर सब कुछ तो था..फिर आप रिश्ते के लिए मना क्यों कर आए !

तब पिता ने कहा, "हाँ ! घर में सब कुछ था लेकिन किताबें नहीं थीं... और मेरी बेटी की अब तक की ज़िंदगी किताबों के साथ बीती हैं... फिर बाकी ज़िंदगी वह कैसे उनके बगैर बिता लेती ? वहाँ सब था मगर क्या वहाँ ज्ञान का मोल था...क्या वहाँ मेरी बेटी की जिज्ञासाओं, सपनों और आत्मनिर्भरता का मान था ? नहीं न ! बस इसलिए ही मैं मना कर आया।

कहानी के अंत तक शालिनी को अपना जवाब मिल गया था।

000

राजनंदिनी राजपूत
मोबाइल-8619885599

कथा-कहानी

डॉलर ट्री

शुभ्रा ओझा

शुभ्रा ओझा
406 ग्राउस लेन, डियरफ़ील्ड, इलिनॉय
60015
मोबाइल- 847-393-5126
ईमेल- imshubhra.ojha@gmail.com

"बेटा आज ऑफ़िस से ज़रा जल्दी आ जाना और शाम को मुझे लेकर टार्गेट (जनरल स्टोर) चलना।"

"अरे पापा, आपको अगर कुछ चाहिए तो मुझे बता दीजिए। मैं ऑफ़िस से लौटते वक्त ले आऊँगा।"

"नहीं बेटा, मैं ख़ुद ही जाऊँगा। गुनगुन बिटिया का जन्मदिन आने वाला है; तो सोच रहा हूँ टार्गेट से ही कुछ गिफ़्ट ले लूँ।"

"पापा आप गिफ़्ट के लिए परेशान न हो। मैंने और नीलम ने गुनगुन के लिए गिफ़्ट ले लिया है।"

बेटे अरुण की बात सुनकर दयानंद जी का चेहरा उदास हो गया। वे पहली बार अमेरिका में अपनी पोती के जन्मदिन में शामिल होने वाले हैं, इसलिए बहुत उत्साहित हैं। मन में सोच रखा था कि गुनगुन बिटिया के लिए कुछ नए खिलौने लेंगे लेकिन अरुण बेटे के मना करने से उनका चेहरा उतर गया। तभी उनकी बहू नीलम वहाँ आई और उन्हें आई-पैड देते हुए बोली-

"पापा यह लीजिये आई-पैड, आपको अपनी गुनगुन बिटिया के लिए जो कुछ लेना है वह ले लीजिए।"

दयानंद जी ने देखा आई- पैड पर टार्गेट स्टोर की साइट खुली हुई है और उस पर तरह - तरह के खिलौने छोटे-छोटे बॉक्स में दिख रहे हैं। नीलम ने आगे समझाते हुए कहा-

"पापा, आपको जो भी खिलौने पसंद आएँ, वे यहाँ कार्ट में सेव कर दीजियेगा। फिर मैं वह सब कुछ ऑर्डर कर दूँगी और कल शाम तक सब कुछ घर पर आ जाएगा। वैसे भी गुनगुन का जन्मदिन दो दिन बाद है।"

दयानंद जी ने आई पैड लिया और घर के बैकयार्ड में कुर्सी पर बैठ गए। आई पैड के स्क्रीन को स्क्रोल करते हुए वे खिलौनों को देखने लगे, साथ में उन खिलौनों के दाम को भी देख रहे हैं। तीस डॉलर, पैंतीस डॉलर से कम तो कुछ समझ ही नहीं आ रहा। वे मन ही मन डॉलर को रुपए में बदल कर हिसाब लगाने लगे। मतलब ढाई हज़ार से तीन हज़ार के नीचे तो कुछ भी नहीं मिल रहा। बहुत देखने पर पंद्रह डॉलर की बार्बी गुड़िया दिखी, लेकिन बार्बी गुड़िया तो कई तरह की गुनगुन बिटिया के पास हैं। अब क्या करूँ ? दयानंद जी सोचने लगे...

वैसे भी कोविड के बाद पूरी दुनिया में महँगाई इतनी बढ़ गई है कि क्या कहा जाए, तो अमेरिका महँगाई में क्यों पीछे रहता भला। यहाँ अमेरिका में देसी किराने की दुकान पर खाने-पीने की सभी चीजें बहुत आसानी से मिल जाती हैं। यहाँ देसी किराने की दुकानें भी वैसे ही होती हैं जैसे कि भारत में, लेकिन यहाँ की सामग्री पर डॉलर के टैग लगे होते हैं, जैसे कि पाँच किलो आटा- ग्यारह डॉलर, एक लीटर सरसों का तेल- सात डॉलर, पाँच किलो बासमती चावल- पंद्रह डॉलर, और एक किलो अरहर दाल - पाँच डॉलर का। यहाँ तक कि पूजा घर में जलने वाले दीए में जो बाती लगाते हैं, वह भी मिल जाती है किराने के स्टोर पर; लेकिन एक छोटा बाती का पैकेट पाँच डॉलर का, जिसमें मुश्किल से दस बाती होती होगी।

जब पहली बार दयानंद जी ने बाती के पैकेट पर पाँच डॉलर का टैग दुकान में देखा तो उन्होंने मन ही मन में जोड़ा एक डॉलर में अस्सी रुपए यानी पाँच डॉलर का मतलब चार सौ रुपये का एक छोटा सा बाती का पैकेट। उस दिन दुकान से घर आकर दयानंद जी ने अपने बेटे से पूछा "यहाँ तो सब कुछ बहुत महँगा है, कुछ सस्ता भी मिलता है इस देश में?" दयानंद जी की बात सुनकर उनका बेटा हँसा- "पापा कल आपको मैं डॉलर ट्री ले चलूँगा। वहाँ आपको सस्ती चीज़ें दिखेंगी।" अगले दिन वे दोनों डॉलर ट्री के सामने खड़े थे। स्टोर देखकर दयानंद जी अपने बेटे अरुण से बोले- "हैरान हो रहा हूँ, भारत में बैठे लोग सोचते हैं कि अमेरिका में तो हर घर में एक डॉलर ट्री है; जिसमें ख़ूब सारे डॉलर लगते हैं। यहाँ अमेरिका में तो डॉलर ट्री स्टोर है, जिसमें मिल रहा है अमेरिका का सबसे सस्ता सामान।" यह कह कर वे दुकान के अंदर चले गए। वहाँ जाकर देखा तो हर चीज़ एक डॉलर की मिल रही थी; जिसमें कुछ चॉकलेट, क्राफ्ट आइटम और लिखने के लिये नोटबुक उनके बेटे अरुण ने अपनी बिटिया गुनगुन के लिये ले ली।

"बिटिया के लिए इतनी सस्ती चीज़ें क्यों ली" दयानंद जी ने अपने बेटे से पूछा तो उनके बेटे ने दयानंद जी को बताया कि "बच्चे तो मन के सच्चे होते हैं पापा, वे पैसे नहीं देखते। आपको याद हैं जब मैं और भाईया छोटे थे तो आप ऑफ़िस से घर लौटते हुए कभी टॉफ़ी लाते थे तो कभी बिस्कुट। हम दोनों शाम को आपका इंतज़ार ही इसलिए करते थे कि पापा कुछ खाने को लेकर आएँगे। अब वह ख़ुशी हर दिन तो मैं गुनगुन को यहाँ अमेरिका में नहीं दे सकता इसलिए हफ़्ते दो हफ़्ते में यहाँ डॉलर ट्री आ जाता हूँ और उसकी पसंद की चीज़ें ले जाकर उसे दे देता हूँ। उसकी खुशी में अपना बचपना जी लेता हूँ।" सच ही तो है हम जाने अनजाने ख़ुशियों का मोल लगाने लगते हैं लेकिन छोटी-छोटी ख़ुशियाँ बिना किसी मोल के हमारे आस-पास बिखरी होती हैं जिसे हम देख ही नहीं पाते।

यह सब सोचते हुए दयानंद जी की नज़र फिर से आई-पैड पर गई तो उन्होंने कुछ और खिलौने देखने शुरू कर दिये तभी उनकी बहू नीलम एक कप चाय लेकर उनके पास आई और वही मेज़ पर रखते हुए बोली-

"पापा चाय"

"अभी एक घंटे पहले ही तो पी थी।"

"कोई बात नहीं, मुझे पता है कि आपको चाय पीना अच्छा लगता हैं। अम्मा जी हमेशा बताती थी कि आप कभी भी चाय के लिए मना नहीं करते।"

"अच्छा, अच्छा... चाय लाओ बहू, सरला का नाम लेकर मुझे भावुक न करो। आज अगर वह होती तो अमेरिका में तुम लोगों का यह घर देखकर कितनी ख़ुश होती।"

"पापा, यह क्या...तुम लोगों का यह घर! यह घर आपका भी है।"

यह कहकर मुस्कराती हुई बहू नीलम घर में चली गई और दयानंद जी ने आई पैड को पास में पड़े हुए मेज़ पर रखा और चाय उठा ली। जैसे ही उन्होंने चाय की पहली घूँट ली सोचने लगे यहाँ मैं अपने देश से हज़ारों मील दूर अमेरिका में अपने बेटे-बहू के घर में बैठा हूँ; फिर भी बेहद अपनापन लग रहा है; जो इस अनजान देश में मुझे मिल रहा है। जब अमेरिका में घर लेने की बात बेटे-बहू ने सरला को बताई थी तो शायद मैं ही वह शख़्स था जिसने सबसे ज़्यादा ग़ुस्सा दिखाया था और सरला ने कितने शांत मन से मुझे समझाते हुए कहा था कि "अपने बच्चे दुनिया के किसी भी कोने में घर ख़रीदे वह हमारा ही है।" मैंने भी कितने ग़ुस्से में कहा था "यही है मेरा घर यहाँ मेरे देश में, जिसे बनाने में मेरी पूरी उम्र निकल गई। मैं तो यही रहूँगा अपने इसी घर में अपने बड़े बेटे, बहू और बच्चों के साथ, तुम्हें जाना होगा तो चली जाना अमेरिका अपने छोटे बेटे के पास।" सरला ने भी कितना इतरा कर मुझसे कहा था "मुझे अपने दोनों बेटों पर बहुत गर्व है और जहाँ तक रही घर की बात तो मेरे पास अब दो घर हो गए हैं एक यहाँ अपने देश में और एक परदेस में, मैं तो ज़रूर जाऊँगी अपने दूसरे घर।"

हम कितना कुछ सोचते हैं। कितना कुछ करते हैं और बहुत कुछ करेंगे, यह सोच लेते हैं। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि नियति के गर्भ में कुछ और छुपा है और होता भी वही है जिसका हमें भान नहीं होता।

सरला ऐसे अचानक घर-परिवार और मुझे अकेला छोड़ कर हमेशा के लिए भगवान् के पास चली जाएगी, ऐसा तो मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। जिस छोटे बेटे को लेकर जान देती थी, वह बेटा कोविड की वजह से अपनी माँ के अंतिम दर्शन भी न कर सका। ख़बर सुनकर अमेरिका से भारत आने में ही दो दिन निकल गए। और जब पूरे घर को एक सूत्र में बाँधने वाली डोर ही टूट जाए तो घर का हर सदस्य मोती समान बिखर ही जाता है। हुआ

भी ठीक वैसा ही, सरला के जाते ही मैं अपने ही घर में बोझ बन गया। बेटे-बहू मुझसे ऐसे बात करते जैसे खाना बना कर, खिला कर मुझ पर एहसान कर रहे हैं, जबकि मेरी कोशिश होती कि काफी हद तक अपने काम ख़ुद ही कर लूँ। अपने पैसों से मैं घर की सब्ज़ी और राशन बिना कहे ही ला देता। साल में बेटा, बहू और पोते के जन्मदिन पर कपड़े भी ख़रीद देता। तब भी बड़े बेटे के परिवार में मेरे साथ ऐसा व्यवहार होने लगा कि यह सब करना तो मेरा फ़र्ज़ है। यह सब तो ठीक था, हद तब हो जाती जब बड़ा बेटा हर छह महीने में कोई न कोई नया प्रोजेक्ट निकाल कर मुझ से पैसों की मदद माँगता। उसे कभी घर के ऊपर कुछ और कमरे बनवाकर किराये पर देना होता तो कभी दिवाली पर पूरा घर पेंट कराकर बिजली की झड़ियों से सजाना होता। मैं हर बार उसे समझाता कि जितने पैसे हों उतने ही काम कराओ तो वह हँसते हुए मुझसे कहता-

"अरे पापा, आप इतनी चिंता क्यों करते हो। आपका छोटा बेटा अमेरिका में कमाता है और आप कुछ जानते भी हैं कि एक डॉलर की क़ीमत रुपये में कितनी होती है ? बहुत ज़्यादा है। अगर वह तीन हज़ार डॉलर भी कमाता होगा तो इसका मतलब दो-तीन लाख वह एक महीने में कमा लेता होगा। अगर कभी दो-चार महीने में कुछ पैसे घर में भेज देगा तो कौन से उसके डॉलर कम हो जाएँगे।"

"वह डॉलर में कमाता है तो डॉलर में खर्च भी तो करता होगा। नमक से लेकर चावल तक हर चीज़ उसे खरीद कर खानी पड़ती होगी। मैं भी तो उसकी कुछ मदद नहीं कर पाता। तुम्हारी माँ थी तो उसका कुछ हाल चाल मिल भी जाता था। पर अब मुझसे वह बात तो करता है लेकिन दिल की कोई बात नहीं करता। बस, हाल-चाल पूछकर रख देता है।"

"आप बेवजह फ़िक्र करते रहते हैं उनकी, वे लोग अमेरिका में रहते है कोई परेशानी नहीं होती वहाँ। अमेरिका में सारे लोगों के पास बहुत पैसे होते हैं। सुना है वहाँ घरों में काम करने वाले लोग भी कार से आते हैं। तो आप वहाँ की बात छोड़िए और अरुण को कॉल करके सात लाख रुपये माँग लीजिये। मुझे पूरे घर के फ़र्श को तुड़वाकर मार्बल लगवाना है।"

"कोई ज़रूरत नहीं मार्बल लगवाने की फ़र्श ठीक है।"

"आपके हिसाब से ठीक होगा लेकिन मेरे हिसाब से नहीं। आप पैसे माँगिए उससे।"

"अरुण वैसे भी कई लाख दे चुका है, अब मैं उस से एक रुपया भी नहीं माँगूँगा।"

"पापा, आप हमारे साथ रहते हैं और गुणगान उसका करते हैं। अगर इतना ही प्यार है उससे, तो अमेरिका ही चले जाइए। जब आप वहाँ जाएँगे तब आप समझेंगे हमारी कीमत।"

उस दिन बड़े बेटे की बात सुनकर मैं चुप हो गया था। अगले ही दिन फ़ोन पर मेरी बात छोटे बेटे अरुण से हुई और मैंने उसे बताया कि मैं एक बार अमेरिका आना चाहता हूँ तुम्हारे पास। मेरी बात सुनकर वह फ़ोन पर ही चहक उठा। कुछ महीने लगे अमेरिका जाने की तैयारी में और अंततः मैं अमरीका पहुँच ही गया।

कभी-कभी फ़ायदे में रहते हुए अचानक हम यह भूल जाते हैं कि हमारा फ़ायदा आख़िर किसकी वजह से है ? यही हुआ मेरे बड़े बेटे के साथ, जब मैं भारत से अमेरिका आ गया तब उसे धीरे-धीरे समझ आने लगा कि मेरी क़ीमत क्या है ? अब दूध का हिसाब, कामवाली बाई का हिसाब, घर के लिए किराना का सामान और फल-सब्ज़ियों को ख़रीदने के लिए मेरे बड़े बेटे को अपने रुपये खर्च करने पड़ रहे थे। जैसे-जैसे उसके रुपये खर्च हो रहे थे वैसे-वैसे उसकी बातों में मिठास बढ़ती जा रही थी।

दयानंद जी अपने ख़यालों में खोए थे कि अचानक उनकी बहू ने आकर उन्हें उनका मोबाइल दिया और बोली "भइया का फ़ोन आ रहा है...।"

दयानंद जी ने फ़ोन उठाया-

"हैलो पापा, प्रणाम।"

"खुश रहो बेटा।"

"पापा, आप कब आ रहे ?"

"सोच रहा हूँ कि गुनगुन बिटिया का जन्मदिन हो जाए तब उसके बाद वापस आने का टिकट कराऊँ।"

"हाँ पापा, आप सही सोच रहे हैं, लेकिन गुनगुन के जन्मदिन के बाद आप जल्दी से वापस आ जाना।"

"क्यों ? क्या हुआ ?. सब ठीक है न ?"

"हाँ पापा सब ठीक है। माँ के जाने के बाद घर थोड़ा सूना हो गया था; लेकिन आप जब से गए हैं पूरा का पूरा घर वीरान हो गया है। बच्चे भी आपको खोजते हैं, साथ ही मैं भी शाम को बहुत उदास हो जाता हूँ। हमारी शाम की चाय तो आपकी ख़बरों के साथ ही पूरी होती थी। याद हैं न आपको ?"

"हाँ बेटा, सब याद है। मुझे भी तुम लोगों की बहुत याद आती हैं। जल्दी आऊँगा।"

"पापा, अब जब आप आ ही रहें हैं तो एक बार अरुण से पैसों के बारे बात कर लीजिएगा। हम सब का घर हैं। फ़र्श का काम हो जाएगा तो घर अच्छा ही लगेगा।"

"बेटा तुम्हें पता है, अरुण ने यहाँ अमेरिका में एक बहुत ही बड़ा घर लिया है। पूरब दिशा की तरफ़ घर का मुख्य द्वार है। चार बेडरूम, एक किचन, एक फ़ैमिली रूम, तीन बाथरूम, दो गाड़ी रखने वाला गैराज और घर के पीछे एक बड़ा बैकयार्ड...और मैं इसी बैकयार्ड में बैठा हुआ हूँ। मुझे यहाँ से चारों तरफ़ धूप दिख रही है, हरी-हरी घास और कुछ फूलों के पौधे दिख रहे हैं। मैं बहुत कोशिश कर रहा हूँ देखने की; लेकिन मुझे यहाँ दूर-दूर तक कोई "डॉलर ट्री" नहीं दिख रहा, जिससे अरुण तुम्हारे लिए डॉलर तोड़कर मेरे साथ भेज सके।"

यह कहकर दयानंद जी ने फ़ोन काट दिया और पास में रखे आई-पैड को उठा कर देखने लगे तो उस पर कुछ चमकती हुई बार्बी डॉल दिख रही थी। उन्होंने उस दुकान की साइट पर स्मार्ट वॉच लिखा और थोड़ी देर में कई तरह की वॉच स्क्रीन पर दिखने लगी। दयानंद जी ने गुनगुन बिटिया के लिए एक स्मार्ट वॉच के "बाइ-बटन" पर क्लिक कर दिया, डॉलर को बिना रुपये में बदले हुए।

000

कथा-कहानी

यह देश हुआ बेगाना...

गोविन्द उपाध्याय

गोविन्द उपाध्याय
ग्राम-पकड़ियार उपाध्याय छपरा,
पोस्ट- दांदोपुर (पडरौना),
जिला-कुशीनगर-274304 उप्र
मोबाइल- 9651670106
ईमेल- govindupadhyay78@gmail.com

फरवरी का आख़िरी सप्ताह था। हवा में अभी ठंड थी। शाम के साढ़े पाँच बज रहे थे। अँधेरा दबे पाँव धरती पर दस्तक देने लगा था। मिलिंद अभी-अभी ऑटो से उतरे थे। सामने ही बस स्टैण्ड था। सैंकड़ों बार तो यहाँ आए थे। जब ख़ुद कहीं जाना होता था या किसी मेहमान अथवा मित्र को छोड़ने आना होता था। इस शहर का दूसरे राज्यों में जाने वाली बसों का इकलौता बस स्टैण्ड था यह ...। काफी दूर तक फैला हुआ था। मिलिंद को सब मालूम था ... दिल्ली की बसें कहाँ खड़ी होती हैं। गाँव के लिए बसें कहाँ से मिलती है। ऑफ़िस किधर है और वेटिंग रूम कहाँ है....। अनजान आदमी तो बसों की भीड़ में भटकता रह जाएगा।

मिलिंद कुछ देर तक मुख्य सड़क पर खड़े अपरचित से परिवहन निगम के बोर्ड को ही घूरते रहे- 'परिवहन निगम आपका स्वागत करता है'। शायद यह बोर्ड नया लगा था। पहले कभी वह इतनी देर तक सड़क पर खड़े भी तो नहीं होते थे। सीधे उस बस की तरफ भागते थे, जिससे जाना होता था। उनके पास इतनी फुरसत ही कहाँ होती थी, आस-पास की चीज़ों को देखने की। उन्होंने गहरी साँस खींची। और एअर बैग को कंधे पर लटकाकर आगे बढ़ गए। थोड़ी देर बाद मिलिंद पूछताछ की खिड़की के सामने खड़े थे, "दिल्ली के बस की जानकारी चाहिए थी।"

खिड़की के दूसरी तरफ एक नौजवान लड़का बैठा था। उसने मुस्कराते हुए कहा, "सॉरी सर आप थोड़ा लेट हो गए। पाँच मिनट पहले ही बस निकली है। अब आपको दो घंटे इंतज़ार करना पड़ेगा।"

मिलिंद बगल में बने वेटिंगरूम में जाकर बैठ गए। पूरे हॉल में तीन चार लोग ही थे। उन्होंने आँखें बंद कर लीं और शरीर को ढीला छोड़ दिया।

सब कुछ पहले से ही निर्धारित था। उन्हें इस शहर को अब छोड़ देना है। सरकारी आवास में बहुत दिन तक नहीं रहा जा सकता था। हालाँकि वे इस शहर को छोड़ना नहीं चाहते थे। पूरी उम्र तो उन्होंने इसी शहर में काट दिया था। अब इसे छोड़कर जाने का मतलब था, बिलकुल नए ढंग से जीवन की शुरुआत करना। लेकिन उनकी मजबूरी थी। वह अकेलेपन से हमेशा घबराते थे। लेकिन अकेलापन उनकी नियति बनकर रह गया था। वह इस बारे में जितना सोचते उलझते चले जाते। ज़िंदगी भी अजीब खेल खेलती है। जब आपको लगता है कि थोड़ा सुकून मिलने वाला है, अप्रत्याशित मुसीबत उसी पल का इंतज़ार कर रही होती है। जब तक आप सँभलने की कोशिश करते। छत-विछत हो चुके होते हैं। उसके बाद आप पर हमदर्दी की बौछार शुरू हो जाती है, "ओह! बहुत बुरा हो गया। हिम्मत से काम लीजिए। हम समझ रहे हैं, बहुत कठिन समय है। धैर्य रखने के सिवा और दूसरा कोई विकल्प भी तो नहीं है...।" ये महज औपचारिकताएँ हैं। दर्द तो स्वयं ही झेलना पड़ता है। कुछ दिन परिजनों की सहानुभूति आपके साथ रहती है। उसके बाद सब अपने आप में व्यस्त हो जाते हैं। समय का मलहम धीरे-धीरे दर्द को कम करता जाता है या फिर उस दर्द की आदत-सी पड़ जाती है। तभी कोई दर्द लंबे समय तक पीड़ादायक नहीं रहता है।

मिलिंद को लगता है कि वह बातों को दार्शनिक की तरह सोचने लगते हैं। बिना सिर-पैर के वाहियात विचार ...। शायद अब मस्तिष्क पर उम्र का प्रभाव पड़ने लगा है। अचानक वेटिंग रूम में किसी की तेज़ आवाज़ सुनाई देती है और मिलिंद की एकाग्रता भंग हो जाती है। उन्होंने आती हुई आवाज़ की तरफ देखा। सफाई कर्मी था। उसे हॉल की सफाई करनी थी। वह वेटिंग रूम में बैठे लोगों से कह रहा था, "बाबूजी...आप सब दस मिनट के लिए बाहर निकल जाइए। कमरे की सफाई होनी है।"

वेटिंग रूम में बैठे लोग बाहर जाने के मूड में नहीं थे। लेकिन मिलिंद को उठते देखकर बेमन से वे भी उठने लगे। सफाई कर्मी बिना किसी की प्रतिक्रिया देखे अपने काम में व्यस्त हो गया था। मिलिंद हॉल के बाहर आ गए। बंद कमरे से बाहर आते ही ठंडी हवा ने उनका स्वागत किया। वेटिंग रूम दस मिनट भी तो नहीं बैठ पाए थे। तभी मोबाइल की घंटी बजी।

अमिता का फ़ोन था। लगता है वे ट्रेन में बैठ गए हैं। उनका अनुमान सही था, "डैडी हम ट्रेन में बैठ गए हैं। अभी आप कहाँ है ?"

मिलिंद हँस दिए, "अभी बस स्टैण्ड पर ही हूँ। दो घंटे बाद बस मिलेगी। तुम लोग परेशान मत हो। जैसा होगा, अपडेट देता रहूँगा।" मिलिंद को लगा एयर बैग कंधे पर लादे हुए इस तरह खड़ा रहना बेवकूफी होगी। अभी बहुत समय है। सामने ही कैफेटेरिया था। वहाँ एक गरमागरम कॉफी या चाय तो पीया ही जा सकता है। कैफेटेरिया लगभग भरा हुआ था। उन्होंने कैश काउंटर से कॉफी का टोकन लेकर स्टॉल पर आ गए और कॉफी का मग लेकर हॉल में चारों तरफ नज़र दौड़ाई। कोने की मेज़ पर एक दाढ़ी वाला नौजवान अकेला बैठा था। मिलिंद वहीं जाकर बैठ गए। कॉफी का हल्का सा घूँट लिया और मग को मेज़ पर रख दिया। एक बार फिर मोबाइल की घंटी बजने लगी। मिलिंद ने स्क्रीन पर देखा। रजनीश भाई थे। मिलिंद ने घंटी बजने दी। अभी वह किसी से बात करने की स्थिति में ही कहाँ थे। अभी शहर में किसी को नहीं मालूम कि मिलिंद ने इस शहर को हमेशा के लिए छोड़ दिया है। रजनीश भाई से बात करने का मतलब था, सवालों के ढेर पर खड़ा हो जाना, "अरे क्या बोल रहे हो ...? तुम्हें तो अगले हफ्ते जाना था ...? हम लोगों की एक शाम बैठकी का प्लान था...?" मिलिंद इस समय ऐसे सवालों से दो-चार नहीं होना चाहते हैं। वे जीवन में सिर्फ दो बार दिल्ली गए थे। एक बार अमिता के लिए लड़का देखने। दूसरी बार अमिता की शादी के बाद उसके रहने की व्यवस्था देखने ...। रमन की नई नौकरी थी। श्रद्धा चाहती थी कि मिलिंद एक बार देख आएँ कि बच्चों को कोई परेशानी तो नहीं है। तब वे कहीं और रहते थे और अब वह कोई दूसरी जगह बता रही थी। पहले वाला घर ग्राउंड फ्लोर पर था। लोकेशन तो अच्छा था, पर जब रमन ने जॉब बदला तो उस घर से ऑफ़िस काफी दूर हो गया था। मेट्रो से आने जाने में ही काफी समय निकल जाता था। इसलिए उन्हें मकान बदलना पड़ा, "जब किराए पर ही रहना है तो ऑफ़िस के पास ही मकान लिया जाए।"

मिलिंद इस मकान में नहीं गए थे। श्रद्धा ने कहा भी था, "कैसे पिता हो आप। बस एक बार शादी के बाद बेटी का घर देखने की औपचारिकता करके आ गए। बेटी ने दूसरा घर लिया है, आपके मन में ज़रा भी इच्छा नहीं हो रही है कि देखकर आऊँ कि बेटी कैसे रह रही है...?" मिलिंद ने श्रद्धा को घूर कर देखा था, "साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो कि तुम्हें बेटी के पास जाने की इच्छा हो रही है। मुझ पर क्यों आरोप लगा रही हो ..? अब कोई रोज़-रोज़ घर बदलता रहेगा तो मुझसे जाना नहीं हो पाएगा।"

श्रद्धा साड़ी का पल्लू मुँह के ऊपर रखकर मिलिंद की बात पर काफी देर तक हँसती रही थी। यह कैसी औरत है..? कैंसर से लड़ रही है, फिर भी खिलखिलाकर हँसती है। मिलिंद को अब चिंता होने लगी है। कीमोथेरपी का असर दिखने लगा था। उसके बाल झड़ने लगे थे। आँखों पर भी प्रभाव पड़ने लगा था। मिलिंद उसकी बिगड़ती हालत पर हमेशा चिंतित रहते। वह मिलिंद को चिंतित देखकर झिड़क देती थी, "आप भी न बेकार ही मुँह बनाए रहते हैं। मेरे न रहने पर कोई दूसरी छमकछल्लो खोज लीजिएगा एकदम छप्पन छूरी वाली स्टाइल की...। फिर मज़े ही मज़े हैं।" मिलिंद को लगता कि इस औरत के पास थोड़ी देर और बैठेंगे तो आँखें विद्रोह कर देंगी। लेकिन जब श्रद्धा ने उनका साथ हमेशा के लिए छोड़ा, बात-बात पर गीली हो जाने वाली आँखें, न जाने क्यों सूखी रह गई थीं।

शायद उसे मालूम हो गया था कि बत्तीस साल का साथ अब छूटने वाला है। उसे बोलने

में तकलीफ हो रही थी। उसने अपने कमज़ोर हाथों से उसकी कलाई पकड़ रखी थी, "मुझे मालूम है, आप अपनी मर्ज़ी का ही करोगे। फिर भी मेरी आपसे विनती है कि अकेले मत रहिएगा। अमिता के पास दिल्ली चले जाइएगा। दामाद आपको अच्छा मिला है। आपको कोई परेशानी नहीं होगी। नहीं जाना चाहते हैं तो फिर कोई नया साथी खोज लीजिएगा। अकेले ज़िंदगी पहाड़ लगने लगती है।" ऐसे नाज़ुक समय में मिलिंद भला क्या बोलते। बस एकटक श्रद्धा को देखते रहे थे।

तब तीन साल नौकरी थी। उन्होंने एक चाबी काम वाली बाई को दे दी थी। वह घर खोलकर साफ-सफाई करती फिर शाम को आकर रात के लिए खाना बना जाती थी। नाश्ता वह ख़ुद तैयार करते थे और दोपहर का भोजन ऑफ़िस के कैंटीन में...। दिन का समय काम की व्यस्तता में कट जाता था। पर रात..? उफ!... कभी-कभी तो इतनी लंबी हो जाती थी कि मानों सूरज अपना रास्ता ही भटक गया है। मिलिंद के दिमाग में कई बार आया कि क्या उन्हें दूसरे साथी की आवश्यकता है। फिर बहुत तेज़ी से अपने इस विचार को दिमाग से बाहर धकेल देते।

रजनीश भाई ने तो यही कहा था, "बेवकूफी मत करो। अभी तुम्हारे पास समय है। एक वन बीएचके खरीद लो। अकेले आदमी के लिए बहुत है। एक नौकर रख लो जो साफ-सफाई भी करेगा और तुम्हारे लिए दो रोटी भी बना देगा ...। या फिर टिफिन लगवा लो। पैसा है तो कहीं भी रहना मुश्किल नहीं है। फिर भी यह तुम्हारा अपना शहर है। इसके चप्पे-चप्पे से तुम वाकिफ़ हो। फिर हम सब तो हैं ही...।" रजनीश भाई उनसे उम्र में बड़े हैं। उनके सोचने का अपना नज़रिया है। एक उम्र के बाद सहारे की ज़रूरत होती है। सिर्फ रोटी और छत ही नहीं चाहिए। एक ऐसा साथ भी चाहिए, जो आपकी संवेदनाओं को महसूस कर सके। आपके अस्वस्थ होने पर देखभाल कर सके। अभी मिलिंद को किसी सहारे की ज़रूरत नहीं है। पर कल एक सहारा तो चाहिए ही होगा।

'कल की कल देखी जाएगी' जैसी सोच के सहारे हक़ीक़त को नकारा नहीं जा सकता है। कैफेटेरिया में उन्होंने बीस मिनट का समय बिता दिया। जब बाहर निकले तो पूरी तरह अँधेरा हो चुका था। ठंड की सिहरन भी महसूस हो रही थी। वेटिंग रूम में आकर एयर बैग खोलकर स्वेटर निकालकर पहनने लगे। दिन में ख़ूब चटक धूप निकलती है और सूरज डूबते ही बड़ी तेज़ी से तापमान गिरने लगता है। ऐसे में थोड़ी सी लापरवाही शरीर को नुकसान पहुँचा सकती है। इस बैग के अलावा एक अटैची भी थी। उसे अमिता अपने साथ ले गई थी।

श्रद्धा के न रहने पर उन्होंने धीरे-धीरे चीज़ों को हटाना शुरू कर दिया था। उनकी ख़ुद की आवश्यकताएँ बहुत ज़्यादा नहीं रह गई थी। बीच-बीच में अमिता दो-चार दिन के लिए आती और उपयोग में न आने वाली चीज़ों को एक कमरे अलग रख देती थी। मिलिंद की पहली कोशिश होती थी कि किसी के काम आ जाए। जब चीज़ें काफी दिन पड़ी रह जाती थी तो कबाड़ वाले को बेच देते थे। श्रद्धा ने तिनका-तिनका जोड़कर अपना घोंसला सजाया था। उजड़ने में समय तो लगना ही था। सरकारी आवास छोड़ने के दस दिन पहले अमिता आ गई थी। उसने बिना किसी लाग-लपेट के सामान को हटाना शुरू कर दिया, "डैडी मुझे मालूम है, इन वस्तुओं से आपको लगाव है। लेकिन इतना सारा सामान यहाँ से लादकर ले जाने की ज़रूरत नहीं है। इसे बेचना ही ठीक रहेगा।" मिलिंद क्या बोलते भला... सही तो कह रही थी अमिता। बंदरिया के मरे बच्चे की तरह इसे कब तक ढोते रहेंगे। जो उनके लिए सबसे मूल्यवान् वस्तु थी, उसे तो वह खो ही चुके थे।

सेवानिवृत्ति के बाद भी वे इस सरकारी आवास में कुछ दिन रुक गए थे। तमाम सरकारी औपचारिकताएँ होती हैं। और इस शहर का मोह ...। कई बार रजनीश भाई की बात दिमाग़ पर चढ़ जाती, "मिलिंद तुम पौधे नहीं हो कि उखाड़कर कहीं भी लगाया जा सके। एक भरे-पूरे पेड़ को दूसरी जगह लगाना बहुत मुश्किल होता है।" रजनीश भाई ऐसी ही बातें बोलते हैं। आदमी खामखाह डर जाए। लोग बुढ़ापे में अपनी संतानों के पास ही तो जाकर रहते हैं। आख़िर वे भी तो अपने बेटे-बहू के पास रहते हैं।

यही दुनिया का दस्तूर भी है। अतंत: यही निर्णय हुआ था कि अब सरकारी आवास छोड़ देना है। आवास में ताला लगवाने के बाद वे तीन-चार दिन और रुकेंगे। अपने मित्रों के साथ कुछ शाम बिताएँगे। फिर इस शहर को अलविदा कह देंगे। यही बात उन्होंने अपने मित्रों से भी कहा ...।

"मिलिंद एक शाम सिर्फ तुम मेरे साथ बैठोगे। सिर्फ हम दोनों ...। अपनी तमाम पुरानी यादों को ताज़ा करेंगे। पता नहीं इसके बाद वक्त कब हमें मिलेगा या सिर्फ यादें ही रह जाएँगी।" रजनीश भाई भावुक हो गए थे। अमिता को बताया तो हँसने लगी, "रजनीश अंकल का भी जवाब नहीं है। पता नहीं किस ज़माने में जीने लगते हैं। डैडी... सारी दुनिया तो हमारे पॉकेट में है। मोबाइल निकालिए और वर्चुएली कनेक्ट हो जाइए।"

मिलिंद ने असहमति में सिर हिलाते हुए कहा, "यही तो पीढ़ियों का अंतराल कहा जाता है। वर्चुएलटी और रीयलटी में अंतर होता है।" अमिता उनकी मानसिक स्थिति को समझ रही थी। उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया था। पिता इस समय दिमाग़ी रूप से कई मोर्चों पर लड़ रहे थे। अकेलेपन की पीड़ा तो थी ही, सेवानिवृत्ति के बाद पैंतीस साल की बनी बनाई दिनचर्या भंग हो चुकी थी और अब शहर छोड़ने का दंश भी झेल रहे थे। इसीलिए अमिता और रमन बार-बार उनसे अनुरोध कर रहें थे उनके साथ ही चलें। उन्हें किसी कीमत पर अकेला नहीं छोड़ना चाहती थी। मिलिंद इस बात को समझ रहे थे। लेकिन वह अपनी बात पर अड़े हुए थे,

"तुम लोग चलो और मेरा टिकट चार दिन बाद का करा देना....। मैं पहुँच जाऊँगा।"

"डैडी यह आपका मोह है। इस शहर के प्रति ... और यहाँ के लोगों के प्रति...। आपके यहाँ रहने या जाने से किसी को कोई फ़र्क नहीं पड़ना है। इस सरकारी आवास में कोई दूसरा आ जाएगा। इस शहर के लिए आप इतिहास बन जाएँगे। एक ऐसा इतिहास, जिसको याद

करने की किसी ज़रूरत नहीं है। रजनीश अंकल ने ख़ुद भी सात-आठ शहर तो बदले ही हैं। हाँ ! आपको इस शहर में रहते हुए ज़रूर थोड़ा लंबा समय हो गया है। लेकिन नौकरी के शुरुआती दौर में आप ही बताते हैं कि आपने भी कई शहरों में नौकरियाँ की हैं। जीवन में बदलाव न हो तो सब कुछ नीरस होने लगता है। आप एक भ्रम में जी रहे हैं। प्लीज़ डैडी...! इस भ्रम से बाहर निकलिए।"

अमिता कोई ग़लत नहीं बोल रही है। मिलिंद एक नौकरी-पेशा व्यक्ति थे। उनकी समाजिकता, साथ में काम करने वाले लोगों तक ही सीमित थी। रजनीश भाई से भी नौकरी के दौरान ही मित्रता हुई थी। दोनों नाटक प्रेमी थे और कई नाटकों में साथ-साथ काम किया था। वैचारिक समानता के कारण घनिष्ठता बढ़ती गई। फिर माह की कुछ शामें वे दोनों साथ गुज़ारने लगे थे। आख़िरकार मिलिंद को बच्चों के साथ चलने की सहमति देनी पड़ी। अब दूसरी समस्या आ गई थी। अमिता और रमन का टिकट बुक हो चुका था। कोरोना का प्रोटोकॉल चल रहा था। ट्रेनों की संख्या सीमित थी और सभी फुल हो चुकी थीं। वेटिंग वालों को सफर की अनुमति नहीं थी। यहाँ तक कि बिना आरक्षण के प्लेटफार्म पर प्रवेश ही निषेध था। रमन तो चाहते थे कि टिकट कैंसिल करके तीनों बस से ही चलें। मिलिंद ने ही मना कर दिया, "यह ठीक नहीं होगा। आप तो जानते ही हैं अमिता को बस में उल्टियाँ आती हैं। उसकी तबियत ख़राब हो जाएगी। हम सब साथ ही निकलेंगे। आप हमें बस स्टेशन पर उतार दीजिएगा। दिल्ली के लिए बसों की कमी नहीं है। एक दो घंटे आगे पीछे दिल्ली पहुँच जाऊँगा..।"

मिलिंद की बात पर किसी ने आपत्ति नहीं किया। उनके लिए यही बहुत था कि वह साथ ही शहर छोड़ने के लिए तैयार हो गए थे। बस दो ही दिन तो बचे थे। मिलिंद ने सरकारी आवास छोड़ने की तैयारी शुरू कर दी। पंखें और बिजली के मीटर को आवास विभाग के इलेक्ट्रिकल यूनिट में जमा कराना पड़ता है। फिर वे बिजली का बिल बनाते हैं और वह बिल जमा करने पर नो ड्यूज़ मिलता है। यही काम आवास विभाग में भी करना होता है। वहाँ भी किराए का बिल बनता है। जिसे जमा कराकर नो ड्यूज़ लिया जाता है। दोनों नो ड्यूज़ आवास विभाग में जमा करने पर ही घर पर सरकारी ताला लगाया जाता है। सारी प्रक्रिया में दो से तीन घंटे का समय लगता है। मिलिंद को तो सब जानते हैं। उनका काम हाथों हाथ हो गया था। उन्होंने घर पर ताला लगाने वाले स्टाफ से कहा, "भाई कल चार बजे तक आवास पर ताला लगा देना। पाँच बजे हमारी ट्रेन है। हम इस शहर को छोड़ जा रहे हैं।" मिलिंद का गला भर आया था।

हालाँकि ट्रेन छः बजे के बाद जानी थी। मिलिंद ने कभी कल्पना ही नहीं किया था कि वह इस तरह अचानक इस शहर को छोड़कर चले जाएँगे। श्रद्धा हमेशा कहती थी, "जब इस आवास को छोड़कर जाएँगे तो एक शानदार पार्टी देंगे। क्योंकि वो हमारी आख़िरी पार्टी होगी। इसके बाद कौन सा हमें बेटा-बेटी की शादी करनी है, जो यहाँ दावत देते फिरेंगे।" तब शहर छोड़ने की बात तो उनके दिमाग़ में थी ही नहीं। सिर्फ यह आवास ही छोड़ना था। काम वाली बाई अपने समय से आई थी। और जो भी काम-धाम था, उसने फटाफट निपटा दिया। अमिता ने उसकी इस महीने के पैसों का भुगतान कर दिया था। उसे गैस सिलेंडर और घर का बचा-खुचा सामान ले जाना था। गैस सिलेंडर के बदले उसने दो दिन पहले अपना खाली गैस सिलेंडर दे दिया था। जिसे मिलिंद ने एजेंसी में जमाकर के ट्रांसफर वाउचर ले लिया था। बाई दो घंटे बाद वापिस आने की बात कहकर चली गई।

खाली कमरे में चादर बिछाकर कर दोपहर के भोजन के बाद अमिता और रमन लेट गए थे। मिलिंद बाहर नीम के पेड़ के पास खड़े होकर हसरत भरी नज़रों से कतार में खड़े घरों को देख रहे थे। अमिता सही कह रही थी कि यह उनका अपने स्वयं के द्वारा बुना गया मोह का जाल है। उनके यहाँ से जाने या न जाने से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ना है। उन्होंने सभी को बताया था कि वह पच्चीस फरवरी को घर छोड़ देंगे। पर झाँकना तो दूर, किसी ने फ़ोन करके यह भी नहीं पूछा कि उसके बाद वह कहाँ रुकेंगे। उन्होंने एक गहरी साँस ली और धीरे-धीरे टहलने लगे। उन्होंने सही निर्णय लिया था। जितनी जल्दी उन्हें इस शहर को छोड़ देना चाहिए।

साढ़े चार बजे अपने समय से ही आवास बंद करने वाला आ गया था। उसने दो कागज़ों पर साइन कराया एक मिलिंद को दे दिया और दूसरा अपने बैग में रख लिया। बैग से ताला-चाबी निकाला और दरवाज़ों को बंद करने लगा। अमिता और रमन सामान निकाल चुके थे। आवास से मिलिंद सरकारी नियम के हिसाब से बे-दखल हो चुके थे। रमन ऑटो लेने चले गए और अमिता उनके हाथ में पकड़े कागज़ को एयर बैग में रखने लगी।

ऑटो उन्हें बस स्टेशन पर छोड़कर, रेलवे स्टेशन चला गया था। मिलंद को अचानक जैसे याद आया और उन्होंने हड़बड़ा कर घड़ी देखी। डेढ़ घंटे हो चुके थे। दिल्ली वाली बस लग चुकी होगी। वे वेटिंग रूम से बाहर आ गए।

उनका अनुमान सही था। बस लग चुकी थी। वे एयर बैग ऊपर रैक में रखकर बैठ गए। अमिता को फ़ोन लगाकर बताया कि वे बस में बैठ गए हैं। अब छह-सात घंटे उनका फ़ोन स्वीच ऑफ रहेगा। सुबह दिल्ली पहुँचने के बाद फ़ोन करेंगे। फिर फेसबुक पर एक छोटा सा मैसेज डाला-विदा मित्रों! इस शहर को छोड़कर जा रहा हूँ। ज़िंदगी का अगला पड़ाव दिल्ली में...।

मिलिंद ने अपनी एक सेल्फी ली और मैसेज के साथ पोस्ट कर दिया। फ़ोन को स्विच ऑफ करने के बाद पतलून की जेब में रख लिया। क्योंकि उन्हें मालूम था कि जैसे-जैसे उनके मित्रों और शुभचिंतकों की नज़रों से यह मैसेज गुज़रेगा, उनका स्नेहभाव जागने लगेगा और वे सवालों का बौछार करने लगेंगे। यही मिलिंद नहीं चाहते थे। अभी वह किसी से बात करने की स्थिति में नहीं थे। एक बार फिर वेटिंग रूम की तरह अपने सिर को सीट से टेक लगाकर आँखें बंद कर लीं। उन्हें लगा कि दिमाग़ में लंबे समय से जमा हुआ तनाव धीरे-धीरे पिघलने लगा है।

०००

कथा-कहानी

मैं क्यों नहीं....

अदिति सिंह भदौरिया

जाने क्या हो रहा है। आज तो दाढ़ी बनाने में ही सारा टाइम वेस्ट हो गया है। सोचते- सोचते राजीव ने अपनी पत्नी सीमा को आवाज़ देते हुए कहा, 'सीमा, क्या मेरा नाश्ता तैयार हो गया है?'

रसोई में काम कर रही सीमा ने बहुत प्यार से जवाब दिया, 'हाँ तैयार है और खाने का टिफिन भी तैयार हो गया है। अब बस आपका इंतज़ार है।' इतना कहते हुए वह हँसने लगी।

राजीव के लिए सीमा का ऐसा जवाब सामान्य नहीं है, क्योंकि अक्सर राजीव के ऐसे प्रश्न पूछने पर सीमा चिढ़ जाया करती है और तभी न चाहते हुए भी दोनों में झगड़ा शुरू हो जाता है। लेकिन आज सीमा की हँसी ने राजीव को हैरानी में डाल दिया। वह जल्दी से नहा- धोकर बाहर आया तो सीमा को देखता ही रह गया। सुबह–सुबह सीमा को इतना निश्चिन्त देखकर राजीव को विश्वास ही नहीं हो रहा। राजीव उससे जब भी सुबह जल्दी काम निपटाने को कहता तो घर की स्थिति युद्ध जैसे बन जाती और राजीव को बिना नाश्ता किए ही ऑफ़िस जाना पड़ता। पर आज तो सीमा को इतना खुश देखकर राजीव हैरान तो हुआ ही, बल्कि यह भी सोचने लगा कि कहीं आज सीमा का जन्मदिन तो नहीं है, जो वह भूल गया है ? यदि ऐसा है तो फिर स्थिति और भी भयानक होने वाली है। राजीव जब तक कुछ और सोचता उसके सामने उसका पसंदीदा ब्रेकफास्ट आ चुका है।

राजीव समझ नहीं पा रहा कि क्या कहे ! एक बार उसने सीमा को देखा तो एक बार अपने सामने रखे अपने पसंदीदा वेज चीज़ टोस्ट को देखा। समझ उसे अभी भी नहीं आ रहा कि हो क्या रहा है?

इतने में उसकी नौ वर्ष की बेटी और पाँच वर्ष का बेटा भागते हुए आ गए, 'पापा आप अभी तक नाश्ता ही कर रहे हो ? हमें स्कूल के लिए देर हो रही है। प्लीज़ जल्दी कीजिए न पापा।' राजीव ने जल्दी-जल्दी अपना ब्रेकफास्ट करना शुरू किया तो सीमा ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'अरे, यह आप क्या कर रहे हैं? आप आराम से खाएँ। बच्चों को मैं बस स्टाप तक छोड़कर आती हूँ। हाँ, किचिन में आपका टिफिन रखा है। जाते हुए ले जाना मत भूलिएगा। मैंने अपनी चाबी ले ली है। आप बाहर से लॉक कर जाना।'

इतना कहते हुए सीमा बाहर चली गई। राजीव उसे जाते हुए देखता रहा। उसको विश्वास ही नहीं हो रहा कि क्या यह वही सीमा है जिसे यदि एक भी बार बच्चों को बस-स्टाप पर छोड़ने जाना पड़ता तो आफत ही कर देती।

आज के दिन की शुरूआत राजीव के लिए किसी अचम्भे से कम नहीं। नाश्ता ख़त्म करके

अदिति सिंह भदौरिया
साहिल, सिद्धि विनायक टॉवर, फ़्लैट नंबर 404, ब्लाक -ए, बंगाली चौराहा, मयंक वाटर पार्क के पास, विछोली मरदाना, इंदौर, मप्र -452016
मोबाइल- 8959361111
ईमेल- aditisingh9977@gmail.com

उसने टिफिन लिया और घर को लाक करके अपनी बिल्डिंग की पार्किंग में अपनी गाड़ी में बैठने ही वाला था कि उसने सीमा को किसी अनजान आदमी से हँसकर बात करते देखा। सोचा कोई होगा उनकी मल्टी का जिसे वह नहीं जानता।

अब वह अपने सफ़र की ओर चल दिया। ऑफ़िस में पहुँच कर वहाँ के रोज़ के कामों में व्यस्त हो गया। सुबह को लगभग वह भूल ही चुका था। तभी दोपहर को उसके साथियों ने उसे खाना खाने के लिए साथ चलने को कहा तब कहीं जाकर उसे होश आया। अति व्यस्त होने की उसकी बुरी आदत को वह बदलना तो चाहता है पर बदल नहीं पा रहा। ख़ैर अपने टिफिन को पकड़ कर बेमने मन से अपने साथियों के साथ कैंटीन तक आ गया। उसे पता है कि आज भी उसके टिफिन में नार्मल सी सब्ज़ी रोटी ही होगी। उसने अपना टिफिन खोला तो आज के दिन का एक और झटका लगा। मटर-पनीर की सब्ज़ी के साथ, खीरे का रायता और रोटी साथ में कुछ नमकीन। आज तो लगा जैसे किसी और का टिफिन खोल लिया हो।

उसके साथियों ने भी हैरान होकर पूछा, 'आज कुछ ख़ास बात है क्या?'

'नहीं तो' राजीव ने अपनी हैरानी को छिपाते हुए कहा।

अब तो जैसे उसे सच में लगने लगा कि हो न हो आज सीमा का जन्मदिन है। उसने सोचा कि आज वह भूलेगा नहीं। गुलाब का फूल तो लेकर ही जाएगा। इतना सोचते हुए राजीव के मन में आया कि घर तो शाम को जाना है तो क्यों न अभी सीमा को फ़ोन पर विश कर दूँ, इससे वह खुश भी हो जाएगी।

राजीव ने सीमा के मोबाइल पर फ़ोन लगाया। लंबी रिंग जाने के बाद जब सीमा ने फ़ोन उठाया तो पीछे से काफी शोर सुनाई दिया। सीमा ने फ़ोन उठाते ही कहा, 'राजीव मैं घर जाकर बात करती हूँ, अभी बाहर आई हुई हूँ।'

अब तो राजीव को कन्फ़र्म हो गया कि सीमा का जन्मदिन है। ऑफ़िस से छुट्‌टी होते ही राजीव ने केक और गुलाब के फूलों का बुके लिया। घर पहुँचते ही राजीव की बेटी ने दरवाज़ा खोला। वह भाग कर अंदर चली गई। एक और सरप्राइज़ ने उसे चौंका दिया। ब्राउन और क्रीम कलर के सोफे के कवर, क्रीम और स्काई ब्लू में बदल चुके हैं। पर्दे जो कि सालों से ब्राउन कलर के थे। आज आसमानी रंग के हो गए हैं। ड्राइंग रूम का फ्लोर आसमानी और क्रीम रंग के सुंदर कारपेट से सजा हुआ है। हमेशा अस्त–व्यस्त सा रहने वाला ड्राइंग रूम बेहद करीने से सुंदर वास से सजा हुआ मिला। पंखे साफ़ और हल्की-हल्की सी ख़ुशबू पूरे ड्राइंग रूम को महका रही है। राजीव को तो विश्वास ही नहीं हो रहा। घर के अंदर तो और भी ख़ूबसूरत नज़ारा है। अब डाइनिंग हाल के टेबल जिस पर हमेशा कुछ न कुछ पड़ा ही रहता था। आज करीने से सजी हुई है। किचन से ख़ुशबू आ रही है। शायद कुछ मीठा बना है।

राजीव से रहा नहीं गया। वह पहले बच्चों के कमरे में गया। सीमा बच्चों को पढ़ा रही है और बेहद सुंदर साड़ी पहने हुए है। राजीव ने सीमा को देखा तो देखता ही रह गया। सीमा ने बहुत प्यार से राजीव को देखा, 'अरे आप आ गए। मैं चाय बनाकर लाती हूँ।'

राजीव ने जाते-जाते सीमा का हाथ पकड़कर कहा, 'हैप्पी बर्थडे।'

उसने ज़ोर का ठहाका लगाया, 'किसका जन्मदिन ?' सीमा को हँसते देख राजीव ने झेंपकर पूछा, 'आज तुम्हारा जन्मदिन नहीं है?'

उसने राजीव को देखते हुए कहा, 'नहीं तो आपसे किसने कहा।' तभी सीमा की नज़र राजीव के हाथ पर पड़ी। आप केक और बुके लाए हैं मेरे लिए। सीमा की खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा।

सीमा ने बच्चों की ओर देखते हुए कहा, 'देखो पापा केक लाए है, चलो काटते हैं।' वह राजीव का हाथ अपने हाथ में लेते हुए डाइनिंग टेबल पर आ गई। बच्चे भी खुश हुए, बस राजीव ही कुछ समझ नहीं पा रहा। ख़ैर बच्चों की खुशी में शामिल हो गया। केक काटते हुए राजीव के बेटे ने कहा, 'मम्मी ने आज सूजी का हलवा बनाया है।'

सीमा ने खुश होते हुए कहा, 'हाँ भई, वह भी मिलेगा पर खाने के बाद।'

'आप हाथ-मुँह धो लीजिए, मैं खाना लगाती हूँ।'

राजीव कमरे में चला गया। उसके बेडरूम का नज़ारा भी अलग ही है। उसकी पसंद की हल्के हरे रंग की चादर और रंगीन पर्दे लगे हुए हैं। एक दम साफ़- सुथरा कमरा। उसने अपनी अलमारी देखी तो हर चीज़ व्यवस्थित और साफ़ पड़ी है। वह बाथरूम में गया तो वहाँ भी एकदम नया-नया और साफ़-सुथरा सा लग रहा है। राजीव को कुछ समझ नहीं आ रहा, लेकिन अब वह कुछ सोचना नहीं चाहता; क्योंकि उसको पता है कि रात को सीमा न चाहते हुए भी सब कुछ बता ही देगी। बस यही बात उसे सीमा की पसंद नहीं कि उसके बेडरूम में उसके अलावा बाकी सब होते हैं।

यह सोचकर वह बाहर आ गया। डाइनिंग टेबल पर खाना लग चुका है। मटर पुलाव, दाल तड़का और आलू-गोभी की सब्ज़ी के साथ गर्मागर्म रोटियाँ। सबने बहुत चाव से खाना खाया। आज खाने की टेबल पर कुछ चिल्ला-चोट नहीं हो रही। आज का बदला माहौल देखकर राजीव को भी खुशी हुई।

खाने के बाद बच्चे अपने कमरे में चले गए। जो सीमा रात के बर्तन सुबह उठाती थी आज वह किचिन साफ़ कर रही है। राजीव को सफाई पसंद थी, पर सीमा में आलस था। घर का माहौल ख़राब न हो इसलिए राजीव कुछ कहता नहीं था। राजीव कमरे में आ कर लेट गया।

कुछ समय बाद सीमा आई और अलमारी से कपड़े निकाल कर वाशरूम में चली गई। जब वापिस आई तो हल्की गुलाबी रंग की झीनी नाइटी पहने हुए है। राजीव के करीब आकर बोली-'सो गए क्या ?'

राजीव ने कहा, 'नहीं तो, मुझे लगा शायद तुम आज थक गई हो।'

सीमा ने राजीव की छाती पर अपना सिर रखते हुए बड़े प्यार से देखा। शब्दों की ज़रूरत नहीं रही।

अगले दिन से राजीव के घर का माहौल

हमेशा के लिए बदल गया। चीखना-चिल्लाना कभी होता ही नहीं। समय पर हर काम होने लगा। बच्चों की पढ़ाई से लेकर घर के सारे काम व्यवस्थित तरीके से होने लगे। अब बेडरूम में किसी और की कोई जगह नहीं रही। तेरह साल की शादी में सीमा को घर, बच्चों और राजीव का इतना ख़याल रखते पहले नहीं देखा था। एक बात जो राजीव को रह-रहकर खटक रही है, जब भी दोपहर में सीमा को फ़ोन करो या तो वह फ़ोन उठाती नहीं या फिर बाहर हूँ कहकर काट देती है, और राजीव उससे बात करे भी तो कैसे?

कहीं कुछ भी ग़लत नहीं कर रही सीमा। पिछले बारह साल से जितना ध्यान सीमा ने उस पर या बच्चों पर नहीं दिया, उतना पिछले तीन महीने से दे रही है। सवाल पूछे भी तो कैसे?

लेकिन सीमा का रोज़ बाहर जाना और बिना किसी को बताए जाना राजीव के लिए नार्मल नहीं है। वह चाहता है कि पता तो करें कि सीमा कहाँ जा रही है। पर किससे पूछे?

चार महीने हो चुके हैं, घर का भी वही रूटीन है और सीमा का भी। अब तो राजीव ने सोच लिया कि वह ख़ुद ही पता करेगा कि सीमा आख़िर जाती कहाँ है? राजीव बिना बताए दोपहर को घर आने लगा, लेकिन बिना बताए किसी भी समय आने पर घर में ताला ही मिलता। बच्चों का स्कूल से लौटने का क्या समय है, वह जानता है। अगले दिन वह उसी समय पर घर आया। सीमा बच्चों के लिए कुछ खाने को बना रही है। राजीव को इस समय घर पर देखकर सीमा को हैरानी हुई। सीमा को चाय बनाने को कहकर राजीव टी.वी. देखने लगा।

सीमा ने हैरान होकर पूछा, 'आप इस समय घर पर?' उसके सवाल पर अपना सवाल करते हुए राजीव ने कहा, 'क्यों मैं इस समय घर पर नहीं आ सकता हूँ क्या?'

'नहीं, नहीं मैंने ऐसा तो नहीं कहा?' सीमा ने अपनी बैचनी छुपाते हुए कहा।

बच्चे तय समय पर ट्यूशन चले गए। और राजीव सीमा को देख रहा है कि वह बैचनी में एक कमरे से दूसरे कमरे में बिना वजह टहल रही है। वह अपने मन के वहम को दूर करना चाहता है। वह घर से चला गया और जाते–जाते सीमा से कहने लगा, 'आज आने में देर हो जाएगी। खाने पर इंतज़ार मत करना।'

राजीव अपनी मल्टी के मेन गेट से बाहर आकर कुछ दूरी पर खड़ा हो गया। वह चाहता है कि जो वह सोच रहा है, उसके बिलकुल विपरीत हो। पर ऐसा नहीं हुआ उसके देखते ही सीमा बाहर आई और एक ऑटो को बुलाकर वहाँ से चली गई। वह इतनी जल्दी में है कि राजीव को देख ही नहीं पाई।

राजीव इस सब से टूट गया। उसे समझ ही नहीं आ रहा कि वह क्या करें? आँखों से आँसू बहने लगे। अपने तेरह वर्षों का सफ़र ख़त्म होते दिखने लगा। पर कहता भी तो किससे और क्या? मानों आज वह ख़ुद पर ही सोचने के लिए मजबूर हो गया कि आख़िर उससे ग़लती कहाँ हुई है?

शाम को नियत समय पर घर आ गया तो सीमा को फिर से छकाते हुए देख उसे ग़ुस्सा आने लगा। अपने पर काबू पाते हुए उसने सीमा को मुस्करा कर देखा। उसे देखकर सीमा भी ख़ुश हो गई, 'अरे आप, चलो अच्छा है। खाने के समय पर आए हैं तो सब साथ में ही खाएँगे।'

सीमा को नज़रंदाज़ करके बच्चों को प्यार करते हुए उसने जवाब दिया 'मैंने बाहर दोस्तों के साथ खाना खा लिया है। अब आराम करने जा रहा हूँ।'

कमरे में आकर भी उसकी बैचैनी ख़त्म नहीं हुई। उसने सोच ही लिया, सीमा से पूछेगा तो ज़रूर कि वह रोज़ दोपहर को जाती कहाँ है?

रात को जब सीमा सब काम निपटाकर राजीव के पास आई तो राजीव ने ही बात शुरू की, 'एक बात बताओ, तुम रोज़ दोपहर को कहाँ जाती हो?'

सीमा ने राजीव को देखते हुए कहा, 'आप जो जानना चाहते हैं वह बात सीधे-सीधे क्यों नहीं पूछ लेते?'

राजीव ने सीमा को देखते हुए कहा, 'आज तक हमारे बीच इसी बात पर बहस होती थी कि तुम व्यवस्थित नहीं हो। किसी से अच्छे से बात नहीं करती हो, तुम्हारा ध्यान मेरे और बच्चों पर नहीं रहता है। हैरान हूँ, मोबाइल पर हमेशा बिज़ी रहने वाली, अचानक घर पर ध्यान देने लगी और सिर्फ ध्यान ही नहीं बल्कि प्रेम भी देने लगी। पूरा घर का वातावरण ही बदल गया। जो बच्चे पूरे-पूरे दिन टी.वी पर लगे रहते थे। वे आज अपना मन पढ़ाई में लगा रहे हैं। और जब मैं तुम्हें कहता था कि तैयार होकर रहा करो तब तुम मुझे कहती थीं कि तुझे तैयार होना पसंद नहीं पर अब तुम बहुत सुंदर दिखने लगी हो। आस-पड़ोस के साथ तुम्हारा मधुर व्यवहार देखकर मैं खुश होने लगा हूँ। इतने बदलाव अचानक नहीं आ सकते। आख़िर बात क्या है ?' एक ही साँस में राजीव ने अपने मन की बात कह डाली।

सीमा की आँखों में पानी था। उसने अपने आपको लगभग सँभालते हुए कहा, 'आपने सब कुछ पूछा पर वह बात नहीं पूछी जो आपको सबसे ज़्यादा सता रही कि मैं दोपहर को कहाँ जाती हूँ ?'

'मैं आपसे कुछ भी छिपाना नहीं चाहती, पर समझ नहीं पा रही, आपको कैसे कहूँ! अगर आपको बताया तो आपको कैसा लगेगा!'

राजीव अब तक जो संयम से काम ले रहा था। अचानक बेकाबू हो गया, 'तो क्या जो मैं सोच रहा हूँ वह सच है ? क्या तुम किसी और से प्यार करने लगी हो ?'

सीमा ने राजीव को देखते हुए कहा, ' हाँ, मैं अब सच में किसी और से प्यार करने लगी हूँ। और उसी प्यार ने मेरे अंदर यह बदलाव ला दिया है। पर यह सब यकायक नहीं हुआ। बहुत समय लगा मुझे उस प्यार को समझने के लिए। जब समझी तो मेरा जीवन ही बदल गया।'

राजीव समझ ही नहीं पा रहा था कि क्या कहें। उसने अपने आपको सँभालते हुए कहा, 'क्या कमी रह गई थी मेरे प्यार में, तुम जैसी हो मैंने वैसे ही अपनाया। यदि मुझे कुछ तुम्हारा नहीं भी पसंद आया तो मैंने तुम्हें समय दिया बदलने का और जब तुम नहीं बदली तो मैंने समझौता कर लिया जिससे कि हमारा परिवार

जुड़ा रहे। मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता बस अपने घर को टूटते हुए नहीं देख पाऊँगा।'

सीमा ने राजीव के हाथ पर हाथ रखते हुए कहा, 'यह घर कभी भी नहीं टूटेगा।'

'कैसे नहीं टूटेगा।' सीमा के हाथ को झटकते हुए राजीव ने कहा?

फिर धीरे से बोला, 'क्या मैं उससे मिल सकता हूँ जिसने तुम्हारा जीवन में वह बदलाव ला दिया जो मैं नहीं ला पाया। घबराओ नहीं यदि तुम चाहो तभी, क्योंकि यह अधूरा प्यार मुझे मंज़ूर नहीं। बिना किसी तमाशे के हम अलग हो जाते है। बच्चों की चिंता मत करना। वह हमेशा मेरी ज़िम्मेदारी रहेंगे।'

सीमा सब कुछ सुन रही थी, 'हाँ, मैं भी चाहती हूँ कि तुम उससे मिलो।'

राजीव ने एक फीकी सी हँसी होंठों पर लाते हुए कहा, 'ठीक है.... कल मिल लेते हैं।'

सीमा ने बीच में ही टोकते हुए कहा, ' क्यों अभी क्यों नहीं?'

राजीव सीमा की तरफ देखकर कुछ कहता उससे पहले सीमा ने उसका हाथ पकड़ा और कमरे में ही एक तरफ खड़ा करके, उसका हाथ अपने हाथों में दबाते हुए कहा- 'मिलो।'

राजीव ने झुँझलाते हुए कहा, 'यह क्या मज़ाक है, यह तो तुम ही हो।'

सीमा ने बड़े प्यार से कहा, 'मैं क्यों नहीं हो सकती। तुम किसी पुरुष को ही क्यों सोच रहे थे। मुझमें कुछ कमी है जो मैं बाहर किसी से प्यार करूँ।'

राजीव ने हैरान होते हुए कहा, 'मैं कुछ समझा नहीं।'

सीमा ने पलंग पर बैठते हुए कहा, 'जब भी किसी विवाहित स्त्री या पुरुष में कुछ बदलाव आते है तो उसे स्वीकार करना इतना आसान नहीं होता। और सबसे आसान होता है उसका किसी अन्य के साथ नाम जोड़ देना। प्यार एक ऐसा एहसास है, जो किसी के प्रति भी हो सकता है, यहाँ तक कि ख़ुद के प्रति भी। प्यार किसी और से तो हो सकता है पर स्वयं से नहीं, यही प्रचलित धारणा है। जो सोच से परे है, वह स्वीकार्य नहीं। बस यही से अनचाही दूरियाँ आ जाती है। प्यार को हम सीमित दायरे में ही सोचने और समझने के आदी हो चुके हैं।

राजीव आप बहुत अच्छे इंसान है, आपने मुझे वैसे ही अपनाया जैसी मैं हूँ, सच कहूँ तो मैं ऐसी नहीं थी। मैं आपसे कुछ और चाहती थी जो मैं आपको समझा नहीं पाई थी। फिर एक दूसरे के बीच आ रही झिझक ने दूरियों को और भी बढ़ा दिया। जिससे मेरे अंदर झुँझलाहट आने लगी। आप व्यस्त होने लगे और मैं नाराज़ रहने लगी, इस सबमें हम अपना ही परिवार तोड़ रहे थे।

फिर एक दिन मैंने ख़ुद ही सोचा, आपने तो स्वयं को काम में बिज़ी कर लिया, मैं क्या कर रही हूँ? इच्छाएँ अगर पूरी न हों तो ज़िंदगी रुक नहीं जाती। मैं क्या थी और कैसी हो गई हूँ? ख़ुद को तलाशने लगी। इस खोज ने मुझसे मेरी पहचान करवाई। मुझे अपनी रुचियों और ऐसे गुणों से मिलवाया, जो मेरे भीतर ही दम तोड़ रहे थे। मुझे एक ख़ूबसूरत, जीवन से भरपूर स्त्री मिली, जिसकी मैं अवहेलना कर रही थी। ख़ुद से पहचान कठिन होती है, पर मैं स्वयं से मिली। मुझे इस नई स्त्री से प्यार हो गया। यकीन करना मुश्किल है। पर यह सच है।

सबसे पहले मैंने आईने के सामने खड़े होकर ख़ुद को निहारा। आईने में दिख रहा चेहरा मुझे बहुत सुंदर लगा। मैंने अपने-आप को बनाया सँवारा। स्वयं से ही हो गए इश्क को स्वीकारा। मैं बाज़ार गई। खरीददारी की। जो रंग चुभते थे, वे रंग मुझे अच्छे लगने लगे। आप, यह घर, बच्चे और मैं मुझे प्यारे लगने लगे। मैं अंदर से खुशी महसूस करने लगी। जितना ख़ुद से प्यार करती जा रही हूँ उतना ही सब तरफ खुशियाँ मेरा स्वागत कर रही हैं।

वह दिन ज़रूर आपको याद होगा, जिस दिन सुबह से ही मैंने अपने आप में बदलाव लाना शुरू कर दिया था....।'

राजीव उसे हैरानी से देख रहा है।

सीमा उठी और राजीव को गले लगाते हुए बोली, 'यकीन करो राजीव, प्यार हमारे अंदर है। जिसे हम किसी और में ढूँढ़ते हैं। प्यार रूपी कस्तूरी की ख़ुशबू हमारे पास ही है। हमें कहीं जाने की ज़रूरत नहीं। हम क्यों किसी और को अपनी कस्तूरी की ख़ुशबू दें जब हम इसका पूरा आनन्द ले सकते हैं। मैं ख़ुद से ही नाराज़ थी कि तुम मुझ पर ध्यान क्यों नहीं देते। जब मैंने ख़ुद से ही नाराज़ होना छोड़ा। तब से तुम्हारा प्यार भी पा लिया। राजीव हम आने वाले कल के लिए जाने कितने आज गवाँ देते हैं। और यह कल तो हमारा कभी होता ही नहीं। जो आज हमारा है, इसे क्यों छोड़ें! रही बात मेरी दोपहर को बाहर जाने की, तो मैंने एक लाइब्रेरी की सदस्यता ले ली है। बच्चों को पढ़ाने के लिए ख़ुद को भी तो अपग्रेड करना पड़ता है। बस दोपहर का समय मुझे उचित लगा। उसका एक निश्चित समय है वरना बंद हो जाती है।'

राजीव ने सीमा को अपनी बाहों में समेटते हुए कहा, 'आज तो मैंने तुम्हें पूरा ही पा लिया।'

सीमा ने भी अपने आपको राजीव को समर्पित करते हुए कहा, 'तुम भी ख़ुद को पा लो मैं तो तुम्हारी हूँ ही।'

आने वाली सुनहरी सुबह के आगाज़ ने दस्तक दी.....

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

कथा-कहानी

टॉमी पकड़ो मुझे

प्रेम गुप्ता 'मानी'

प्रेम गुप्ता 'मानी'
एम.आई.जी-292, कैलाश विहार, आवास विकास योजना संख्या-एक, कल्याणपुर, कानपुर-208017 (उ.प्र)
मोबाइल- 9839915525
ईमेल-premgupta.mani.knpr@gmail.com

"टॉमी...टॉमी...ये लो, पकड़ो..." ज़ोर से चिल्लाते हुए रिकी ने छोटी-सी बॉल आकाश की ओर अपने नन्हें हाथों से पूरा दम लगा कर उछाली तो ऊँची छलाँग लगा कर टॉमी ने भी पूरी फुर्ती से उछल कर दबोच लिया उसे अपने भारी-भरकम जबड़े के बीच...। रिकी ने फिर से बॉल फेंकी तो टॉमी ने भी उसे लपकने की अपनी हरकत दोहराई। गेंद बार-बार आकाश की ओर जाती और फिर जैसे असफल होकर टॉमी के जबड़ों की गुफा में क़ैद हो जाती। टॉमी गेंद लेकर भागता तो रिकी भी उसके पीछे दौड़ता। आख़िरकार दोनों ही हाँफने लगे थे।

अपने आलीशान बँगले के बाहर लम्बे-चौड़े लॉन में उगी हरी-मखमली दूब के ऊपर अपने कुत्ते के साथ भागमभाग का यह खेल खेलने में रिकी इतना मस्त था कि उसे तो पता ही नहीं चला कि कब कई जोड़ी नन्हीं आँखें टिकी हैं उन दोनों पर...। वह तो मस्त होकर दौड़ा और एक बार फिर गेंद को पूरी ताकत से आकाश की ओर उछाल दिया इस आशा में कि टॉमी एक बार फिर उसे लपक लेगा, पर यह क्या ? टॉमी तो उल्टी दिशा में भागा और रिकी जब तक कुछ समझे, टॉमी के भारी जबड़े के बीच उन दोनों का खेल देखने आए रवि की कमीज़ का सिरा आ गया। रवि तो डर के मारे चीखने लगा। उसकी मासूम आँखों में भय के बादल और समंदर का खारा पानी जैसे एक साथ ही भर गया, पर यह क्या ? समंदरतो सिर्फ उसी की आँखों में था, बाकी का तो हँसते-हँसते बुरा हाल था। रिकी भी हँस रहा था। सभी को हँसता देख रवि ने धीरे से अपनी आँखें खोली तो हतप्रभ रह गया। लॉन में रखी मेज़-कुर्सी के नीचे टॉमी दुबका हुआ बैठा था और रिकी हँसी से लोटपोट होता हुआ उसकी मोटी पूँछ पकड़ कर उसे बाहर घसीट रहा था। रवि ने देखा तो उसे भी हँसी आ गई। बस फिर क्या था ? पल भर में आँखों का खारा पानी गालों की सतह पर फिसला और कमीज़ के सोख्ते में समा गया। रवि का डर दूर हो गया था। जब रिकी

टॉमी को घसीट सकता है तो वह क्यों नहीं ? वह जाकर रिकी के करीब खड़ा हो गया। रिकी ने उसे देखा तो गर्व से बोला, "अरे, डर गए ? अरे पागल...यह काटता नहीं है...यह तो तुम्हें डरा रहा था...।"

रिकी की बात से रवि का साहस बढ़ गया। उसने डरते-डरते टॉमी के नर्म-गुदगुदे तन को छुआ तो रोमांचित हो उठा। उसे बड़ा मज़ा आया। उसने दुबारा टॉमी को सहलाया, "तुम्हारा कुत्ता बहुत अच्छा है...तुम रोज़ खेलते हो इसके साथ ?"

"हाँ..." रिकी ने इठलाते हुए कहा और ख़ुद भी टॉमी को सहलाने लगा। टॉमी के शरीर पर दोनों के हाथों की नर्म उँगलियाँ एक साथ फिसली तो अपनी अधमुँदी आँखों से टॉमी ने उसकी ओर इस तरह देखा जैसे कह रहा हो, "अरे यार...तुम तो फालतू में डर गए, मैं तो बस मज़ाक कर रहा था...।"

"बहुत समझदार है यह...किसी को नहीं काटता, बस दोस्ती करता है..." जब तक रवि कुछ कहे, रिकी ने टॉमी का पंजा उसके हाथ में दे दिया, "लो...हाथ मिलाओ...।"

रवि का डर पूरी तरह से दूर हो चुका था। उसे गुदगुदी सी हो रही थी। उसने टॉमी का हाथ ज़ोर -ज़ोर से हिलाया, मानों दोस्ती पक्की कर रहा हो, "तुम्हारा टॉमी तो सच्ची में बहुत अच्छा है। कहाँ से लाए हो इसे...? एक और हो तो हमें दे दो...।"

"नहीं, मेरे पास बस एक ही है...। पापा ख़ूब महँगा खरीद कर लाए हैं इसे...। तुम अपने पापा से कहो अपने लिए एक लाने को..." अगले ही पल टॉमी के बारे में बताते हुए रिकी के माथे पर गर्व का पहाड़ था, "जानते हो, इसका अपना एक डॉग हाउस है...और इसके लिए पापा ने एक बहुत प्यारा सा पलंग भी खरीदा है, उसी पर यह सोता है...। दिन भर इसकी देखभाल के लिए एक अलग नौकर भी है...वह देखो..." थोड़ी दूर ही कुछ काम करते एक आदमी की तरफ रिकी ने इशारा किया।

रवि आश्चर्य से कभी टॉमी की ओर तो कभी रिकी की ओर देख रहा था। अभी तक उसने आदमियों के लिए नौकर सुना था, पर कुत्ते के लिए नौकर...? टॉमी कैसे अपने नौकर से काम करवाता होगा ? बिस्तर पर टॉमी क्या अकेला सोता है...उसे डर नहीं लगता ? उसे तो बहुत डर लगता है। वह तो अम्मा-बाबू, राजू, कमली सबके साथ सोता है...वह भी एक ही बिस्तर पर...। उसके पास तो एक ही कमरा है। वे सब वहीं सोते भी हैं और खाना भी वहीं एक कोने में बनता है, पर रिकी के पास...? उसने रिकी के बँगले के लंबे-चौड़े लॉन की बाउंड्री के उस पार सड़क के परले हिस्से पर बने अपने एक कमरे के कच्चे-पक्के मकान की तरफ देखा और उदास हो गया।

रिकी रवि की उदासी से अनजान था, "लो, एक बार और हाथ मिला लो...।"

रवि अपनी उदासी भूल गया। उसने टॉमी का पंजा स्पर्श किया और फिर दौड़ पड़ा, "टॉमी, पकड़ो मुझे...।"

टॉमी ने उसे कोई लिफ्ट नहीं दी तो रवि का चेहरा लटक गया। वह भी रिकी की तरह टॉमी के साथ खेलना चाहता था।

" टॉमी अब थक गया है, तुम भी जाओ..." रिकी ने एक झटके से कहा और टॉमी को लेकर अन्दर चला गया। रवि अब भी मूर्तिवत् खड़ा था। उसकी निगाहें बँगले पर टिकी हुई थीं। वह दो महीने के लिए गाँव गया था, नानी के पास, उसी बीच ये लोग आ गए...और साथ में यह टॉमी भी...। शुरू में उसे अन्दर आने में डर लगा था। अम्मा ने भी मना किया था, पर वह माना नहीं। टॉमी को देख कर उसका जी ललचा गया था और मौका पाकर वह अन्दर आ गया। और कितने लोग भी तो आते हैं...। अम्मा तो बस ऐसे ही डरती है...बड़े लोग हैं...मारेंगे...अगर उनका कोई फूल भी छू लिया तो...। अरे, अम्मा अगर एक बार टॉमी को देख लें तो वह भी डरना भूल जाएँगी।

रवि काफी देर खड़ा रहा। अचानक बँगले के किसी नौकर ने ज़ोर से घुड़का तो भागता हुआ घर आ गया। भूख लग रही थी तो एक रोटी प्याज़ के साथ खाकर स्कूल का काम करने बैठ गया। काम पूरा नहीं हुआ तो मास्टर जी मारेंगे। वह सवाल लगाने लगा पर हल नहीं कर पाया। मन में बार-बार टॉमी की तस्वीर उभर रही थी। कितना लंबा-चौड़ा, मोटा-सा है...उसके बाबू की तरह...। टॉमी के साथ उसे अपने मोटे-से बाबूजी भी याद आ गए। आज शाम को उनके आने पर कहेगा कि उसके लिए भी टॉमी जैसा कुत्ता ला दें। वह भी रिकी की तरह खेलेगा...टॉमी...आ-आ...पकड़ो मुझे...ये ल्लो...पकड़ लिया...।

उसने ज़ोर से ताली बजाई कि तभी एक झापड़ पड़ा गाल पर, "हरामज़ादा...इतनी ज़ोर से चीख रहा...कमलिया सो रही है, उठ गई तो हड्डी तोड़ के रख दूँगी। धीरे से नहीं पढ़ाई कर सकता ?" अचानक पड़ी इस मार से हकबकाये रवि ने देखा, सामने लाल अंगार-सी आँखें लिए अम्मा खड़ी थी। रवि डर गया। वह जब भी चूल्हे के पास से हटती है, उनकी आँखें लाल हो जाती हैं। कमरे में भी धुआँ भर जाता है। रवि मार से रुआँसा हो गया था। उसका दम भी घुटने लगा। उसका दिल किया, अभी भाग कर जाए और टॉमी के साथ खेले...पर मास्टर जी का काम...। रवि पाठ याद करने लगा...क...ख...ग...क से कुत्ता...टॉमी जैसा...। उसने कॉपी पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच कर टॉमी की तस्वीर बनाने की असफल कोशिश की और फिर धीरे-धीरे उसके साथ ही खेलने लगा...टॉमी, टॉमी...पकड़ो मुझे...।

अभी वह 'टॉमी पकड़ो मुझे' बोलते हुए उसे दो ही मिनट हुए थे कि तभी पीठ पर एक ज़ोरदार घूँसा पड़ा, "कितनी बार मना किया पर मानता ही नहीं...हड्डी तोड़ के रख दूँगी ससुरे..." इस बार घूँसा ज़ोर का पड़ा था। रवि रोने लगा। काफी देर तक रोता रहा पर जब किसी ने नहीं मनाया तो ख़ुद ही चुप होकर अम्मा के पास जाकर बैठ गया, "अम्मा...एक टॉमी हमको भी दिला दो...।"

अम्मा चुपचाप अपने काम में लगी रही तो रवि उनकी चिरौरी करने लगा, "बोलो अम्मा...दिला दोगी न...?"

"नहीं, हम नहीं ले सकते..." अम्मा भी थोड़ी पिघल गई थी।

"क्यों...हम लोग क्यों नहीं ले सकते ? सामने रिकी के पास कितना प्यारा टॉमी

है...उसका अलग नौकर भी है। लेकिन यहाँ तुम बस टॉमी दिला देना, नौकर न रखना...मैं ख़ुद उसका सारा काम कर दूँगा...। बोलो...दिला दोगी न ?" रवि ने माँ का चेहरा अपनी ओर घुमा लिया। उसकी आँखें हलकी भरी हुई थीं, पर उनमें एक आशा भरा प्रश्न भी तैर रहा था।

"नहीं, हम लोग के पास रिकी के जितना पैसा नहीं है। उसका बाप बहुत अमीर है और तुम्हारा बाबू एक मामूली चपरासी...। इसलिए हम लोग अमीरों की तरह टॉमी नहीं पाल सकते...।"

अम्मा ने रवि को समझाने की बहुत कोशिश की पर वह तो जैसे ज़िद पर अड़ गया था। उसे भी टॉमी जैसा एक कुत्ता चाहिए...वह भी उसके साथ खेलेगा। रवि की ज़िद और शोर से कमली भी जाग कर रोने लगी तो अम्मा को फिर गुस्सा आ गया। एक के बाद एक उन्होंने तीन-चार झापड़ रवि को जड़ दिए कि तभी उसके बाबू आ गए, "अरे क्या हुआ भई...क्यों मारती हो इसे ?"

"मारूँ नहीं तो और क्या करूँ? बड़े लोगों की बराबरी करता है। सामने बँगले वालों के यहाँ कोई कुत्ता देख कर आया है, तब से ज़िदियाया है वैसा ही कुत्ता दिलाने को...मार तब से शोर मचाये हुए है...।"

"अरे छोड़ो, बच्चा है...। लाओ, खाना दे दो...भूख लगी है।"

अम्मा ने रोटी साग लाकर बाबू के सामने रखा तो अपनी मार भूल कर रवि भी खाने बैठ गया। बाबू के कहने पर अम्मा ने उसकी और राजू की थाली भी परोस दी और ख़ुद कमली को दूध पिलाने बैठ गई।

पेट भर गया तो रवि को फिर टॉमी की याद आई। अब की वह बाबू की गोद में बैठ गया, "बाबू...हमको भी एक टॉमी ला दो न...।"

"अच्छा... ला देंगे...। अभी जाकर खेलो... नहीं तो अम्मा फिर मारेगी...।" बाबू से आश्वासन पाकर रवि वापस जाकर अपनी कॉपी पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचने लगा। जब से उसने रिकी का टॉमी देखा है, तब से वह उसके मन से उतरा ही नहीं। यद्यपि बाहर सड़क पर ढेर सारे कुत्ते हैं, कभी-कभी वह उनके साथ भी खेलता है, पर टॉमी की बात ही कुछ और है। वह कितना सुन्दर और साफ़-सुथरा है। उसकी पीठ पर हाथ फेरो तो गुदगुदी होती है...और यह मोती...छि: ! कितना गन्दा है...। नाली में भी लोटता है...। मोती के पास तो कोई 'घर' भी नहीं है...। मास्टर जी ने तो एक बार मोती को देख कर कहा भी था, "इस गंदे कुत्ते के साथ खेलोगे तो तुम्हें भी खुजली हो जाएगी...।" उसने तब से उसके साथ खेलना छोड़ दिया, पर यह टॉमी...? उसके साथ खेलने से खुजली नहीं होगी...। रिकी ने बताया तो था कि नौकर उसे रोज़ नहलाता है। पाउडर लगा कर रोज़ उसके बालों में कंघी करता है...रोज़ इसका बिस्तर बदलता है...और...।

"टॉमी...टॉमी...इधर आओ..." रवि के कानों में रिकी की आवाज़ टकराई तो तेज़ी से सड़क पार करके वह फिर लॉन में पहुँच गया। रिकी इस समय टॉमी के साथ खेल नहीं रहा था, बल्कि अपने दरवाज़े पर खड़ा उसे आवाज़ दे रहा था। रवि उसके पास पहुँचा तो रिकी ने उसे झिड़क दिया, "नहीं, अन्दर नहीं आओ...। मम्मी देखेंगी तो डाँटेंगी...।"

रवि अचकचा कर रुक गया। उसे रिकी कुछ बदला-सा लगा। दिन में तो ख़ूब अच्छी तरह बोल रहा था, इस समय क्या हो गया ? लेकिन उसने एक बार कोशिश और की, "इस समय नहीं खेलोगे ?"

"नहीं, अभी कैसे खेलेंगे ? अब टॉमी के खाने का टाइम है और मुझे भी होमवर्क करना है।" टॉमी रिकी के करीब आया तो डरते-डरते रवि भी पास आया।

"टॉमी क्या खा रहा है ?"

"तुम्हें नहीं पता?" रिकी की मासूम आँखों में अभिजात्य समझदारी का एक अजीब सा दर्प कौंधा, "यह नॉन-वेज खाता है...।"

"नॉन-वेज मतलब...?" रवि ने देखा, टॉमी के कटोरे में कुछ लाल-लिजलिजी सी चीज़ रखी है, "तुम्हारा मतलब गोश्त...?"

"पता नहीं..." रिकी ने कुछ हिक़ारत से कंधे उचका दिए तो खिसियाया-सा रवि वहीं खड़ा रहा। टॉमी पूरी तन्मयता से उस लाल-कच्चे गोश्त को अपने दाँतों से खींच-खींच कर चबर-चबर खा रहा था। रवि के भीतर एक सिहरन-सी दौड़ गई। कच्चा गोश्त कितना गन्दा लग रहा...अजीब-सा...।

"तुम ऐसे गन्दा गोश्त देते हो इसे खाने को...?" रवि के मन में अब भी उत्सुकता भरे सवाल थे।

रिकी अन्दर जाने को मुड़ा ही था, पर रवि की बात उसे जाने क्यों अपमानजनक लगी। उसे गुस्सा आ गया, "पागल हो क्या...? हम टॉमी को गन्दी चीज़ क्यों देंगे...?"

अचानक टॉमी की आवाज़ से चौंक कर रवि ने देखा, वह गोश्त के साथ मिली हड्डी को कड़-कड़...कच्च-कच्च करता खा रहा था। उसकी निगाह में अचानक एक वितृष्णा सी उभरी। रिकी से भी यह बात छिपी नहीं थी। उसे रवि पर गुस्सा आने लगा। एक तो वह टॉमी को ऐसा मुँह बना कर देख रहा था, ऊपर से उसके खाने को भी गन्दा भी बोला। अब वह रवि को टॉमी के पास नहीं आने देगा। मम्मी भी तो ग़ुस्सा कर रही थी, उसे समझाया भी था, "सड़क के इन गंदे बच्चों के साथ खेलोगे तो तुम्हारी हरकतें भी गंदी हो जाएँगी...।"

"ऐ सुनो...खेलना है ?" अचानक रिकी ने कहा और एक तरफ को दौड़ गया। रवि खुश होकर उसके पीछे दौड़ा, पर अगले ही पल रुक गया, "ले-ले...तू-तू...पकड़ टॉमी...।"

"पर मेरा नाम तो रवि है, टॉमी तो तुम्हारे कुत्ते का नाम है..." रवि हतप्रभ था।

"हाँ जानता हूँ...पर शक्ल देखी है अपनी...? बिलकुल टॉमी से मिलती है..." रिकी ने ज़ोर-ज़ोर से उसकी तरफ इशारा करते हुए हँसना शुरू कर दिया तो रवि रुआँसा हो उठा। उसके मुँह से बोली नहीं निकली। पल भर उसने अपने भीतर का साहस बटोरा और फिर चीखते हुए पूरी ताकत से बाहर की ओर भाग निकला, "तू कुत्ता...तेरा बाप कुत्ता..."

रिकी की हँसी को एकदम ब्रेक लग गया...टॉमी शू...उसने टॉमी को रवि के पीछे शू तो किया, पर गोश्त खाने में जुटे टॉमी को जब तक कुछ समझ आया, रवि अपने कमरे में घुस कर दुबक गया था। अम्मा ने देखा तो

धुन दिया, "बिना बताए कहाँ मर गया था ? कलेजे में डर नहीं क्या ? जब देखो तब बाहर...घर आने की फिकर नहीं क्या ?"

अम्मा से इतना पिटने के बावजूद उसने 'उफ़' तक नहीं की। उसके भीतर जैसे कुछ घुमड़ रहा था...रिकी ने उसे कुत्ता कहा...। सारी रात वह बेचैनी में ठीक से सो नहीं पाया...रिकी ने उसे कुत्ता क्यों कहा...? वह कुत्ता नहीं है...।

सुबह दिन चढ़े तक उससे उठा नहीं गया...बदन बुरी तरह टूट रहा था। अम्मा ने माथा छुआ तो चौंक गई, "इसे तो तेज़ बुखार है...।"

"थोड़ा काढ़ा बना कर पिला दो...उतर जाएगा। शाम को भी ऐसा ही रहा तो दवा दिला देना..." बाबू को नौकरी पर जाने में देर हो रही थी, इसलिए अम्मा को हिदायत देकर वे चले गए। अम्मा ने लौंग, काली मिर्च, तुलसी और अदरक का काढ़ा बनाया तो उसने बुरा-सा मुँह बना कर चुपचाप पी लिया और फिर लेट गया। दोपहर को भी बस एक रोटी खाई गई उससे...अम्मा ने साथ में चाय भी दे दी। आज वह स्कूल भी नहीं गया, न खेलने बाहर निकला...बस गुमसुम-सा चुपचाप लेटा रहा। बीच-बीच में आँखें भर आती तो चुपके से पोंछ लेता। अम्मा ने एक-दो बार काढ़ा और बना कर दिया, उसे भी बिना न-नुकुर किए पी गया।

शाम को बाबू आए तो भी वह आँखें बंद किए चुपचाप पड़ा रहा, "बुखार उतरा इसका...?" बाबू ने उसे सोया जान कर अम्मा से पूछा।

"हाँ...अब ठीक है...। तीन-चार बार काढ़ा बना कर पिला दिया तो फायदा हुआ है...लेकिन सुस्त पड़ गया है।"

"कोई बात नहीं...रात में एक बार और पिला देना...और हाँ...आज बोनस मिला था तो थोड़ा गोश्त ले आया हूँ...बहुत दिन से नहीं खाया...। बढ़िया सा मटन बना दो और साथ में चावल...मज़ा आ जाएगा...। बच्चों के लिए थोड़ा मीठा भी ले आया हूँ। रात को देना, खुश हो जाएँगे...।"

अम्मा ने सब तैयारी करके गोश्त पकाना शुरू किया तो एक अजीब-सी गंध पूरे कमरे में फैल गई। इसके पहले भी जाने कितनी बार अम्मा ने गोश्त पकाया है, तब रवि को उसकी गंध ने कभी बेचैन नहीं किया था पर आज...?

उसकी अधमुँदी आँखों के आगे टॉमी का चेहरा घूम रहा था और कानों में रिकी की आवाज़...जानते हो, हमारा टॉमी रोज़ शाम को यही खाता है...।

"और तुम लोग...?"

"छि: ! हम लोग तो यह छूते भी नहीं...। हमारा नौकर लाता है और वही टॉमी को खिलाता भी है...। हम नहीं खाते, बस टॉमी खाता है...।"

टॉमी...टॉमी...ले-ले...पकड़...खा ले... टॉमी...तू भी...टॉमी...बिलकुल टॉमी की तरह है...।

रवि हाँफने लगा था। वह घबरा कर उठ बैठा। बाबू को सब बता देगा वह..फिर बाबू रिकी को मज़ा चखाएँगे...वह कुत्ता नहीं...।

अचानक उसकी निगाह ठकरा गई। सामने थाली में ढेर सारा चावल और पका हुआ गोश्त रखा था और बाबू बड़े ही मगनभाव से खा रहे थे। अम्मा भी खुश दिख रही थी। अब से पहले भी बाबू ऐसे ही खाते थे, लेकिन रवि को कभी वैसा कुछ नहीं लगा जैसा आज महसूस हो रहा है। रवि की आँखों के आगे अँधेरा सा छाने लगा। कमरे में भरी उस कसाइन-सी गंध से उसे उबकाई आने लगी। उसने अधमुँदी आँखों से देखा...टॉमी के कटोरे में गोश्त रखा है और वह उसके एक बड़े से टुकड़े को अपने भारी जबड़ों से भभोड़ रहा है। लाल-लाल गोश्त चारों ओर बिखरा है...मक्खियाँ भिनभिना रही हैं...।

ऐ रवि...टॉमी अभी खा रहा...तू खेल मेरे साथ...तू भी तो...ले-ले...पकड़ मुझे...।

अचानक रवि उठा और बाबू की थाली उठा कर दूर फेंक दी। बाबू की 'अरे-अरे' की आवाज़ के अगले ही पल एक ज़ोरदार झापड़ उसकी कनपटी पर पड़ा तो उसका दिमाग़ जैसे सुन्न हो गया, "ससुरा...कुकरे की तरह झपट्टा मारता है...। बुखार दिमाग़ पर भी चढ़ गया है क्या रे...?"

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

किसके लिए

डॉ. पूरन सिंह

मैंने जब से होश सँभाला, माँ को अपमानित होते ही देखा। पिता बात-बेबात के माँ को घुड़क देते, तिरस्कृत कर देते। माँ सहमकर रह जाती थी। मुझे पिता पर बहुत गुस्सा आता। जी चाहता पिता से ख़ूब लड़ूँ और वे जैसे मेरी माँ को अपमानित करते हैं वैसे ही माँ भी उन्हें अपमानित करे। लेकिन जब उनके सामने होता, मैं नर्वस हो जाता था और यही सब देखते-देखते मैं जवान हुआ। स्कूल से कॉलेज पास करने के पश्चात् अब नौकरी में हूँ। पिता, माँ का अपमान करने, उन्हें तिस्कृत करने का कोई भी मौका हाथ से नहीं जाने देते हैं। माँ की सहनशक्ति का मैं कायल हूँ और कितनी ही बार माँ की तरफ से पिता से भिड़ भी जाता हूँ। पिता अब थोड़े से नरम पड़ने लगे हैं। लेकिन नरम पड़ने के साथ-साथ अब वे माँ पर शक भी करने लगे हैं। शक, वह भी इस उम्र में, मैं खून का घूँट पीकर रह जाता हूँ जब वे माँ की जासूसी करने, उनकी नाकेबंदी करने और उन्हें अनावश्यक ताने देने लगते हैं। माँ के लिए सम्मान और पिता के प्रति विद्रोह ने मुझे कमज़ोर बना दिया है।

ऑफ़िस से लौटने के बाद, माँ ही मेरा संसार होती है। पिता से मैं आवश्यक बात ही करता हूँ। दूरियाँ, विद्रोह का आगाज़ हैं।

एक दिन पिता ने कहा कि वे एक पार्टी में जा रहे हैं और मैं भी उनके साथ जाऊँ। मैंने कहा भी कि मेरा उनके साथ जाना औचित्यपूर्ण नहीं है। ऐसी जगहों पर वे माँ के साथ जाया करें। तो वे मुझ पर गुर्राकर आए, 'इसे ले जाऊँ अपने साथ। है यह इस लायक। डीएसपी की वाइफ होकर भी ज़रा सा शऊर नहीं है। नाक नीची नहीं करवानी मुझे। तुम जल्दी से तैयार हो जाओ और चलो। मुझे ज़्यादा देर तक इंतज़ार करना अच्छा नहीं लगता।'

माँ ने मुझे समझाया, 'बेटा ज़िद नहीं करते। चले जाओ।' पिता को तो मना करता लेकिन मेरी माँ तो मेरे लिए सब कुछ है। माँ की बात मैंने मान ली थी।

मैं पिता के साथ पार्टी में चला गया था। पिता मुझे बड़े गर्व से मिलवाते रहे सभी से। 'बेटा है मेरा। इंडिया इंटरनेशनल में चीफ मैनेजर है। कंपनी, विदेश भेज रही थी मैंने ही मना कर दिया। भई अकेला बेटा है। कैसे जाने देता। अब बेगम को तो कोई अकल है नहीं। इसी से बात कर लेता हूँ तो मन हल्का हो जाता है।'

पिता मेरी तारीफ कर रहे थे लेकिन मेरी माँ के लिए इस तरह के शब्द मुझे अंदर तक चीर रहे थे। सो मैंने उनको कहा था, 'पापा मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा। थोड़ी देर के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। अजीब सी घुटन हो रही है।'

'ठीक है लेकिन जल्दी ही वापिस आ जाना। अभी कुछ लोग और आने वाले हैं जिनसे आपको मिलवाना है।' कहते हुए वे पार्टी में मस्त हो गए थे।

मैं बाहर आया तो थोड़ा अच्छा लगा। माँ याद आने लगी। थोड़ी देर बाद अंदर गया तो पिता एक अधेड़ औरत की कमर में हाथ डाले उसके माथे पर आई लटों को सुलझाने में जुटे थे। उस औरत को भी शायद अच्छा लग रहा था। मैंने देखा तो आग बबूला हो गया था, मैं। काश मेरी माँ के साथ भी ऐसे ही रहा करें।

'पापा मैं घर जाऊँगा। मुझे कुछ ठीक नहीं लग रहा'। पिता थोड़े तो नाराज़ हुए फिर सहज होकर बोले, 'यहीं रुकते तो अच्छा लगता। चलो कोई बात नहीं। तुम गाड़ी ले जाओ। अपने लिए मैं ऑफ़िस से गाड़ी मँगवा लूँगा।'

मैं घर लौट आया था। घर के बाहर का दरवाज़ा खुला था। सो मैं अंदर घुस आया। ड्राइंग रूम में किसी के जूते रखे थे। सेंटर टेबुल पर रिस्टवाच रखी थी और माँ-पिता के बेडरूम से माँ की खिलखिलाने की आवाज़ें आ रही थीं। दूसरी ओर शांति थी। हाँ, बाहर की ओर सिगरेट के धुएँ के छल्ले लहरा रहे थे।

डॉ. पूरन सिंह
240 बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर
नई दिल्ली- 110008
मोबाइल- 9868846388
ईमेल– drpuransingh64@gmail.com

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि जिस माँ की मैं पूजा करता रहा। देवी मानता रहा। मेरी वही माँ। हे भगवान्! एक पल के लिए पिता पर तरस आ गया था।

मैं बाहर की ओर आ गया और लगभग चीखा था, 'मम्मा।'

मेरी आवाज़ सुनकर माँ भागती हुई बाहर आई थी। माँ के सिर पर साड़ी का पल्लू नहीं था लेकिन चेहरे पर खुशी थी और आँखों में चमक। माँ की खुशी सँभाले नहीं सँभल रही थी।

'अंदर कौन है। किसके साथ आप गुल..छर्रे.............' मैं उनका बेटा न होकर शायद अब एक पुरुष था।

माँ कोई जबाव देती तब तक मँझले मामा, माँ के कमरे से बाहर आ गए थे। सिगरेट उनके हाथ में अब भी थी। वे चेन स्मोकर हैं।

मैं सन्न रह गया था मानों किसी ने मेरा सब कुछ लूट लिया हो।

'अरे तुम आए हो।' मँझले मामा के ये शब्द तक मैं न सुन पाया था।

माँ अंदर चली गई थी। मैं हारे हुए जुआरी की तरह वहीं सोफे में धँस गया था। तभी बाहर से पापा की गाड़ी की आवाज़ आई थी। पापा कब अंदर आ गए थे मैं जान ही नहीं पाया।

पापा ने आते ही पूछा था, 'तेरी माँ कहा है?'

और माँ... माँ छोटे वाला सूटकेस लिए ड्राइंग रूम में खड़ी थी और मंझले मामा से कह रही थी, 'चलो भइया।'

पिता स्तब्ध थे और मैं सन्न।

'कहाँ जा रही हो?' पिता ने अपने वही हिटलरी अंदाज़ में पूछा था।

माँ ने पहली बार पिता की अनसुनी की थी।

मैं, माँ के पैर पकड़े भरी-भरी आँखों से, उनसे क्षमा माँग रहा था, 'मम्मा प्लीज़ रुक जाओ।'

'किसके लिए?' माँ ने सिर्फ इतना ही पूछा था और एक झटके से घर से बाहर निकल गई थीं। मँझले मामा अपने जूते और रिस्ट वॉच पहनते ही रह गए थे।

000

लघुकथा

जीवंत ग़ज़ल

वीरेंद्र बहादुर सिंह

हाथ में लिए ग़ज़ल संध्या का आमंत्रण कार्ड पढ़ कर बगल में रखते हुए अनुज ने पत्नी से कहा, "तुम्हें पता है, ग़ज़ल सुनी नहीं, अनुभव की जाती है।"

श्वेता ने एक फिर वह आमंत्रण कार्ड अनुज के हाथ में रखते हुए कहा, "ग़ज़ल न मुझे सुननी ही है और न अनुभव ही करनी है। मुझे तो बस तुम्हारे साथ चलना है। अब यह बताओ कि तुम चलोगे या नहीं?"

दोनों विवाह के सात साल पहले से एक-दूसरे के प्यार में पड़े थे और तब से अब तक दोनों के बीच एक भी कॉमन हॉबी या इच्छा नहीं रही थी, पर प्यार इतना अधिक था कि शिकायतों के बीच से रास्ता निकाल कर आगे बढ़ते रहे। दोनों को एक-दूसरे को समय देने में हमेशा परिस्थितियाँ और काम के प्रति प्राथमिकता बीच में आती रहीं। दोनों एक-दूसरे पर ग़ुस्सा ज़रूर होते, पर प्यार की वेलिडिटी इतनी अधिक थी कि कुछ भी आड़े नहीं आता था।

पिछले एक साल से दोनों की ड्यूटी अलग-अलग शिफ्ट में थी यानी एक घर आता था तो दूसरा ड्यूटी पर जाता था। रोज़ाना घर के फ्रिज पर रखी चिट्ठी में लिखे जाने वाले मैसेज के नीचे बनाया जाने वाला दिल का निशान ही उनका प्यार था। केवल रविवार को ही दोनों एक साथ होते थे। अब इस परिस्थिति में सप्ताह भर बाद मिलने वाले रविवार को किसी गायक को सुनने में बिताना अनुज को बहुत मुश्किल लग रहा था। पर प्यार की एक अलिखित शर्त होती है कि कोई भी ख़ुद की अपेक्षा सामने वाले व्यक्ति की इच्छा को समझ सकता है।

रविवार की शाम को दोनों जन खचाखच भरे हाल में जा कर बैठ गए। दो-तीन ग़ज़ल गा कर माहौल बनाने की कोशिश की गई। जिन्हें ग़ज़ल का बहुत शौक था, उन लोगों के लिए तो कानों का जलसा शुरू हो गया था। पर अनुज के लिए सहन न हो, इस तरह का अनुभव था। दो-चार बार मोबाइल निकाल कर फेसबुक चेक करने का मन हुआ। पर वह बगल में बैठी पत्नी का मज़ा ख़राब नहीं करना चाहता था, इसलिए शांति से बैठा रहा। समझदार पत्नी को पता था कि वह उसी की वजह से यहाँ बैठा है। इसलिए धीरे से उसने उसके कान में कहा, "अगर तुम्हें मज़ा न आ रहा हो, तो बाहर जा कर घूम आओ।"

अनुज तो यही चाहता था। वह हाल से निकल कर बाहर गैलरी में आ गया। दिसंबर की ठंड में वह सिगरेट निकाल कर सुलगाने जा रहा था कि उसकी नज़र किसी पर पड़ी। उसने मोबाइल निकाल कर पत्नी को मैसेज किया, 'ग़ज़ल देखनी हो तो बाहर आ जाओ।'

बाहर आ कर श्वेता ने सवालिया नज़रों से अनुज की ओर देखा। अनुज ने सामने फुटपाथ पर इशारा किया। एक झोपड़ी के बाहर अलाव जल रहा था। अलाव के पास फटी गुदड़ी ओढ़े पति-पत्नी बैठे एक ही कटोरे में चाय पी रहे थे।

दोनों बिना कुछ कहे इस जीवंत ग़ज़ल को देखते रहे।

000

वीरेंद्र बहादुर सिंह, जेड-436ए, सेक्टर-12, नोएडा-201301 (उ.प्र.)
मोबाइल- 8368681336, ईमेल- virendra4mk@gmail.com

भाषांतर

सेफ्टी किट

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : जिंदर

अनुवाद : जसविंदर कौर बिन्द्रा

जिंदर,
984, राजपूत नगर, मॉडल हाउस,
जालंधर-144003
मोबाइल- 9814803254

जसविंदर कौर बिन्द्रा
आर-142, फर्स्ट फ़्लोर
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली- 110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

"समांथा, तुम्हें अजनबी जगहों पर अकेले जाते हुए डर नहीं लगता?" मेरे इस सवाल के जवाब में उसने तुरन्त ही मुझसे सवाल किया, "यू आर स्केयर्ड ऑफ रेप, डोंट यू?" मैंने उसकी ओर उसी तरह देखा, जैसे पहले भी उसकी बातें सुन कर देखती थी, उसी हैरत से, अब भी मैंने उसकी ओर देखा। रेप से किसे डर नहीं लगता। रेप के बाद कैसी ज़िंदगी बाकी रह जाती है? मेरा क्या, हर लड़की के लिए सबसे बड़ा डर यही है, पता नहीं किस समय ऐसी अनहोनी घट जाए। जब से मम्मी का फ़ोन आया, उसके बाद से मैं फिर से डरने लगी हूँ। उसने काँपती आवाज़ में बताया था, "मौत आए हमारे जजों को, अभी तक निर्भया बलात्कार के कातिलों को फाँसी नहीं दी। अब एक नया ही पंगा खड़ा हो गया। कहते हैं, उन चारों में से एक नाबालिग है। मुकेश, पवन, विनय, अक्षय....मेरे वश में हो तो तेलगांना कांड की तरह इन सभी को एक ही लाइन में खड़े कर, गोली मार दूँ। जब तक अरब देशों की तरह यहाँ सज़ा नहीं दी जाएगी, यहाँ कुछ नहीं बदलेगा।"

बातें करते-करते माँ की साँस फूलने लगी। मैंने कहा, "मुझे मालूम है। कुछ और बात करो, माँ।" माँ की आवाज़ भारी होती गई, "इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है। मैं तो नीली छतरी वाले की शुक्रगुज़ार हूँ कि तुम विदेश चली गई। आजकल तो हमारे देश में रहना मुकिल हो रहा है। फिर भी बेटी, अपना ध्यान रखना। किसी पर अधिक विश्वास करने का ज़माना नहीं रहा।"

इस बार समांथा दो सप्ताह के लिए अफगानिस्तान गई थी। उसके पास बताने के लिए बहुत कुछ था। आज नहीं तो कल..., अधिक से अधिक अगले हफ्ते तक वह अपने सारे अनुभव मुझसे साझा करेगी ही। वह जहाँ भी जाती, उसे या तो डायरी में नोट कर लेती या अपने मोबाइल में सेव कर लेती। वह उत्साह से भर कर जाती और तरो-ताज़ा होकर लौटती। एक-दो दिन आराम करती और फिर से उसी प्रकार भागने-दौड़ने लगती। इन दिनों वह 'एशिऐंट एशियन हिस्ट्री' पर कोई रिसर्च कर रही थी।

'मैं...।" मैं कुछ कहने ही वाली थी कि उसका मोबाइल बज उठा। "सॉरी जैस, आई हैव टू अटैंड दिस कॉल।" कहते हुए, वह उठ कर दूसरे कमरे में चली गई। उसके ब्वाय फ्रैंड डॉमनिक का फ़ोन होगा। अगर किसी दूसरे का होता तो नज़रअंदाज़ कर देती। मैसेज छोड़ देती, 'कॉल यू लेटर।'

मैं टाँगें फैला कर बैठ गई। जून महीने में इतवार की छुट्टी में धूप का मज़ा लेने लगी। संधू अंकल से मैंने आज की छुट्टी के लिए कल रात ही कह दिया था। बहुत से काम करने वाले थे, कपड़े धोने, कमरे की सफाई और थोड़ी-बहुत शॉपिंग भी करनी थी। बारह बजे, खिली धूप अनायास ही मुझे बाहर खींच लाई। गार्डन की ओर से तेज़ हवा चल रही थी। कमरे की बाहरी दीवार के साथ पुरानी चादर पर शॉल बिछा कर, मैं दीवार से टेक लगा कर बैठ गई। सूरज कब निकलता और कब छिप जाता था, इस ओर मैं ध्यान दे ही नहीं पाती थी। पूरा सप्ताह मेरा भागदौड़ में बीतता था।

चार महीने मैं दादी शाम कौर के पास रही थी। जब भी दादी इंडिया आती तो अधिकतर हमारे ही घर में रहती थी। उनकी ज़मीन को मेरे डैडी ही सँभालते थे। बैंक खाते भी साझे थे। न कभी दादी ने हिसाब माँगा और न ही डैडी पैसे खर्च करते समय कंजूसी करते थे। दादी, डैडी को अपना तीसरा पुत्र मानती थी। मेरे यहाँ आने की बात सुन कर, सुरजन सिंह अंकल ने डैडी को फ़ोन करके कहा, 'जसप्रीत हमारे पास रहेगी। आप कोई चिंता न करें। दादी-पोती, एक ही कमरे में रहेंगी। बस यह समझ लो, वह एक घर से उठ कर, दूसरे घर में आ रही है। जब तक उसकी पढ़ाई मुकम्मल नहीं होती, सारी ज़िम्मेदारी हमारी। बाद में उसकी मर्ज़ी।' अंकल और आंटी मुझे बरमिंघम एयरपोर्ट पर लेने आए। दस दिन तक अंकल कार से मुझे कॉलेज छोड़ने जाते रहे। फिर उन्होंने मुझे बस रूट समझा दिया।

दूसरे के घर पर जाकर रहना कितना मुश्किल होता है, उसका अंदाज़ा मुझे अब हुआ था।

रात को मैं समय पर सोना चाहती मगर दादी की बेसिर-पैर की बातें ख़त्म न होती। उसकी

सूई बार-बार इस बात पर अटक जाती, "बेटी, जब तक हमारे पर है, देखना कोई शिकायत न मिले। अगर तुमसे कोई ग़लती हो गई तो तुम्हारी माँ रज्जी मेरा जीना हराम कर देगी। घर से कॉलेज और कॉलेज से घर आना। जब तुम्हें यहाँ की सारी जानकारी हो जाएगी, तब तुम्हें अकेले छोड़ देंगे। ....आदमी तो गधा होता है। चार घंटे के बाद हिनहिनाने लगता है।

मैंने तीन महीने के बाद ही मम्मी से कहा, "अब मैं इन के घर में नहीं रह सकती। मैंने किसी के साथ रूम शेयर करने के बारे में सोच लिया है।"

उन्होंने भी तुरन्त हामी भर दी, "ठीक है, तुम्हें जैसे ठीक लगे। अपने इलाके की लड़की मिल जाए तो तुम्हें भी आसानी रहेगी।"

मुझे जिस प्रकार का कमरा चाहिए था, वैसा ही मिल गया। मेरे कमरे के दाहिनी ओर घर का फ्रंट रूम था। जिसका दरवाज़ा अंदर घुसते ही सीढ़ियों से पहले था। सीढ़ियाँ घर के ऊपर वाले बैडरूम की ओर जाती थी। नीचे सामने बाथरूम और बाई ओर मुख्य फ्रंट रूम, जिसके पीछे डाइनिंग-टेबल और किचन था। किचन मेरे कमरे के साथ भी जुड़ता था। यह दरवाज़ा मैं किचन में आते-जाते समय ही खोलती थी। मैं अपने कमरे के दरवाज़े भी बहुत कम खोलती थी। अधिकतर समय उन्हें लॉक लगा कर रखती। डॉमनिक आता तो तेज़ आवाज़ में सीढ़ियाँ चढ़ता। समांथा का कमरा मेरे कमरे के ऊपर था। डॉमनिक उसके कमरे में होता तो लगता है, जैसे कोई तख्तों पर कूद रहा हो। कभी-कभी मैं उठ कर देखती कि कहीं मेरी ओर का दरवाज़ा खुला तो नहीं रह गया। मैं चिटकनी लगाना कभी नहीं भूलती थी।

मेरे कमरे के दरवाज़े बंद देख कर समांथा कहती, "तुम सारी चिंताएँ एक ओर रख कर, डीप स्लीप सोती हो।"

मैं हँसते हुए कहती, "मैं बहुत थक जाती हूँ, इसलिए बहुत गहरे सो जाती हूँ।"

"इतने लॉक लगाने की ज़रूरत नहीं। यहाँ आपकी मर्ज़ी के बिना कोई आपके कमरे में नहीं आता।"

मैंने उसे अपनी पिछली रिहायश के बारे में बताया, जहाँ मैं छह महीने रही थी। आप जिन्हें अपना समझते है, उनसे ही अधिक खतरा होता है, इस बात का एहसास मुझे वहीं हुआ था। भाजी (भाई) और भाभी जी का व्यवहार तो ठीक था परन्तु उनका छोटा भाई, कई बार मेरे कमरे का दरवाज़ा नॉक करने लगता। एक रात मैंने दरवाज़ा खोला, तो उसने कहा, "मैंने सोचा, तुम अकेले बोर हो रही होगी। टैली पर 'इश्क़' फिल्म आ रही है। बहुत रोमांटिक फिल्म है।"

"मैं बहुत टायर्ड हूँ। जब दिल चाहा, यूट्यूब पर फिल्म देख लूँगी।" कह कर मैंने दरवाज़ा बंद कर दिया। उस रात वह लगातार मेरा दरवाज़ा खड़खड़ाता रहा। भाजी-भाभी जी किसी पार्टी में गए थे। मैंने कंबल ओढ़ कर सोने की कोशिश की। सुबह मुझे काम पर भी जाना था। बहुत देर तक मुझे नींद नहीं आई।

जब मेरा इंग्लैंड आने का प्रोग्राम बन रहा था। मेरी मम्मी बहुत चिंतित थी। वह हर समय मुझे नसीहत करती रहती। कहते, "तुम अपना ख़याल रखना। अकेली लड़की को देख कर आदमी पागल हो जाते है।"

मैंने कहा, "आपको मुझ पर भरोसा नहीं, तो मत भेजो।"

"बात भरोसे की नहीं, कभी मजबूरी और कभी मन की मौज में पैर लड़खड़ा जाते हैं।" उनकी आवाज़ अजीब तरह से काँपने लगी। मुझे भी ऐसा ही महसूस होने लगा। फिर मैंने पूछा, "कहीं आपके साथ कुछ ऐसा तो नहीं घटा, जिस कारण आपको मेरी अधिक चिंता हो रही है।"

वह सोफे पर पालथी लगा कर बैठ गई। आस-पास देखा, कोई तीसरा वहाँ नहीं था। माँ ने आह भरी, "तुम मेरी बेटी हो। तुम्हें सचेत करना मेरा फर्ज़ है। मर्द बहुत ही खतरनाक जानवर है। न यह रिश्ता देखता है और न ही उम्र। मेरे भाई देबी ने तुम्हारी बुआ राणो के साथ ज़बरदस्ती की थी। राणो ने माता जी को बताया। माता जी समझदार थी। उन्होंने दूर की सोची। यदि बात निकलती, दो परिवार बर्बाद हो जाते। उन्होंने मुझे अपने पास बिठा कर कहा, "रज्जी या तो सुसराल से निभा लो या मायके वालों से।" मैंने सुसराल वालों को अहमीयत दी। देबी से फिर कभी कलाम नहीं किया। कलाम क्या, फिर कभी उसकी ओर मुड़ कर नहीं देखा। आज तक तुम्हारे डैडी को भी इस बात की भनक नहीं लगने दी।"

मैं मम्मी की बात सुन कर हैरान रह गई। मेरी आँखों के सामने बुआ का भोला सा चेहरा घूमने लगा।

मम्मी की बात सुन कर मैं कई रातों तक सो नहीं पाई। मैंने मम्मी को यकीन दिलाया कि मैं कभी कोई ग़लत काम नहीं करूँगी। अपना ध्यान रखूँगी। मम्मी के हर फ़ोन में बस एक ही डर होता और साथ में नसीहतें।

डैडी कहते, "तू मेरा शेर पुत्तर है! कोई कंप्लैक्स हो, तू ख़ुद को लड़का समझ लिया करो।"

इस एडवांस देश में आकर मुझ में काफी तब्दीली आ गई। मैं सातों दिन बिज़ी रहने लगी। चार दिन कॉलेज जाती। तीन दिन बेकरी में। जो दिन घर में बैठ कर होमवर्क करने के लिए मिलता, उसे भी मैं पैसे कमाने में इस्तेमाल करने लगी। मेरे पास फुरसत नहीं थी। अक्सर ओवर-टाइम लगाती। कभी-कभी आख़िरी बस निकल जाती, तब मुझे दो मील तक चल कर आना पड़ता। मैं अकेले सड़क पर चलती। इंग्लैंड सेफ माना जाता है परन्तु बुरा वक्त कब आ धमके, क्या मालूम। जहाँ पंजाबियों की आबादी थी, मैं उस रोड पर कभी न जाती।

जहाँ मैं बैठी थी, वहाँ अब धूप बहुत तीखी हो गई थी। धूप चुभने पर, मैंने उस ओर पीठ कर ली। सोचने लगी, "गोरियाँ तो नंगे होकर सन-बाथ लेती हैं, चलो, मैं कपड़ों सहित ही ले रही हूँ।"

मुझे कॉलेज से बहुत काम मिलता। असाइनमेंट तैयार करते हुए मुझे नींद आने लगती, तब मैं रुमाल गीला करके बार-बार आँखों पर रखती। फिर भी अगर नींद न टलती तो फ़ोन पर स्पीकर, जो मैं संडे बाज़ार से दस पौंड में खरीद कर लाई थी, अटैच करके मैं यो यो हनी सिंह का कोई गाना लगा कर नाचने लगती। यदि समांथा घर पर होती, म्यूज़िक की आवाज़ सुन कर, वह भी मेरे साथ नाचने लगती। उसे पंजाबी डांस तो नहीं आता था।

वह मेरी ओर देखते हुए, स्टैप मैच करने लगती। उसकी ओर देख कर, मुझे हँसी आ जाती। कई बार वह अपने फ़ोन पर कोई इंग्लिश गीत लगा लेती। उस पर डांस करने लगती। उसकी मनपसंद गायिका ऐरीआना गरांडे थी। उसका प्रसिद्ध गीत 'नो टीयर्स लेफ्ट टू कराई। ' सुनती। मैं भी उसके स्टैप की नकल करती, उसके साथ डांस करने लगती। एक घंटे के बाद मैं चाहती, अब समांथा वहाँ से चली जाए ताकि मैं अपना असाइनमेंट पूरा कर सकूं मगर वह जाने का नाम न लेती। पिछले हफ्ते उसने अचानक मुझसे पूछा, "सेक्स को लेकर तुम्हारे समाज में अलग टैबू क्यों है? सेक्स को इतनी बड़ी चीज़ क्यों बना रखा है?"

"समांथा, यह हमारे समाज के कुछ नॉर्म्स हैं। नॉर्म्स जो समाज के पुरखों द्वारा बनाए जाते हैं।"

"सेक्स को इतनी बड़ी और विशेष चीज़ बना दिया जाता है कि नौजवानों को, विशेषकर पुरुषों में इसके प्रति क्यूरोसिटी बढ़ जाती है, जिस से क्राईम जन्म लेता है। विशेषज्ञों का कहना है कि रेप का एक कारण सेक्स की कमी भी है।"

"तुम क्या कहना चाहती हो?" मुझे उसकी बातें समझ में नहीं आ रही थी।

"पहले निर्भया रेप। फिर हैदराबाद में पशुओं की डाक्टर रैडी के साथ चार आदमियों ने रेप किया। उन्होंने उसे ज़िंदा जला दिया। छोटी बच्ची आसिफा के साथ मंदिर में रेप हुआ। उत्तर प्रदेश के उन्नाव में तेईस बरस की लड़की को आग लगा दी गई। अब गुजरात के अरावली ज़िले के गाँव सायिरा की दलित लड़की के साथ रेप करके, उसे फाँसी पर लटका दिया। जिस वृक्ष के साथ उस लड़की की लाश को लटकाया गया, उसके नीचे कोई धार्मिक ममटी थी। तुम्हारे देश में ऐसा क्यों हो रहा है?"

मैंने दोनों हाथ कानों पर रख लिए। मैं और कुछ सुनना नहीं चाहती थी। मैंने बस इतना ही कहा, "मेरी कंट्री की बहुत ख़बर है तुम्हें। ....ऐसे तो मैलबोर्न में एक इंडियन लड़की द्वारा रास्ता भूल जाने पर एक गोरे ने उसके साथ रेप किया था। ...मैं इस तरह की ख़बरें बहुत कम पढ़ती हूँ। और सुनना भी नहीं चाहती। प्लीज़ तुम मुझे और मत डराओ।"

"सॉरी जैस, मैं तो केवल इस मुद्दे को डिस्कस करना चाह रही थी। मेरा मतलब तुम्हें हर्ट करना बिल्कुल नहीं था।" कहते हुए वह अपने कमरे में चली गई।

समांथा बहुत सुंदर लड़की है। तीस बरस से कुछ ऊपर...। कंधों तक कटे हुए, भूरे बाल। पतली सी काया। उसे देख, मैं ख़ुद को मोटा महसूस करने लगती। रंग इतना गोरा कि पानी पीते समय, गले से पानी उतरता नज़र आता। भले सभी गोरों का रंग ऐसा ही होता है परन्तु समांथा उनसे कुछ अलग थी। कभी-कभी मुझे लगता कि समांथा बहुत उदास और अकेली है। वह सुस्त सी इधर-उधर डोलती प्रतीत होती। जब वह अच्छे मूड में होती तो तेज़ आवाज़ करते हुए सीढ़ियों से उतरती। मैं अंदाज़ा लगाती, वह डॉमनिक से मिलने जा रही होगी। डॉमनिक अलग रहता था। मैं विंडो से पर्दा हटा कर देखती कि कहीं डॉमनिक बाहर तो नहीं खड़ा।

एक दिन उसने बताया कि उसके माँ-बाप एक एक्सीडेंट में चल बसे थे। उस समय वह अभी यूनीवर्सिटी में ही थी। माँ-बाप के चले जाने के बाद उसे यह दुनिया अजनबी सी लगने लगी। घर का एक कमरा किराए पर था, उस से किराया आता था। ज़रूरत पड़ने पर घर के अन्य कमरे भी किराए पर दिए जा सकते थे। अभी समांथा ने दो कमरे किराए पर दे रखे हैं। जिनमें से नीचे का कमरा मेरे पास है। अकेले रहने पर समांथा ने सोचा, क्यों न दुनिया को घूम-फिर कर देखा जाए। हालाँकि उसके माँ-बाप को गए कई साल हो गए परन्तु अब भी जब उसका मन उचाट होता है, वह अपना रक्कसैक पीठ के साथ लटका कर किसी न किसी ओर चल देती है। सोशल मीडिया पर समांथा जैसे लोगों के कई ग्रुप हैं, जो दुनिया घूमते रहते हैं। समांथा कभी-कभी किसी ग्रुप के साथ भी चली जाती। जबकि उसका मानना था कि दुनिया घूमने का जो मज़ा अकेले में है, वह ग्रुप के साथ नहीं।

हम अक्सर पुरुष की धौंस के बारे में बातें करतीं। मैं उसे अपने समाज में पुरुष की महत्ता के बारे में बताती। मेरी प्रोफ़ेसर मिसेज़ खंघूड़ा कहा करती थी कि हमारे समाज में, हमेशा पुरुष की ज़रूरत रहती है। पति के रूप में या पिता के, भाई या फिर पुत्र के रूप में। अकेली औरत के लिए समाज में कोई स्थान नहीं परन्तु यहाँ समांथा अकेले ही रास्ते फलांगते घूमती थी। समांथा, मुझसे ऐसी कई बातें दिलचस्पी से सुनती। इसी तरह की एक बात मुझे एक दिन याद आई। जिसे सुनाने के लिए मैं समांथा को ढूँढ़ने लगी। वह बाथरूम से निकलते हुए मुझे मिल गई। मैंने कहा, "समांथा, आओ, आज तुम्हें अपने समाज का एक रिवाज़ बताऊँ। तुम्हारे पास टाईम है ..?"

"मैं कपड़े बदल कर आती हूँ, तब तक तुम मेरे लिए चाय बना दो। इंडियन स्टाईल।"

उसके आने तक मैंने चाय बना ली थी। उसने चाय का कप उठा कर, उसे सूँघा और कहा, "वाह, वही खुशबू !" वह इंडिया के इतने चक्कर लगा चुकी थी कि उसे देसी चाय स्वाद लगने लगी थी। वह जब भी मेरे साथ बैठती तो इसी देसी चाय की फ़रमाइश करती।

"हाँ जैस, क्या बताना चाह रही थी?"

"समांथा, तुम्हें मालूम है, हमारे समाज में कई बार जन्म लेने वाले लड़के की कमर में तड़ागी बाँधी जाती है।"

'तरैगी....क्या...?"

"यह एक डोरी होती है, जो लड़के की कमर में बाँधी जाती है। इसके द्वारा लड़के के पुरुषत्व के लिए दुआ की जाती है।"

"मतलब लड़की के नहीं बाँधी जाती।"

"नहीं।"

"मुझे मालूम है, इंडिया में शिवलिंग की पूजा के बारे में भी कुछ ऐसा ही कहा जाता है।" कहते हुए वह हँसने लगी।

मैंने कहा, "हमारा समाज ऐसा ही है। अब क्या किया जा सकता है?"

"नहीं, हमारा समाज भी पहले ऐसा ही था। बीसवीं सदी के आंरभ की तस्वीरें देखो। औरत का पूरा जिस्म ढँका होता था, सिर्फ चेहरा ही दिखाई देता था। समाज में औरत को दूसरे स्थान पर ही रखा जाता था। यह तो यूरोपीय औरत ने स्वयं लड़ कर, अपने लिए

अधिकार हासिल किए परन्तु दुनिया में अभी भी बहुत से देश ऐसे हैं, जहाँ औरत केवल बच्चे पैदा करने या पुरुष की हवस को पूरा करने का साधन मानी जाती है।"

बातें करते-करते समांथा कई बार बहुत बेशर्म बातें करने लगती। मुझे शर्म महसूस होती। एक दिन पूछने लगी, "जैस, तुमने अपनी लव-लाईफ के बारे में कभी कुछ नहीं बताया। तुम्हारा कोई ब्वाय फ्रैंड भी नहीं देखा। क्या तुम्हारे साथ लड़के नहीं पढ़ते या तुम्हें कभी अप्रोच नहीं करते?"

"बहुत लड़के साथ में पढ़ते हैं और बहुत अप्रोच भी करते रहते हैं परन्तु मैं ब्वाय फ्रैंड के चक्कर में नहीं पड़ती।"

"क्यों? तुम्हें कोई लड़का अच्छा नहीं लगता?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं। मैंने अपनी माँ से वायदा किया कि पहले अपनी पढ़ाई पूरी करूँगी। फिर किसी अन्य बात के बारे में सोचूँगी।"

"किसी लड़के के साथ रिश्ता बनाने को तुम ग़लत क्यों मानती हो? ऐसे तो तुम अपनी भीतरी औरत के साथ ज़्यादती कर रही हो। पुरुष-औरत का रिश्ता तो दोनों ओर से होता है। पुरुष को औरत की ज़रूरत होती है। औरत को पुरुष की।"

"हमारे समाज में ऐसे नहीं होता।"

"इसका मतलब तुम्हें वापस इंडिया जाना है। पी.आर नहीं चाहिए तुम्हें।"

"नहीं, मुझे तो हर हालत में पी. आर. चाहिए। मुझे यहीं सैटल होना है।"

एक दिन समांथा बाहर से आई। मेरे कमरे का दरवाज़ा खुला देख अंदर आ गई, "जैस, बिज़ी हो।"

"नहीं, रिवीज़न कर रही हूँ। आओ।"

"चाय पीने का मन हो रहा है।"

"समांथा, दूध नहीं है। रात को अँधेरा बहुत था। बाहर जाने से डर लग रहा था।"

"डर क्यों?"

"पता नहीं, किस मोड़ पर कोई सिरफिरा बैठा हो।"

"मैंने नोट किया कि तुम अच्छे मौसम में भी बाहर घूमने के लिए नहीं जाती।"

"हाँ समांथा, मुझे बहुत बहुत डर लगता है। देखो कितनी डरावनी ख़बरें आती है। पिछले वीक मेरी एक क्लासमेट ने बताया कि हमारे पाँच-सात लड़कों ने एक इललीगल लड़की को घेर रखा था। एक पंजाबी बुज़ुर्ग ने जाकर उसे छुड़ाया। यदि वह न आता तो उस बेचारी के साथ क्या होता।" मैंने उसे उस दृश्य के बारे में कुछ नहीं बताया, जो कभी-कभी मेरे सपने में सामने आ खड़ा होता, जिसमें मामा देबी बुआ राणो के साथ ज़बरदस्ती करता दिखाई देता।

"अंदर बैठ कर, इस प्रकार की बातें सोचते रहने से तुम्हारा डर बढ़ रहा है। यह डर एकदम निर्मूल है। रेप होते हैं। जब से यह दुनिया बनी है, औरत के साथ यह ज़बरदस्ती होती रही है। पुरुष की हर ज़्यादती का शिकार औरत ही बनती आई है। जब भी जंग छिड़ती है, तब भी औरत के साथ ज़बरदस्ती होती है। अरब की मंडियों में एशियाई औरत कई सदियों तक बिकती रही है। इसके बारे में तुम्हें किसी दिन डिटेल में बताऊँगी।"

मैंने नोट किया कि समांथा मेरा बहुत ध्यान रखने लगी। वह सोचती कि मैं एक खोल में रह रही हूँ। मुझे उस खोल से बाहर निकलना ही चाहिए।

"जैस, सो गई क्या?" उसने मेरे दाहिनी ओर चाय का कप रखते हुए पूछा। मैं हड़बड़ा कर उठी, जैसे किसी ग़लत स्थान पर, बेमौका सो गई हूँ।

"मुझे मालूम है, तुम्हें चाय की ज़रूरत है। इसलिए बना लाई।" उसने स्नेह भरी नज़र से मेरी ओर देखा।

मैंने चाय के लिए थैंक्स किया। उसने पूछा, "आज शाम तुम बिज़ी हो या फ्री हो।"

"यस फ्री।"

"मैंने तुम्हारा डर डॉमनिक के साथ डिस्कस किया। उसने कहा, हमें तुम्हारा डर दूर करना चाहिए।"

"मैं इतना भी नहीं डरती, जितना तुम सोच रही हो।" मैं उसके सामने कमज़ोर नहीं दिखना चाहती थी। आख़िर पंजाबी युवती हूँ।

"कोई जितना डरता है, दुनिया उसे और डराती है।"

"यह बात मेरे नानाजी भी कहते है।"

मेरे साथ पढ़ने वाली लड़कियाँ पबों-क्लबों में जाती हैं परन्तु वे वहाँ अकेली नहीं जाती थी। उनके साथ लड़के भी होते थे। मेरे साथ की बहुत सारी लड़कियों के ब्वाय फ्रैंड थे। कहती, इससे सेफ्टी रहती है। समांथा ने पब जाने की बात की। मेरे अंदर उत्सुकता जाग उठी। पब का ज़िक्र इतना सुन रखा था कि मैं इसे देखना चाहती थी कि आख़िर यह कैसा होता है। मैंने पूछा, "हमारे साथ कौन होगा?"

"कोई भी नहीं। तुम कहो तो डॉमनिक को बुला लूँ।"

"फिर मैं कबाब में हड्डी क्यों बनूँ।"

"तुम्हें यहाँ आए कितना अर्सा हो गया है?"

"नियर एबॉट टू यीरर्स।"

"तुम्हें कभी किसी ने प्रपोज़ नहीं किया?"

"कईयों ने किया।"

"फिर तुम्हारा क्या रिएक्शन रहा?"

"नो...।"

"तुम डर के मारे अपनी जवानी के दिन वेस्ट कर रही हो।"

मैंने उसकी बात का जवाब नहीं दिया।

"तुमने कभी वाईन पी है?" उसने पूछा।

"शराब- तौबा मेरे बाप की।" मेरा शरीर झुनझुना गया।

"पागल लड़की, यह शराब नहीं। यह औरतों के लिए ही बनी है, ऐसा समझ लो।"

"मगर शराबी...।"

मेरी बात सुन कर वह हँसने लगी, "यह इंग्लैंड है। यहाँ इतनी बुरी हालत नहीं है। कोई शराबी तंग भी करे तो सिक्योरिटी होती है। तुम तैयार रहना। शाम को आठ बजे चलेगी।"

"मगर मैं सिर्फ जूस पीऊँगी।"

मेरी बात सुन कर समांथा हँसने लगी। मैंने फिर पूछा, "कौन से पब में जाना है।"

"हेअर एंड हाऊंड प्रसिद्ध पब है। बैल टॉवर के पास। अच्छा माहौल होता है।"

वहाँ एक लाउंड्री में मैंने कुछ महीने काम किया था। वह जगह हमारे घर से मुश्किल से दो मील ही थी। दो बसें बदलनी पड़ती थी।

हम आठ बजे के बाद ही घर से चली।

बाहर निकली तो अँधेरा फैल चुका था। अधिक ठंड तो नहीं थी मगर मैंने ज़रा भारी कपड़े पहन रखे थे। इंग्लैंड में मौसम का कुछ पता नहीं रहता। घर के बाहर मेन रोड पर ही बस स्टाप था परन्तु समांथा वहाँ न रुकी। बाईं ओर के एक पार्क की ओर चल दी। मैं उसके पीछे-पीछे थी। इस पार्क में तो मैं डर के मारे दिन में भी यहाँ नहीं आती थी। रात के समय यह पार्क और भी डरावना लगता था। समांथा हँसते हुए कोई बात सुना रही थी। आगे नहर का पुल पार करते ही घनी झाड़ियाँ डरावनी प्रतीत होने लगी। छोटे-छोटे वृक्ष मानों भूत खड़े हो। मुझसे रहा नहीं गया, कहा, "समांथा, आई एम रीयली स्केयर्ड। ...यदि हमें कोई यहाँ झाड़ियों में ....?"

"डोंट बी सिल्ली!" उसने मुझे झिड़कते हुए कहा। जब तक हम फिर से सड़क पर नहीं आ गई, मेरे भीतर का डर बना रहा।

पब में आकर साँस में साँस आई। समांथा ने रोज़ वाईन के दो गिलास लिए। हम एक कोने वाली मेज़ पर जा बैठी। एल.सी.डी. पर सॉकर का मैच चल रहा था। पब में बैठे अधिकतर लोग मैच देख रहे थे। समांथा ने अपना गिलास ऊपर उठा कर 'चीयर्स' करते हुए कहा, "इस नई शुरुआत के नाम!" फिर अपना गिलास मेरे गिलास से टकराया। उसने रौबदार आवाज़ में कहा, "हैव ए सिप!"

मैं वाईन पीना नहीं चाहती थी। उससे कई बार जूस लेने के लिए कहा भी, मगर उसने मेरी बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसे क्या करना था....इसका फैसला वह घर से करके ही आई थी।

"लो पियो। यह कोई ज़हर नहीं।" उसने उसी रौब से कहा।

उसके कहने पर मैंने वाईन का छोटा सा घूँट भरा। उसका स्वाद तीखे सोडे जैसा लगा। मैंने दो घूँट और भरे। एक पल के लिए सिर भारी लगा, फिर ठीक हो गया।

"जैस, मैं तुम्हें जान-बूझ कर इस रास्ते से लेकर आई हूँ। तुम्हारा डर निकालने के लिए। हमारे देश में अन्य देशों समान खतरा नहीं है। खतरे-खतरे में अंतर होता है। ...रेप का खौफ़ है ही ऐसा, जिससे हर औरत दहशत से भर जाती है। सच्चाई यह है कि अधिकतर पुरुष सिर से नहीं, अपने लिंग अनुसार सोचते हैं। पुरुष चाहे अफ्रीका का हो या एशिया -यूरोप का। परन्तु सच यही है कि यह सोसाइटी हमें उतना डराती है, जितना हम डरते है। नहीं तो किसी की क्या मज़ाल कि औरत को उसकी मर्जी के ख़िलाफ़ कोई हाथ भी लगा दे।"

मैंने समांथा की ओर देखा। उसके कंधे पर झूलते कटे भूरे बाल बात करते हुए, हिल रहे थे। वह बहुत प्यारी लग रही थी। भले वह गोरी थी लेकिन मुझे लगा, जैसे मेरी कोई बड़ी बहन हो। मैंने सुना था कि गोरे हम लोगों में अधिक घुलते नहीं परन्तु समांथा अलग किस्म की लकड़ी थी। वह मुझे अटवाल के स्टोर पर कई बार मिलती। वह वहाँ अपनी किचन का सामान लेने आती। मैंने उससे कमरे के बारे में पूछा। उसने कहा,

"मैंने कभी किसी एशियाई को अपना रूम किराए पर नहीं दिया। आकर देख लो। पंसद आया तो मूव कर लेना।" वह उठ कर वाईन का एक-एक गिलास और ले आई। मेरा गिलास अभी आधे से ज़्यादा भरा था। मैं जाकर लीची के जूस का गिलास ले आई।

"समांथा, तुम इतने देशों में घूम चुकी हो। तुम में इतनी हिम्मत कहाँ से आती है?"

"यह मेरे भीतर ही है।"

"बुरे आदमियों से वास्ता नहीं पड़ा?"

"बहुत पड़ा परन्तु मैंने सँभाल लिया। आदमी बच्चे समान होता है। उसे एक खिलौना चाहिए। ...सभी आदमी बुरे भी नहीं होते। जब हम घूमते-फिरते हैं, तब बहुत कुछ 'गेन' करते है। सीखते हैं। घर में बैठे रहने से या काम से ऐसा कुछ सीखने को नहीं मिलता, जो दूसरे देशों में घूमते समय मिलता है। मुझे अधिकतर अच्छे लोग ही मिले। दो-चार को छोड़ कर। एक बार मैं यहाँ के एक ग्रुप के साथ हिमाचल प्रदेश गई। मैंने कुछ ही दिनों में सारे पहाड़ी स्थान देख लिए। सभी एक जैसे लगे। मेरे ग्रुप के अधिकतर लोग मुफ्त की कैनवेस के कारण वहाँ गए थे। मैंने उन्हें छोड़ कर दिल्ली जाने का फैसला कर लिया। शिमला पहुँच कर, दिल्ली की बस पकड़ ली। बस रास्ते में ख़राब हो गई। अब दिल्ली कैसे पहुँचा जाए? मैंने एक कार को हाथ दिया। बाईस बरस का लड़का था। वह चंडीगढ़ जा रहा था। मैंने सोचा, चलो, वही तक ही सही।

रोहित गोगना नाम था उसका। दस-बारह मील के सफर के बाद ही मैंने जान लिया कि वह बहुत इंटेलेक्चुअल है। उसने नई-नई इंग्लिश लिट्रेचर में मास्टर डिग्री की थी। उसने जॉन कीट्स और पी. बी. शैले के बारे में काफी बातें की। चंड़ीगढ़ पहुँच कर उसने कहा, "आप अगर गाँव देखना चाहते हैं तो मैं आपको अपना गाँव दिखा सकता हूँ।" तुम इंडियन क्या कहते हो- अंधा क्या माँगे दो आँखें! चंड़ीगढ़ से बीस मील पर उसका गाँव राजो माजरा था। शाम का समय था। उसकी कोठी के अगले हिस्से में उसके डैड की गोल्ड की दुकान थी। डैड गाँव का सरपंच भी था। बहुत आत्मीयता से वह मिले। रात को उसने बोतल खोल ली। फिर से अंग्रेज़ी लिट्रेचर की बातें छेड़ ली। वह जॉन मिलटन के ऐपिक 'दि पैराडाइस लॉस्ट' का फैन था। मुझे एडम और ईव के बारे में मालूम था मगर ऐपिक की थीम के बारे में नहीं। मौज में आकर वह सैटन की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगा : बैअर टू रेन इन हिल दैन सरव इन हैवन। मैंने उससे कहा, इस ऐपिक की अन्य पंक्तियाँ भी पापुलर है। उसने कहा, 'हाँ, जब शैतान को 'गार्डन ऑफ ईडन' से धक्का देकर नीचे फेंक दिया गया, तब उसने कहा, 'दियो वुई लॉस्ट दा हेवन बट नॉट दी फील्ड।' हमारी बातचीत के दौरान उसकी मम्मी कई बार आई। दो मिनट बैठी भी। फिर गोगना ने कह दिया, 'मम्मी, आप जाकर सो जाओ। जिस चीज़ की ज़रूरत होगी, मैं रसोई से ले लूँगा।' सारी रात बातों में निकल गई। उसकी मम्मी ने कई चक्कर लगाए। वह बहुत डरी-डरी सी लग रही थी। सुबह वह मुझे बस स्टैंड पर छोड़ने के लिए आया तो मैंने उससे पूछा, "मुझ जैसी सुंदर लड़की के साथ सोने के लिए तुम्हारा मन ललचाया नहीं?" उसने नज़र झुका कर जवाब दिया, 'जिस लड़की को मैं अच्छे से जानता ही नहीं, उसके साथ कैसे सो सकता हूँ?' उसका जवाब सुन कर मैं इमोशनल हो गई। कस कर उससे गले मिलते हुए मैंने कहा,

"आई एम प्राउंड ऑफ यू।"

"गोगना फिर कभी नहीं मिला?"

"नहीं।"

"तुमने कभी फ़ोन भी नहीं किया?"

"मैं कौन सी इंडियन थी, जो उससे जुड़ती।" वह कंधे हिलाती रही। मैं हैरान होती रही। उसने फिर कहा, "हैरान मत हो। मुझ जैसी एडवेंचर्स औरतों के साथ भी कई प्रकार की बातें हो जाती हैं। ऐसा मैंने रिचर्डसन एकेडमी से सीखा था।"

"रिचर्डसन एकेडमी?"

"हाँ..., यह एकेडमी सैंट्रल लंदन में है। इसके बारे में मुझे जैनिफर ने बताया था। इस एकेडमी में दुनिया भर में घूमने वाले ट्रैवलरों को विशेष ट्रेनिंग दी जाती है। दो हफ्ते की ट्रेनिंग है। इसमें बहुत कुछ सिखाया जाता है। जैसे कि किस देश में जाने पर किस प्रकार की परेशनियों का सामना करना पड़ सकता है। ट्रैवल करने के लिए थोड़ा और केवल ज़रूरी सामान ही लेकर जाना चाहिए, वगैरह-वगैरह आदि। सबसे ज़रूरी बात बताई जाती है, आपकी सेफ्टी को लेकर। कई देशों में, लूट लिए जाने, मारपीट या जान का खतरा भी हो सकता है। सबसे बड़ा खतरा औरत के लिए रेप का होता है। भले यह घटना बहुत कम घटती है परन्तु कभी भी घट सकती है। अगर तुम मेरी तरह से एडवेंचर्स बनना चाहते हो तो मानसिक तौर पर ऐसी बातों के लिए तैयार रहना चाहिए। इस ट्रेनिंग में एक सेफ्टी किट भी दी जाती है।"

"सेफ्टी किट..? इसमें क्या होता है?"

"इसमें एंटीबायोटिक दवाई, मल्हम, प्लास्टर आदि होता है।"

"समांथा, रेप के लिए तैयार रहने की बात तुम इस तरह से कर रही हो, जैसे कोई थप्पड़ खाने के तैयार रहे।"

"हमारी ट्रेनर सूज़न थी। उसने बहुत प्यार से समझाया कि ग्रुप के साथ रहो। खतरा होने पर भीड़ में घुस जाओ या किसी नज़दीकी शाप या स्टोर में। हैल्प के शोर भी मचाया जा सकता है। कई बार हालात हमारे काबू से बाहर भी हो सकते है।"

समांथा अपने ही बहाव में बहती जा रही थी। मैंने भी उसे रोकना ठीक नहीं समझा।

"यूनिवर्सिटी ख़त्म करते ही मेरे मन में दुनिया देखने का विचार बन गया। उसी समय मैंने रिचर्डसन एकेडमी ज्वाइन की। कुछ महीनों बाद मालूम हुआ कि एक ग्रुप बगदाद जा रहा है। यह उन दिनों की बात है, जब ईराक में कुछ अमन-शांति का माहौल था। सद्दाम हुसैन के खात्मे के बाद। आई.एस.आई से पहले की बात। बहुत लोग तो बर्बाद हुए बगदाद को देखना चाहते थे परन्तु मैं बगदाद का वह हिस्सा देखना चाहती थी, जहाँ औरतों की मंडी लगा करती थी। इंडिया से लाई गई औरतों की मंडी। इन्हें भेड़-बकरियों की तरह बेचा जाता था। यह सिलसिला कई सदियों से चलता आ रहा था। मैंने यह बात यूनिवर्सिटी में पढ़ी थी। मैं वह स्थान देखना चाहती थी।"

समांथा उठ कर वाईन का एक गिलास और ले आई। मैंने भी जूस का एक और गिलास ले लिया। वह फिर कहने लगी, "मैंने बगदाद पहुँच कर, उस स्थान के बारे में जानकारी हासिल की। वह चौक अभी भी पुराने बगदाद में कहीं था। एक टैक्सी ड्राईवर टूटी-फूटी इंग्लिश में कहने लगा, वह मुझे वहाँ ले जाएगा। मैं ग्रुप से अलग होकर टैक्सी वाले के साथ चल दी। कार पुराने बगदाद के मिट्टी के घरों में से गुज़रने लगी। एक खुले स्थान पर टैक्सी खड़ी करके उसने कहा, यही वह स्थान है। बहुत ही रोमांचित करने वाला सीन था। वहाँ काफी सारे लोग थे। मैंने भी वहाँ कुछ तस्वीरें ली। वापस लौटते हुए टैक्सी अचानक एक कच्चे घर के सामने रुक गई। ड्राईवर ने सीधे मेरी ओर गन की और टैक्सी से निकल कर साथ चलने के लिए कहा। मेरी तो जैसे साँस ही अटक गई। मुझे लगा, अभी गोली चली कि चली। एक कच्चे से घर के अंदर ले जाकर, उसने मुझे कपड़े उतारने का आदेश दिया। अब मेरे पास दो ही रास्ते थे। या तो गोली खाऊँ या उसकी बात मान लूँ। टैक्सी ड्राइवर ने मेरे साथ दुष्कर्म किया। यदि मैंने रिचर्डसन एकेडमी ज्वाइन न की होती तो मेरी मन:स्थिति कैसी होती! मैं अभी जीना चाहती थी। मैं इस सब के लिए पहले से ही तैयार थी।" उसने वाईन के दो-तीन घूँट भरे और मेरी ओर देखने लगी।

"फिर?"

"मैंने पुलिस के पास जाकर रिपोर्ट दर्ज़ करवाई। मालूम नहीं, वहाँ की पुलिस ने कोई कारवाई की भी या नहीं की।"

उसकी बात सुन कर मेरी टाँगें काँपने लगी। मुझे लगने लगा, बगदाद के कच्चे घर में जैसे समांथा नहीं, मैं रही हूँ।

मैंने जूस का बड़ा सा घूँट भरते हुए पूछा, "इसके बाद तुम फिर से घूमने का हौसला कैसे कर सकी?"

"मैंने बताया न कि मैं एक एंडवेंचर्स हूँ। नित्य नए तज़ुर्बे करना मेरा शौक है। आज इतना ही काफी है। कभी फिर तुम्हारी कंट्री के शहर तरनतारन के नज़दीकी गाँव और पाकिस्तान के लायलपुर के गाँव दौला चक्क के हॉरीबल अनुभव तुम्हें बताऊँगी। और सुनो, मैं तो ब्राज़ील और बोलिविया तक घूम आई हूँ, जो अत्यन्त खतरनाक देश माने जाते हैं। अब घूमना मेरे खून में रच चुका है।'

उसने मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "माई डार्लिंग, रेप एक हौव्वा ज़रूर है, परन्तु इससे इतना भी न डरो कि जीना मुश्किल हो जाए।"

पब के दूसरे हिस्से में जहाँ डांस फ्लोर था, वहाँ ज़ोर-ज़ोर से संगीत बजने लगा था। पब-क्लब में जाकर डांस करने के बारे मैं अक्सर ही सोचा करती थी। परन्तु अब इतनी बातों के बाद मेरा डांस करने का मूड नहीं रहा था। समांथा भी शायद मेरी तरह ही सोच रही थी। मैंने फ़ोन पर टाईम देखा। उसे दिखाया। वह उठ खड़ी हुई। हाथ पकड़ कर मुझे भी उठा लिया। हम पब से बाहर आ गई। पता नहीं मेरे मन में क्या आया, मैंने उसे बाँहों में भर कर, चूम लिया। सामने से सत्तासी नंबर की बस आ रही थी। उसने कहा, "जैस, भागो। बस स्टाप पर पहुँच जाए। बस कहीं निकल न जाए।"

"नहीं समांथा, पार्क में से निकल कर जाएँगे।" मैंने उसका हाथ पकड़ा, सड़क पार कर, पार्क में जा घुसी। समांथा ने मेरी ओर हैरानी से देखा, फिर मुस्करा दी।

000

ललित निबंध

त्यौहारों के लिंग

वंदना मुकेश

मोरारी बापू की हनुमान चालीसा पर यू.के. में कही कथा सुन रही थी। सत्संग के संदर्भ में उन्होंने हरिवंशराय जी बच्चन की यह पंक्तियाँ सुनाईं।

'दिन को होली रात दिवाली, रोज़ मनाए मधुशाला' बापू कह रहे थे सत्संगी के लिये रोज़ होली है, रोज़ दिवाली है। मेरा मन आजकल भक्ति साहित्य में रमा हुआ है। वैसे तो सदा ही रमा रहना चाहिए लेकिन कभी- कभी भगवत्कृपा से प्राप्त सुखों में हम ऐसे लिप्त होते हैं कि अपने जीवन के परम लक्ष्य को ही भूल जाते हैं।

मुझे मेरे पूज्य ससुर जी की भी सहज याद हो आई। वे भी कहा करते थे, बेटा जब मन में आए तभी दिवाली है। आज बापू से त्यौहार और सत्संग की बात सुन कर वही बात याद फिर आ गई। मन में होली, दिवाली, या त्यौहार, मधुशाला, सत्संग सब गड्डमड् होने लगे। हम त्यौहार क्यों मनाते हैं?

मन सहज ही विचार करने लगा कि होली, दिवाली, रक्षाबंधन आदि के लिंग क्या हैं। दरअसल, हमने हर चीज़ को बाँट रखा है। बाँट रखा है धर्म में, जाति में, समाज में, भाषा में, और लिंग आदि में।

दिवाली आती है, होली आती है, दशहरा और रक्षाबंधन आता है, लेकिन राखी आती है, रमज़ान आता है, क्रिसमस आता है और आती भी है- उभय लिंगी है। यही है हमारे समाज का वास्तव रूप। समता, ममता, प्रसन्नता, सुंदरता, बलशीलता, एकता, विविधता आदि आदि।

हर त्यौहार से जुड़े भाव भी विशिष्ट होते है, होली का हंगामा मर्दाना लगता है तो दिवाली का सजधज नई नवेली दुलहन- सी। रक्षाबंधन के उत्साह में बचपन झलकता है तो क्रिसमस रूमानी सा लगता है।

इधर यू.के. में बसे अब लगभग 20 साल होने आ रहे हैं। पहले तो भारतीय त्यौहार घर की चौखट के भीतर ही मन जाते थे। मिठाई बनाना है तो घर में बनाओ, नमकीन बनाना है तो घर में। लोग विशेष पकवान बना-बनाकर बड़े बड़े फ्रीज़र में रख लेते थे और आवश्यकतानुसार निकालते। एक अंकल- आंटी ने एक बार बताया कि उनके बेटे के विवाह में सारा खाना चार दिन तक पहले घर में सबने मिलकर बनाया और फिर वही खाना गरम कर-कर के विवाह वाले दिन परोसा।

मुझे यह भी याद है कि भारत से आते हुए मिठाइयाँ, नमकीन और घर के बने मसालों से अटैची भरी होती थी कि इंग्लैंड में कुछ आसानी से नहीं मिलता। किंतु पिछले 15 वर्षों में कुछ अभूतपूर्व, सुखद और आल्हादकारी परिवर्तन देखे। आज मिठाइयों की एक से एक दुकानें अधिकांश बड़े शहरों में हैं, तरह तरह के नमकीन मिलने लगे हैं। दिवाली, रक्षाबंधन पर टैस्को, मॉरिसन, आस्डा, सेंट्सबरी इत्यादि जैसे अंग्रेज़ी सुपरमार्केट भी भारतीय मिठाइयों राखी, दिये, पटाखों इत्यादि से भरे होते हैं। हल्दीराम के पकवानों ने तो एक क्रांति सी उत्पन्न कर दी है। इस

वंदना मुकेश
35 ब्रुकहाउस रोड, वॉलसॉल, WS 5 3AE, इंग्लैंड
मोबाइल- 44-7886777418
ईमेल- vandanamsharma@yahoo.co.uk

बार रक्षाबंधन पर हमने भारत से तिगुने भाव में घेवर खरीदे, खाये और खिलाए। खिलाने का अपना एक अलग आनंद होता है।

कभी जब मम्मी कहती थीं कि बच्चों से त्यौहार है तो शायद उसे समझने की समझ न थी किंतु जब अपने बच्चे बसेरा छोड़ कर उड़ना सीख गए, पढ़ने के लिये दूर-दूर चले गए और त्यौहार अकेले मनाने पड़े तो माँ की बात सहज समझ आ गई।

वैसे भी खाने पीने की नई-नई चीज़ों को खाने का उत्साह बच्चों में अधिक रहता है। अक्सर हर त्यौहार विशेष व्यंजनों से जुड़ा होता है। होली- दिवाली गुजिया, रक्षाबंधन पर घेवर, गणपति पर मोदक, दुर्गानवमी पर हलवा-पूड़ी चना, शरद पूर्णिमा पर खीर इत्यादि से त्यौहार त्यौहार सा लगने लगता है। इसी प्रकार इंग्लैंड में क्रिसमस पर रोस्ट टर्की का पारंपरिक भोजन परिवार के साथ बैठकर खाया जाता है।

जहाँ-जहाँ तक मानव सभ्यता फैली है, वहाँ–वहाँ तक त्यौहार संस्कृति भी पसरी है। हिंदुओं की दिवाली के आसपास अंग्रेज़ों का हैलोवीन, जो हर वर्ष 31 अक्टूबर को मनाया जाता है। उसकी कुछ मान्यताएँ दिवाली का तरह लगती हैं। हैलोवीन पर घर के बाहर रोशनी की जाती है। पटाखे इत्यादि जलाए जाते हैं, ताकि आकाश मार्ग से विचरती बुरी आत्माएँ घर के पास भी न फटकें तो दिवाली पर दीपों की पंक्ति का प्रकाश पूर्वजों का पथ प्रदर्शन करता है। भारत में अनेक भागों में दिवाली के दूसरे दिन अन्नकूट बनाकर फसल पकने का त्यौहार मनाते हैं तो यहाँ हैलोवीन के पूर्व हार्वेस्ट फेस्टिवल मनाया जाता है। इसी प्रकार, जैसे हम माता लक्ष्मी के आगमन की प्रतीक्षा में घर को सजा कर दीप जलाकर रखते हैं कि देवी हमारे घर को धन-धान्य से भर देंगी, उसी प्रकार पश्चिमी देशों में क्रिसमस की एक रात पहले, घर में क्रिसमस-ट्री के नीचे गाजर और दूध रखने की मान्यता है कि सांता क्लॉज़ जब बच्चों के उपहार लेकर आएँगे तो उन्हें भूख लगेगी और जहाँ उन्हें खाना दिखेगा वहाँ वे उपहार अवश्य देंगे।

स्पेन में फायास नामक तीन दिन का त्यौहार और उत्सव मनाया जाता है। जो मुझे गणेशोत्सव, दिवाली, होली तथा महाराष्ट्र के मंगला-गौरी का सम्मिलित रूप लगा।

फायास नामक इस त्यौहार की तैयारी लगभग छह माह पूर्व आरंभ हो जाती है। हर मोहल्ले की एक समिति बनती है, जिसका दायित्व अपने मोहल्ले को सर्वश्रेष्ठ ईनाम दिलाना है। उस मोहल्ले के चौक पर झाँकी बनाई जाती है जिसमें वहाँ के लोक जीवन से लेकर वर्तमान वैश्विक समस्याओं से संबंधित विषयों पर उत्कृष्ट प्रदर्शनी लगती है, सारा ढाँचा अधिकांशत: लकड़ी से बनता है। सारे शहर में ऐसी अनेक झाँकियाँ सजती हैं जिन्हें देखने अब दूसरे देशों से भी लोग स्पेन पहुँचते हैं। शहर के मुख्य चौक पर मदर मेरी की फूलों की एक आकाशचुंबी प्रतिमा बनाई जाती है। उसमें लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार एक फूल से लेकर कई गुलदस्ते भेंट करते हैं। मदर मेरी की प्रतिमा इन फूलों और गुलदस्तों से ही बनती है। इस प्रतिमा को बनते देखना अपने आप में एक अद्‍भुत अनुभव है। इसे ऊपर से बनाना शुरू करते हैं। नीचे से ऊपर की ओर गुलदस्ते फेंके जाते हैं जिन्हें कुशल ऊपर खड़ा व्यक्ति तत्काल लपक लेता है। रात में भी दिन–सी चहल-पहल लगी रहती है।

पर्यटकों से शहर भरा होता है। बच्चों को कंधों पर बैठाए माता-पिता परिवारों के झुंड के झुंड नज़र आते हैं। अंतिम दिन हर मोहल्ले के लोग एक बारात सी लेकर चलते हैं जिसमें सबसे आगे पारंपरिक परिधानों में बच्चे और स्त्रियाँ, फिर पुरुष होते हैं, वे एक विशेष शैली में धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं। इस झाँकी में वे अपने मोहल्ले की ओर से फूलों के बड़े- बड़े ख़ूबसूरत सज्जा वाले गुलदस्तों का चढ़ावा लेकर शहर के मुख्य चौक पर बनी माँ मेरी की प्रतिमा पर चढ़ाते हैं। यह गुलदस्ता चार-छह पुरुष अपने कंधों पर उठाए रहते हैं और उसे सारे रास्ते नीचे नहीं रखते, कोई कहार जब थक जाता है तो उसके स्थान पर दूसरा व्यक्ति लग जाता है। जैसे हमारे यहाँ जगन्नाथ पुरी की रथयात्रा में सब रथ को हाथ लगाते हैं या किसी भी भगवान् की सवारी निकलती है तो भगवान् की प्रतिमा को यात्रा के दौरान कंधों पर ही बिठा के ले जाते हैं। जब वे फूल चढ़ाकर लौटते हैं तो अनेकों की आँखें गीली और मन भरे होते हैं; क्योंकि वह मंगला-गौरी की तरह माँ मेरी की बिदाई का दिन भी होता है। बहुतों के सब्र का बाँध फूट पड़ता है और वे माँ मेरी की विदाई के दुख से रो पड़ते हैं।

उसी रात सभी मोहल्लों की उन ख़ूबसूरत झाँकियों का दहन भी होता है जैसे हमारे यहाँ भारत में होली पर होलिका-दहन होता है। आश्चर्य की बात यह है कि सब कुछ इतने व्यवस्थित तरीके से होता है कि अगले दिन कहीं कोई गंदगी नज़र नहीं आता। फायर ब्रिगेड के कर्मचारी और गाड़ियाँ हर उस स्थान पर उपस्थित रहती हैं जहाँ दहन होना होता है। तत्काल साफ़-सफाई हो जाती है। सुबह शहर फिर नहाया–धोया, साफ़ –सुथरा, सजा-सजाया मिलता है, यकीन नहीं होता कि कल तक यहाँ बहुत बड़ी झाँकी खड़ी थी, या यहाँ रात कुछ जलाया गया होगा। तीन दिन उत्सव हेतु और चौथे दिन थकान उतारने की छुट्टी से सारा स्पेन दोपहर तक सोता है।

न जाने कैसे मन अपने आप ही इन त्यौहारों में साम्य खोजने लगता है। भाव समाधि में भी पहुँच जाता है। अचानक सारे भेदभाव उसके मन से मिट जाते हैं वह भी माँ मेरी की बिदा से दुखी होने लगता है। उसे लगता है कि -फूटा कुंभ जल जलहि समाना- ही अखंड सत्य है। हम सब में एक ही तत्व है, एक ही ऊर्जा है। सब कुछ निर्मल, निर्द्वंद्व और निरापद लगने लगता है।

वास्तव में त्यौहारों के लिंग कोई भी हों, वे संसार के किसी भी कोने में, किसी भी धर्म में, किसी भी समुदाय द्वारा मनाए जाएँ, त्यौहार हमें असीम उत्साह, ऊर्जा, खुशी से आनंद भर देते हैं। मानवता की प्रेरणा देते हैं, उल्लसित करते हैं, यही त्यौहारों की सच्ची सार्थकता है। वे हमारे मन के अनछुए कोनों को छू लेते हैं, हमें उजला बना देते हैं, इसलिए हर त्यौहार के बाद हुए सूनेपन से जूझते हुए मन गा उठता है कि-

'आ लौट के आजा मेरे मीत तुझे मेरे गीत बुलाते हैं"

000

सफेदी की विशालकाय चादर पर छोटे-छोटे पैर

हंसा दीप

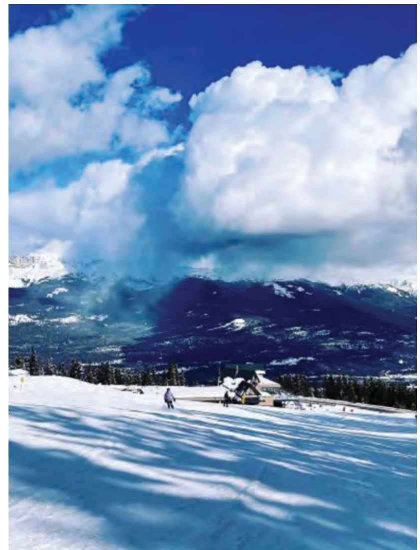

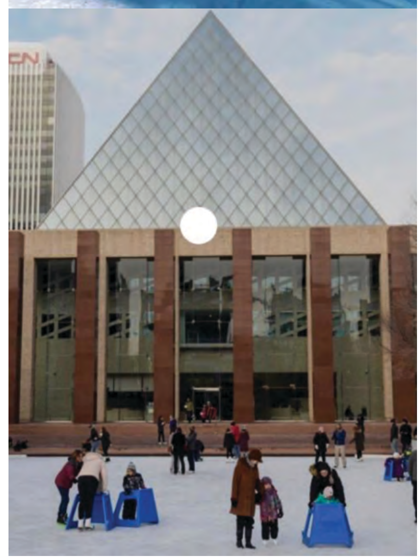

डॉ. हंसा दीप
22 फैरल एवेन्यू, नॉर्थ यॉर्क, टोरंटो
ON-M2R 1C8 कैनेडा
मोबाइल- 647-213-1817
ईमेल- hansadeep8@gmail.com

आँखों को चौंधियाती, दुग्ध-धवल, सफेदी की विशालकाय चादर बहुत बड़ी थी, उस पर चलते पैरों के निशान बहुत छोटे-छोटे। जितनी तेज़ी से ये निशान बनते, उतनी ही तेज़ी से मिट जाते। यूँ तो कैनेडा में प्रकृति तरह-तरह के रंगों में सौंदर्य बिखेरती है, किन्तु सर्दियों में यह अपना सारा ध्यान सिर्फ सफेदी पर केंद्रित करती है। मुलायम बर्फ के कणों से आच्छादित, दूधिया पत्थरों-से चमकते, विशालकाय पर्वतों के आँगन में जाकर, प्रकृति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए अदम्य साहस और प्रबल इच्छा शक्ति अति आवश्यक है। हमारे घर के छोटे-बड़े सभी बच्चे इस रोमांच का आनंद लेने के लिए बहुत

उत्साहित रहते हैं। हर साल की तरह इस साल भी सभी ने मार्च ब्रेक में इन बर्फीले पहाड़ों पर खेलने का कार्यक्रम बनाया। फर्क सिर्फ इतना था कि इस बार एलबर्टा (Alberta) प्रांत के शहर एडमंटन (Edmonton) जाकर वहाँ से जास्पर (Jasper) के पर्वतों की ओर प्रस्थान करने की योजना थी। मार्च में वहाँ शून्य से पंद्रह डिग्री नीचे तापमान था और समूचा शहर मानो सर्द-सफेद कंबल से ढँका था।

एडमंटन, शैली मौसी के घर जाना, मतलब स्कईंग, आइस स्कैटिंग, स्नो ट्यूबिंग, स्नो स्लेडिंग का असली आनंद लेने के लिए पूरी तरह से तैयार होना। ये साहसिक खेल घर के छोटे-बड़े सभी बच्चों के लिए रोमांच, साहस, आह्लाद, और चुनौतियों से भरपूर थे। ये खेल कैनेडा की पहचान भी हैं। विंटर ओलंपिक में कैनेडा के जाँबाज ऐसे कई खेलों में, कई मैडल अपने नाम करते रहे हैं।

एडमंटन, एलबर्टा प्रांत की राजधानी है जो नॉर्थ सास्केचवान नदी के किनारे बसा है। इस पूरे क्षेत्र की पहचान है "कैलगरी-एडमंटन कॉरिडोर" के रूप में। एडमंटन शहर इसके उत्तरी छोर पर बसा हुआ है। दस लाख से कुछ ही ज़्यादा आबादी वाला यह शहर अपनी कई विशिष्टताओं के कारण जाना जाता है। कैनेडा की प्रमुख तेल और प्राकृतिक गैस कंपनियों की वजह से देश की अर्थव्यवस्था के लिए इसका विशेष महत्त्व है। इसी वजह से यहाँ की आइस हॉकी की स्पोर्ट्स टीम, ऑइलर्स के नाम से मशहूर है, जो हर एडमंटेनियन के दिल में बसती है। जब भी इनका कोई मैच होता है सारा शहर मैदान पर या टीवी के सामने जमा हो जाता है।

माह जुलाई-अगस्त-सितंबर में हिल स्टेशन की तरह है यह शहर एडमंटन। यहाँ से तीन घंटे की ड्राइव पर जास्पर और बैम्फ (Banff) की पर्वत श्रृंखलाएँ प्रारंभ हो जाती हैं। गर्मियों में पहाड़ों की सैर करने के लिए पर्यटक बड़ी संख्या में यहाँ प्रति वर्ष आते हैं, वहीं सर्दियों में स्कीईंग के लिए दूर-दूर से रोमांच प्रेमी पर्यटकों के जत्थे यहाँ पहुँचते हैं। मार्च ब्रेक में साहसी कैनेडियन बच्चों के लिए यह पसंदीदा जगह है। मार्च ब्रेक यानी कैनेडियन स्कूलों में मार्च महीने में बच्चों की एक सप्ताह की छुट्टी। इन दिनों जास्पर के विशालकाय स्कीईंग केंद्र इस व्यस्ततम सप्ताह की तैयारियों में जुट जाते हैं।

एडमंटन पहुँचकर सबको दूसरे दिन ही एक बड़ी वैन से मारमॉट बेसिन (Marmot Basin) के लिए निकलना था, जो इन खेलों के लिए एक जानी-मानी जगह है। मारमॉट बेसिन, एलबर्टा के जास्पर नेशनल पार्क में

मारमॉट पर्वत पर स्थित एक अल्पाइन स्की क्षेत्र है। इसमें 3000 लंबवत फीट ड्रॉप के साथ चार पर्वतीय आकारों पर 91 स्की मार्ग हैं। पूरे क्षेत्र में सात लिफ्टों पर एक घंटे में करीब 12000 स्कीयर खिलाड़ी जा सकते हैं। यह सीज़न नवंबर के मध्य से मई के प्रारंभ तक चलता है। यह जास्पर से बीस मिनट की ड्राइव पर दक्षिण में स्थित है और सालाना दो लाख से अधिक आगंतुकों का स्वागत करता है।

बच्चों का उत्साह देखते ही बनता था। सामान्यत: किसी सफ़र के लिए सूटकेस में कपड़े जगह पाते हैं लेकिन बच्चों के मार्च ब्रेक में इनके सूटकेस हैलमेट, स्कैट्स और स्कीईंग की तैयारियों के साथ पैक हो रहे थे। साथ में बड़े लकदक जूते व भारी-भरकम जैकेट। गर्म टोपे और दस्तानों के दो-दो सेट,

ताकि कभी भी पहाड़ों पर गुम होने की स्थिति में इनका विकल्प हाज़िर रहे। चेहरे के अलावा शरीर के हर हिस्से को बंडल-अप करने में ही पंद्रह-बीस मिनट का समय लग जाता। मारमॉट बेसिन के पहले स्कीईंग दौर के लिए सभी तैयार थे। होटल में चैक-इन किए बगैर गाड़ी सीधे वहीं पहुँची। अपने-अपने प्रसाधनों के साथ सभी जैसे किसी युद्ध में जाने की तैयारी कर रहे हों। हौसलों की बुलंद भावना, प्रकृति के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की तैयारी। ऐसे क्षणों में जब सभी का उत्साह चरम पर होता, मेरी जान पर बन आती। बुरे विचार मुझे जकड़ लेते- "यह मत करो, वह मत करो।" मुझे तो अंदर ही बैठकर देखना होता मगर तब भी बाहर की चीरती ठंड के साथ मेरी नकारात्मक हिदायतें जारी रहतीं। बच्चे यह सब सुनने के आदी थे- "नानी, यहाँ स्नो का आनंद लेने आए हैं।"

स्नो का आनंद भला कौन लेता होगा! इस बात का जिक्र करते हुए मुझे कतई संकोच नहीं कि कैनेडा की सर्दियों से मैं बहुत भयभीत रहती हूँ। कपड़ों की कई परतों के बाद भी ठंडी हवाओं का प्रकोप जैसे मुझ पर ही रहता है। यहाँ पैदा हुए बच्चों में और मुझमें पीढ़ियों का अंतर था। वैसा ही जैसा हरे मैदानों और बर्फ के पहाड़ों में होता है। चार वर्षीय रिया बेख़ौफ़ होकर, लंबी स्की पहनकर, स्कीइंग पोल्स के साथ हिल से नीचे जाती, इस खेल का आनंद ले रही होती, दस वर्षीय युवी और बारह वर्षीय वानी रिया पर नज़र रखते हुए अपनी चाल तेज़-मंद रखते, उनके मम्मी-पापा भी सतत आगे-पीछे रहते, इसके बावजूद मेरा रक्तचाप बढ़ जाता। उन पलों में मैं अपनी आँखें बंद किए भगवान् का नाम ले रही होती। इन बर्फ के पहाड़ों पर अपने बच्चों, नातियों को तेज़ आवाज़ के साथ ऊपर से नीचे आते देखना मेरी साँसें रोक देता।

मुझे ऐसा लगता जैसे ये सब कुछ आत्मघाती है। वहाँ से खिलखिलाहटें सुनाई देतीं और मैं भीतर ही भीतर ख़ुद को सँभालने की कोशिश करती। शैड में बैठे हुए भी बर्फ के उड़ते कण मेरे शरीर को वैसे ही चुभते जैसे इधर-उधर से इकट्ठा हुई चिंताएँ चुभतीं।

शरीर की गर्मी बर्फ के कणों को पिघला देती मगर चिंताएँ दिमाग से टकरा-टकरा कर सामने दिख रहे बर्फीले पहाड़ में तबदील हो जातीं। न तो मौसम मेरी सुनता, न ही बच्चे। जितना मैं डरती, उतना ही सभी बच्चे सर्द मौसम का आनंद लेते। रिया गिरती- पड़ती, फिर से उठ जाती। जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

पिरामिड लेक पर होटल था। इसके पहले, जब गर्मियों में गए थे तब के दृश्य और इस दृश्य में प्रकृति की मौसमी पोशाक देखते ही बनती थी। गर्मियों में जहाँ दूर तक गहराता पानी अपने संपूर्ण वेग के साथ बहता नज़र आता, वहीं मार्च की शीत में वह एक जगह ठहरकर मानो विश्राम कर रहा था। पर्यटकों को अपने ऊपर पैरों के निशान छोड़ने के लिए सहृदय आमंत्रित करता हुआ। पिरामिड लेक जास्पर नेशनल पार्क, कैनेडा के एलबर्टा प्रांत में स्थित किडनी के आकार की झील है। यह पिरामिड पर्वत के तल पर स्थित है। ऐसा प्राकृतिक मील का पत्थर, जो जास्पर शहर को इस तरह देखता है जैसे इसकी रखवाली कर रहा हो। इसका कुल क्षेत्रफल 1.2 किमी है और 2 किमी लंबी पिरामिड क्रीक के माध्यम से अथाबास्का नदी में निकलता है। झील के किनारों पर कई पिकनिक स्थल हैं। साथ ही बोट रैंप भी हैं। सर्दियों में पिरामिड लेक पूरी तरह जम जाती है। लोग इस पर स्कैटिंग का भरपूर आनंद लेते हैं।

झील अधिक गहरी न होने से जैसे-जैसे तापमान शून्य से कई डिग्री नीचे जाता है, वैसे-वैसे यह पूरी तरह जम जाती है। और तब, लोग निर्भीकता से इस पर स्कैटिंग का आनंद उठाते हैं। मेरे मन में संदेह था कि कहीं नीचे पानी हो और स्कैटिंग करते लोग अंदर चले जाएँ तो क्या होगा? शैली ने मुझे बताया कि शैलो लेक (उथली झील) होने से इस प्रकार का कोई खतरा यहाँ नहीं होता। हाँ, नदियों में गहराई होने से यह खतरा रहता है इसीलिए पानी जम जाने के बावजूद वहाँ स्कैटिंग की अनुमति नहीं दी जाती।

पहले दिन की दो घंटों की स्कीईंग के बाद सब लोगों ने विश्राम किया और अगले दिन वहाँ से निकलने से पहले एक लंबे स्कीईंग

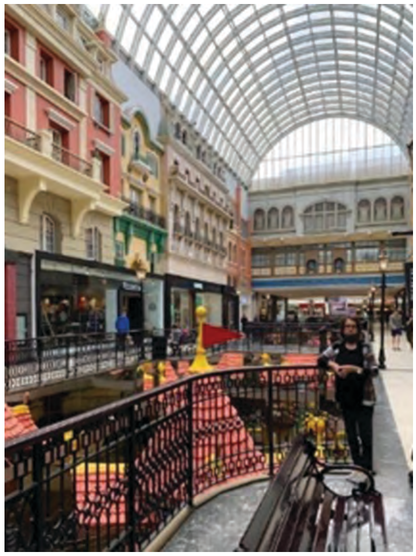

दौर के लिए फिर से सारे योद्धा तैयार थे। अब मुझे एक दिन का अनुभव था। आज कुछ शांत थी मैं, कल जैसी बेचैनी नहीं थी। आज मैंने तय किया था कि चिंता करने के बजाए मैं फोटो और वीडियो लेकर अपना समय काटती रहूँ। यह अपेक्षाकृत लंबा सत्र होने के बावजूद बच्चों के लिए बेहद संतोषजनक था। सबने जी भर कर मज़े भी लिए और अपने स्कीईंग कौशल पर नाज़ किया।

खेलने की भूख शांत हुई तो पेट की भूख ने हल्ला मचाना शुरू किया। खा-पीकर वापस एडमंटन लौटना था। यादों का खज़ाना मेरे पास था। सभी अपने-अपने फ़ोटो-वीडियो देखना चाहते थे। धीरे-धीरे रिया को झपकी आने लगी और बाकी सभी कल सुबह वेस्ट एडमंटन मॉल जाने का समय तय करने लगे। मैंने राहत की साँस ली क्योंकि इस मॉल में सब

कुछ इनडोर था। बाहर ठंड में जाने की या फिर इतना सामान साथ ले जाने की ज़रूरत नहीं थी। वॉटर पार्क के लिए सबको अपनी-अपनी स्वीमिंग ड्रेस ही रखनी थी।

वेस्ट एडमंटन मॉल, वर्ष 2004 तक दुनिया की सबसे बड़ी मॉल थी लेकिन अब नॉर्थ अमेरिका की सबसे बड़ी मॉल कही जाती है। वेस्ट एडमंटन मॉल में आठ सौ दुकानें हैं। लगभग पाँच लाख वर्ग मीटर के क्षेत्रफल के साथ, इसकी भव्य इमारत हर उम्र के व्यक्ति को अपनी ओर खींचती है। आश्चर्य नहीं कि इस शॉपिंग कॉम्प्लेक्स में विभिन्न विश्व रिकॉर्ड हैं- दुनिया की सबसे बड़ी इनडोर झील, सबसे बड़ा इनडोर मनोरंजन पार्क और दुनिया का सबसे बड़ा वेव पूल। ऊपर की मंज़िलों में होटल के कमरे हैं व नीचे की दो मंज़िलों में फैले स्टोर, मनोरंजन के कई साधन और आँखों को चौड़ा करती भव्य सजावट। बड़ों के लिए कैसिनों हाई-फाई लग्ज़री दुकानें, विशाल कैफे हैं, वहीं बच्चों के लिए मिनी गोल्फ, सी लायन, और वॉटर पार्क के साथ बोटिंग, रॉक क्लाइंबिंग, स्वीमिंग, आइस स्कैटिंग जैसी हर तरह की मनभावन सुविधाएँ हैं।

कई परिवार बच्चों सहित सुबह से आते हैं, शाम तक यहाँ रहते हैं और मॉल का पूरा लुत्फ उठाते हैं। बच्चों ने वॉटर पार्क पर धावा बोला। यहाँ लाइफ गार्ड की मौजूदगी थी। बाहर की कंपकंपाती ठंड की वजह से पानी को गुनगुना रखना एक ज़रूरी बिंदु था जिसे पार्क वालों ने सतर्कता से निभाया था। कैनेडा की कड़कड़ाती लंबी सर्दियों में हर उम्र के बच्चों के लिए शारीरिक व्यायाम का यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंदर ही खेलने-कूदने के कई विकल्प होने से सर्दियों में यहाँ बहुत ज़्याद भीड़ रहती है। मौसम की वजह से बाहर की गतिविधियाँ चाहे न हो पाएँ लेकिन यहाँ आकर अपना पूरा दिन गुज़ारना छुट्टी का अहम हिस्सा हुआ करता था।

पानी में लगभग दो घंटे बिताने के बाद लंच करके फिर से सभी ऊर्जित थे। मॉल के कई अजूबों को देखते हुए लेगो (LEGO) स्टोर ने बच्चों का ध्यान अपनी ओर खींचा।

पाँच से बारह साल तक के बच्चों की यह पहली पसंद थी। छोटे-छोटे, अलग-अलग रंगों और आकारों के टुकड़ों से बने लेगो, नई आकृतियाँ बनाने का यह खेल इन दिनों बच्चों के लिए एक बड़ा आकर्षण था। अंत में खा-पीकर, मॉल के विशालकाय क्षेत्र का कुछ ही हिस्सा देखकर, बच्चों के लिए छोटे-मोटे तोहफे खरीदकर घर वापसी हुई।

अगले दिन सुबह का नाश्ता करके एडमंटन सिटी हाल में आइस स्कैटिंग के लिए जाना था। सबने अपने-अपने स्कैट्, हैलमेट थैले में भरे और गाड़ी चल दी स्कैटिंग रिंक (Skating Rink) की ओर। ये रिंक विशेष रूप से स्कैटिंग के लिए तैयार किए जाते हैं। किसी भी चोट से बचने के लिए बर्फ को चिकना रखना ज़रूरी होता है। इनका रख-रखाव लगातार विशेषज्ञों की देखरेख में होता है ताकि बाहरी तापमान से इनकी सतह पिघलने न लगे। बर्फ की सतह को समतल रखने के लिए तापमान को माइनस 7 से माइनस 20 डिग्री सेल्सियस के बीच तक बनाए रखना ज़रूरी होता है।

सफेदी की चादर ओढ़े मैदान में स्कैटिंग करते बच्चे मेरी आँखों को सतत घुमा रहे थे। कई छोटे बच्चे सीख रहे थे। स्कैट्स पहने दौड़ते रिया और युवी मेरी आँखों को ऐसे चकरघिन्नी कर देते कि मुझे लगता मानों एक सेकंड के लिए वो मेरी निगाहों से दूर हुए तो मेरी जान ही निकल जाएगी। स्कैटिंग करते हुए ताज़ी स्नो गिरनी शुरू हो जाती तो अपना मुँह ऊपर कर गला तर करना शुरू कर देते बच्चे। एक ओर, जहाँ मैं भारी जूतों के साथ भी बर्फ में फिसल जाती हूँ, वहीं इस आइस रिंक में आइस स्केटिंग करते हुए, एक पैर पर घूमते हुए, कई करतब करते हुए युवाओं को अपनी आँखों से देखना बहुत विस्मित कर रहा था। गज़ब का संतुलन! अपने शरीर को लहराते हुए, जमी हुई बर्फ पर फिसलते पहियों के साथ, तेज़ी से एक सिरे से दूसरे पर पहुँचना, बेहद ख़ूबसूरत दृश्य था। अनायास ही इन सभी को सैल्यूट करने का मन हुआ। साथ ही, अपने आपको बहुत छोटा भी महसूस किया, पूरा जीवन निकल गया लेकिन कभी ऐसे

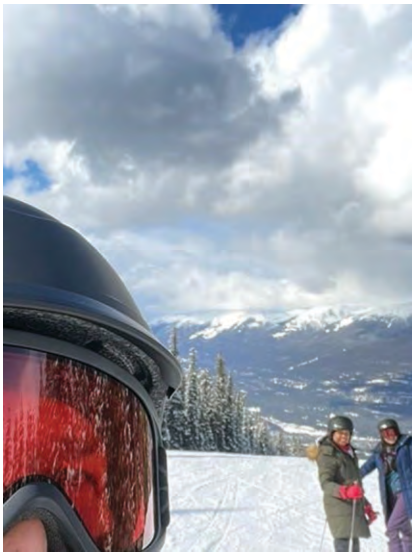

किसी काम को करना तो दूर, सोचा तक नहीं!

इसके अलावा आज के कार्यक्रमों में एक भारतीय रेस्टोरेंट गुरू में खाना खाने जाना था। यह अपनी विशिष्ट व्यंजनों की सूची के लिए जाना जाता था। हर बार कुछ नई पेशकश ज़रूर होती। नए व्यंजनों के स्वाद के साथ पिछली बार के "टेस्ट ऑफ एडमंटन" मेले की याद आ गई, जहाँ न जाने कितनी तरह की स्वादिष्ट, नई और बेहतरीन तरीके से प्लेट में सजाई गई डिशेज़ का आनंद लिया था। अगले दिन एडमंटन स्की क्लब में बर्फ के खेलों का एक और दिन था जब स्नो ट्यूबिंग और स्लेडिंग दोनों के लिए बच्चों में ख़ूब उत्साह था।

Snow Sledding / Sledging / Sleighing, स्लेडिंग / स्लेजिंग, नॉर्थ अमेरिकन अंग्रेज़ी में इसे स्लेडिंग और ब्रिटिश

अंग्रेज़ी में इसे दो अलग-अलग स्पेलिंग के साथ स्लेजिंग कहा जाता है। यही वजह है कि हिन्दी में स्लेजिंग का प्रयोग होता है। स्नो ट्यूबिंग के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले ट्यूब मज़बूत विनाइल सामग्री से बने होते हैं। कार के ट्यूब जैसे गोल और फुलाए हुए और फिसलने वाले, जो आमतौर पर बहुत हल्के होते हैं। दूसरी ओर, स्लेज कई प्रकार के आकार और शैलियों में आते हैं, लेकिन थोड़े भारी होते हैं। स्नो ट्यूब और स्लेज दोनों के अपने फायदे और नुकसान हैं, लेकिन दोनों गारंटी से एक अविस्मरणीय याद छोड़ जाते हैं।

बचपन में हिमालय के बारे में पढ़ा था, कभी गए नहीं। बर्फ में चलने वाली स्लेज गाड़ी के बारे में भी पढ़ा था, लेकिन कभी उस पर बैठकर फिसले नहीं। अब इन्हीं पहाड़ों के बीच रहते हुए वे किताबों की लकीरें अच्छी लगतीं मगर यह हकीकत सिहरन भर देती। बच्चों, विनी-नैव, सचिन-शैली की साहसी सोच ने यात्रा के इस आख़िरी दिन तक मुझे भी चिंताओं से राहत दिलाई थी। वानी, युवी, और रिया बड़े-बड़े स्नो स्लेड, ट्यूब पर कई बार अपने मम्मी-पापा के साथ, और कई बार अकेले ऊपर से नीचे फिसलते आते, और रास्तों की बर्फ में अपने हाथ भी चला लेते। रोमांच से भरपूर ये दृश्य भूख, प्यास, पी, पू और थकान, किसी को हावी नहीं होने देते।

चार दिन की यह यात्रा मेरे लिए डर, चिंता, और गर्व जैसे विविध भावों से भरी हुई थी वहीं बच्चों के लिए साहस, रोमांच और शौर्य से ओत-प्रोत थी। कड़कड़ाती ठंड में सभी अपनों को बर्फ के पहाड़ों पर देखने में कितना धैर्य चाहिए, इसका जवाब देने में मेरे शब्द भी पीछे हट जाते हैं। शैली ने हमें एयरपोर्ट तक छोड़ा। वापस लौटते हुए लग रहा था जैसे बहुत कुछ पीछे छोड़कर जा रहे हों। उड़ान से बर्फीले पहाड़ों को अलविदा कहते हुए यात्रा का हर पल आँखों से गुज़र रहा था। खिड़की से बाहर, पीछे छूटती बर्फीली वादियाँ आँखों से ओझल होते हुए मुस्करा रही थीं।

000

व्यंग्य

कीर्तिशेष महाकवि मौजानन्द

पूरन सरमा

पूरन सरमा
124/61-62, अग्रवाल फार्म, मानसरोवर,
जयपुर- 302 020
मोबाइल- 9828024500
ईमेल- pooransarma@gmail.com

मौजानन्दी जी महाकवि को आज कौन नहीं जानता। साहित्य की गोष्ठी हो या कविता पाठ का कार्यक्रम, मौजानन्द जी अपनी-अपनी मौज में गुल-गुल गाते मिल जाएँगे। कम समय में ही उन्होंने जो ख्याति पाई है, वह बिरलों के भाग्य में ही होती है। साठ साल की आयु से शुरू हुआ लेखन अल्पसमय में ही परिपक्व हो गया है। लोग उन्हें अब तो महाकवि की उपाधि भी मानद् रूप से प्रदान कर चुके हैं। घुटनों तक लंबे मौजे पहनकर जब वे साहित्य की चर्चा करते हैं तो लोगों के हाथों के तोते उड़ जाते हैं। उनकी धीर गम्भीर मुद्रा में साहित्य खिलता भी ख़ूब है। कविता उनकी रग-रग में रच-बस गई है। सब कुछ ठीक है लेकिन एक रंज मुझे उनका पड़ौसी होने का जीवन भर सालता रहेगा। काश ! मैं उनके ठीक सामने वाले मकान में नहीं रहा होता, लेकिन मकान मेरा पुश्तैनी है और उसे मैं छोड़ भी नहीं सकता। यदि मैं थोड़ा भी सक्षम होता तो सबसे पहले अपना नया मकान उनके निवास से बीस किलोमीटर की दूरी पर बनवाता, लेकिन होनी बलवान होती है और उसे टालना आदमी के वश की बात भी नहीं है। महाकवि मौजानन्द कोई बुरे आदमी नहीं हैं, बस वे कवि हैं-यही त्रासद है। इधर लिखते हैं और उधर प्रबुद्ध श्रोता के रूप में वे मुझे पाते हैं और एक अनवरत सिलसिला चलता है-लेकिन इससे निजात पाने का कोई मार्ग नहीं सूझता। आख़िर एक दिन मैंने उनसे कहा-

'मौजानन्द जी आप बहुत अच्छा लिख रहे हैं ?'

वे मेरी पूरी बात सुनते इससे पहले ही बोले-'तो सुनो मेरी एक ताज़ा कविता। ' मैंने सिर पकड़कर कविता को सुना और कविता की समाप्ति पर बोला-'अब मेरी सुनिए ! मैं यह कह रहा था कि आप अच्छा लिख रहे हैं तो किसी पुरस्कार के लिए ट्राई क्यों नहीं करते ?' वे मेरी मूर्खता पर हँसे और बोले-'क्या होता है पुरस्कार से ! जनता की मान्यता ही रचनाकार की उपलब्धि होती है। आपको मेरी कविताएँ भाती हैं, यह मेरे लिए पुरस्कार से कम नहीं है।' उनकी बात सुनकर मैं रुआँसा हो गया और बोला-'देखिये मौजानन्द जी, अब आप किसी और को तलाशिए। कविता के बारे में मैं इतना जानता भी नहीं।' वे बोले-'नहीं जानते तो जानो शर्मा। कविता एक अनुष्ठान है। तुम्हें कविता को मज़ाक में नहीं लेना चाहिए।'

मैंने अपने गुस्से को अन्दर आत्मसात् किया और बोला-'वैसे कविता से लाभ क्या-क्या हैं ?' वे बोले-'बहुत अच्छा प्रश्न है तुम्हारा। कविता के क्या-क्या लाभ बताऊँ तुम्हें। कविता के लाभ अनेक हैं।'

'सबसे पहला लाभ तो यह है कि इसकी वजह से मेरे और तुम्हारे मध्य एक आपसी समझ और सद्भाव का वातावरण बना हुआ है।'

मैंने कहा-'लेकिन यह कब तक बना रह सकता है, दरअसल मैं घुट गया हूँ महाकवि। मेरी मजबूरी को समझो और मुझ पर दया करो। मैं कविता से परेशान हो गया हूँ।'

'तुम्हारे परेशान होने से कविता का नुकसान होता है। तुम्हें अपनी सदाशयता और सहजता को नहीं त्यागना चाहिए।' उन्होंने अपने घुटनों से नीचे सरके मौजों को ऊपर खींचा और बोले-'शर्मा भाई, तुम्हारी बेचैनी मैं अच्छी तरह समझता हूँ, लेकिन मैं भी क्या करूँ ? इधर कविता जन्म लेती है और उधर तुम्हारे अलावा मुझे कोई सीधा-सादा आदमी दिखाई नहीं देता। तुम्हारे कारण मेरी कविता को जो ऊँचाई मिली है उसका ज़िक्र हिन्दी साहित्य में अवश्य होगा। मेरी कविताएँ भले मर जाएँ लेकिन तुम मरकर भी ज़िंदा रहोगे। तुम अपना प्रेम भाव यथावत् बनाए रखो।' यह कहते हुए मौजानन्द की आँखों में गहन याचना उभर आई थी। मौजानन्द का जानलेवा हमला बर्दाश्त करने के अलावा उस समय और कोई चारा भी न था।

समय बीतता गया। मौजानन्द महाकवि बीमार रहने लगे। बिस्तर में पड़े हुए भी वे मेरी रट लगाये रहते। मैं प्रसन्न था कि उनके बुलाने पर जाऊँ तो जाऊँ वरना नहीं भी जाऊँ। शनैः शनैः मौजानन्द को कफ-खाँसी ने ऐसा जकड़ा कि वे खाँसते-खाँसते भी कविता की उल्टी कर देते। बीमारी से बुरी तरह परेशान एक दिन लाठी टेकते हुए मेरे घर आ धमके और बोले-'शर्मा तुम तो आए नहीं, मैं ही आ गया।' मैंने उन्हें गौर से देखा तो ऐसा लगा जैसे यमराज का कोई दूत सामने खड़ा हो और कह रहा है-चलो, मेरे साथ चलो। मुझे एक क्षण बेहोशी-सी आई लेकिन मैंने अपने आपको सँभाला और कहा-'अच्छा किया आपने कविता लिखना बंद कर दिया।' उनके चेहरे पर हल्की-सी हँसी की रेखा उभरी, जेब में हाथ गया, मुड़ा-तुड़ा कागज़ बाहर आया और वे बोले-'शर्मा कविता लिखना मेरे लिए ज़रूरी है। जिस दिन में इसे छोड़ दूँगा, उस दिन यह नश्वर काया भी नहीं रहेगी।' एक बार तो इच्छा हुई कि उनसे तब तो कह दूँ कि आप ज़रूर छोड़ दें कविता, लेकिन उम्र का लिहाज़ कर मैंने कविता को भुगतना स्वीकार किया। उनकी वह कविता क्या थी, यह तो मैं नहीं जानता, क्योंकि मैं लगातार उनसे मुक्ति का मार्ग निकालने की उक्ति सोचता रहा था।

मौजानन्द महाकवि को मज़ा नहीं आया, उसने फिर पाँवों के मौजे खींचे और कहा-'देखो, इन मौजों को देखो। इन्होंने आज तक मेरा साथ नहीं छोड़ा है।' मैं बोला-'मैंने समंदर की मौजें देखी हैं लेकिन आपके मौजों को अच्छी तरह से नहीं देखा है। आप कब से नहीं धो पाए हैं इन्हें ?'

मौजानन्द जी की आँखों से चिंगारियाँ निकलने लगी और बोले-'शर्मा, तुम एकदम अज्ञानी हो, साहित्य में प्रतीक को नहीं समझते। ये साहित्य के मौजे हैं जिन्हें मैंने दोनों पाँवों में पहन रखा है। मैंने साहित्य को ओढ़ा, बिछाया और गहराई से जीया है। ये मौजे मेरे जीवन की गति हैं और कविता के प्राण हैं। इन्हें धोने का मतलब ख़ुद को धो लेने के समान होगा।'

मैंने मौजानन्द जी को उठाया और घर की ओर ले जाकर कहा-'जाइए, आराम फरमाएँ। कविता स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है। हो सके तो गर्म चाय पीकर पसीना ले मारिए।' महाकवि को बुरा तो लगा लेकिन वे अनमने भाव से गृह-प्रवेश कर गए।

वे सर्दी के दिन थे। भीषण ठण्डी रातें और निरन्तर ठंड के कारण महाकवि कविता से नाता नहीं रख पाए और एक दिन वे मुझे अकेला छोड़कर परमधाम को चले गए। आज सोचता हूँ तो लगता है कि ग़लती पर मैं ही था। उन्होंने क्या बिगाड़ा था मेरा। कविता सुनाकर अपनी संतुष्टि पा लते थे। अब कौन सुनाएगा कविता ? अभी भी उनके लंबे मौजे अलगनी पर लटके सूख रहे हैं। शायद उन्हें धो दिया गया है। मेरी इच्छा हुई कि इन मौजों को क्यों नहीं मैं ही पहन लूँ ? वे धुल चुके हैं और ठंड की मार बहुत तेज़ है। तभी मौजानन्द की आत्मा ने मुझे ललकारा-'ख़बरदार जो मेरे मौजों को हाथ लगाया तो।' मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई और मैं कमरे में रजाई ओढ़ कर सो गया।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

व्यंग्य

झूठ बुलवाए रे जो मशीनवा मोबाइलवा की

पूजा गुप्ता

पूजा गुप्ता
गणेश गंज, आदर्श स्कूल के पास,
मिर्ज़ापुर (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल- 7007224126
ईमेल- guptaabhinandan57@gmail.com

मोबाइल के अविष्कार से एक बात तो ज़रूर है कि हज़ारों सुविधाओं के साथ एक विशेष सुविधा यह हुई है कि झूठ बोलने वालों की दिक़्क़तें कम हो गई है; लेकिन मोबाइल से झूठ बोलने वालों के कान खड़े होना स्वाभाविक है। मज़ा तो तब आता है जब सामने वाला झूठ बोल रहा हो और उसका झूठ पकड़ा जाए।

मुझे पक्का यकीन है जिसने भी यह मोबाइल बनाया है वह इस दुखदाई मोबाइल के चक्कर में अवश्य फँसा होगा तभी जाकर उसने ऐसे यंत्र को बेखटके से बनाया; जिससे आसानी से झूठ बोला जा सके। झूठ की ट्रेनिंग देने में फ़ोन का जो योगदान है उसे भुलाया नहीं जा सकता है। वह झूठ बोलने वाले को पकड़ लेती है। फ़ोन पर झूठ बोलने में सिर्फ वाणी की साधना करनी पड़ती है और टारगेट ऐसा होना चाहिए कि जब आप झूठ बोलते हो तो पसीना ना आए, आँखें न झुकें! ऑन द स्पॉट झूठ बोलना बहुत मुश्किल है। ज़रा भी कहीं होमवर्क में कमी रह जाए तो पूरा खेल ख़राब हो जाता है; इसलिए झूठ के प्रशिक्षु शुरू में फ़ोन पर प्रेक्टिस करके अपना आत्मविश्वास पुख्ता कर सकते हैं किसी भी कला में शुरूआती दौर में झूठ बोलने में आत्मविश्वास डगमगाता है तो बंदा कभी भी प्रखर झूठा नहीं बन सकता है इसके लिए बड़ी साधना करनी पड़ती है तब जाकर के झूठा का खिताब मिलता है। यदि आमने-सामने से बोला वह झूठ झमाझम जम जाए तो फिर झूठ को आगे बढ़ा कर नेतागिरी तक करने का मामला जमाया जा सकता है। एक सज्जन ऐसे थे जो तीन महीने से लगातार मुझे मोबाइल पर नहीं मिल रहे थे।

मैंने झूठ बोलने वाले से पूछा कि - "साहब आजकल दिखाई नहीं देते! कहीं ऊपर वूपर तो नहीं चले गए! अगर मर गए हैं तो बहुत बुरा हुआ होगा; क्योंकि मेरे पास उन्हें देने के लिए बीस लाख थे जो उनके मित्र ने उनके लिए दिए थे पर अब क्या? अब तो वह रहे नहीं चलो जी उनकी आत्मा को शांति पहुँचे!" और फिर क्या होता है अगले ही मिनट साहब ज़िंदा होकर फ़ोन पर आ जाते हैं पूछने लगते हैं-" कहाँ है बीस लाख रुपए?" फिर मैंने उसे डाँटा-" बदमाश हमारे लिए समय नहीं है! और बीस लाख के लिए समय है! " मैंने इस बात के लिए उसे नहीं डाँटा कि वह झूठ बोलते हैं क्योंकि झूठ तो इधर हर कार्य का आदमी बोलता है। मैंने इस बात के लिए उन्हें डाँटा कि झूठ को नॉन -प्रोफेशनल तरीके से क्यों बोल रहे हैं और बुलाते हैं। फिर मैंने उन्हें तरीके से झूठ बोलने के तरीके सुझाए।

कुछ महिलाएँ तो दिन भर के कामकाज से फुर्सत होकर सास बहू साज़िश करने में लगी रहती हैं। एक दूसरे की दिनभर की चाँय-चाँय में अपने अंदर के बवाल को बाहर निकालने के लिए मोबाइल का सहारा लेकर बैठ जाती हैं, शुरू हो जाती है पति की काँय-काँय से लेकर सास

ननंद इन सब की बुराई लेकर और इतनी बुराई बोलती हैं, सच्ची झूठी लगाकर कि सामने वाला भी उसे सही समझने लगता है। मज़ा तो तब आता है जब इनकी फ़ोन पर की गई बातें सामने वाला व्यक्ति रिकॉर्ड कर लेता है। पर इस झूठ की कलाकारी को बड़े ध्यान से सुनने पर बाद में पता चलता है कि वह कितना बड़ा झूठा या झूठी थी। झूठ बोलना आसान नहीं होता है "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान" यानी इस किस्म का झूठ बोलने के लिए साहब या मैडम के प्रियजनों, कारिंदों को बहुत साधना करनी पड़ती है। उन्हें अंदाज़ लगाना पड़ता है कि उधर वाला फ़ोन पर टालने योग्य है या घास डालने योग्य। यह ताड़ना पड़ता है कि उधर वाला बंदा कुछ काम कराने के चक्कर में है या उससे कोई काम निकल सकता है। वह अपना जुगाड़ लगाने के चक्कर में है या उससे कोई जुगाड़ लग सकता है। सामने वाला व्यक्ति आपको कितना देर चाट सकता है और चाटे जाने के मूड में है कि नहीं! आजकल घर में रहने वाले नौकर चाकर ही मालिकों के द्वारा सुझाए गए आदेश का पालन करते हैं और बड़ी आसानी से झूठ बोलते है कि मालिक घर पर नहीं है। पता चलता है मालिक तो घर में बैठकर पत्नी के साथ गपशप कर रहे हैं और लजीज व्यंजनों का स्वाद ले रहे हैं।

सबसे मज़े की बात तो यह है कि छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में आजकल जो मोबाइलवा आ गया है तो उससे यह स्कूल में फ़ोन लगा देते हैं और प्रिंसिपल साहब की तरफ बहाना शुरू कर देते हैं। आवाज़ बदल-बदल कर और पेट में दर्द, बुखार इत्यादि का बहाना ऐसे करते हैं कि प्रिंसिपल साहब इमोशनल होकर आराम करने की सलाह दे देते हैं।

किसी को धमकाना हो किसी से बात मनवानी हो तो यह मोबाइलबा बड़ा हमदर्द नज़ आता है। झूठ पर झूठ बोलने वाले साधकों को यह समझ लेना चाहिए कि उधर से बोलने वाले भी स्मार्ट होते हैं उनसे पार पाना भी कई बार आसान नहीं होता है। मैं ऐसे कई महानुभावों को झेल चुकी हूँ जो अपना अमीर होने का रुतबा झाड़ते रहते हैं पर रहते एक ही लुंगी में है; लेकिन फ़ोन पर ऐसे बॉस बने फिरते हैं जैसे कहीं के सूबेदार हो! असलियत तो तब पता चलती है जब उनके घर जाओ तो वह सब्ज़ी काटते नज़र आते हैं फिर यह मोबाइलवा उनकी पोल खोल देता है। यह भाँति-भाँति के झूठ बोलने वाले लोगों से दुनियाँ भरी पड़ी है। घंटों तक चिपकी रहती वह महिलाएँ पति पुराण से लेकर सास-बहू पुराण तक एक दूसरे को झेलती है और अपनी इमेज बनाने के लिए सत्तर प्रकार के झूठ बोलती हैं। इस बात से तो यही साबित होता है कि झूठ बोलने के लिए सभी प्रकार के झूठ बोलने के बिंदुओं का ख़याल रखना चाहिए। यह मोबाइलवा जब से आया है तब से झूठ का बोलबाला हर जगह नज़र आया है और मोबाइलवा पर झूठ बोल कर अपने स्टेटस को लोग बढ़ा रहे हैं। फंडा यह है कि मोबाइलवा पर झूठ से अपने स्टेटस में बढ़ोत्तरी करके यह अपना रुतबा बनाए रखते हैं पर इस पर कोई ध्यान नहीं देता है कि मोबाइलवा पर झूठ बोलते समय उधर से फ़ोन वाले की स्थिति का भली -भाँति अंदाज़ होना चाहिए, अगर उधर भी मोबाइलधारी है और वह भी झूठ में उतना ही एक्सपर्ट है तो बहुत मारक स्थितियाँ पैदा हो जाती है। ऐसा ही एक मेरे मित्र ने मेरे साथ किया था और यह कहा कि- "आज मेरी मीटिंग कंगना राणावत के साथ है और उसके साथ मैं कुछ ज़रूरी डिस्कस कर रहा हूँ!" और मैं हँसकर बोली- "हाऊ! यह तो पॉसिबल नहीं है क्योंकि इस समय तो कंगना राणावत के साथ घर पर तो मैं हूँ फिल्म की शूटिंग के लिए बातचीत चल रही है!" फिर मुझे पता लगा कि वह मोबाइलधारी मित्र मेरे पीछे ही बैठकर थोड़ी दूरी पर एक नदी के किनारे कोने में छिप कर बात कर रहा था, जहाँ मैं बैठी हुई थी। वही नदी के दूसरी ओर के मुहाने से छुप कर मैं भी बतिया रही थी। तो फंडा यह निकला कि मोबाइल पर ऐसे स्टेटसवर्धक झूठ बोलने से पहले आसपास देख लेना चाहिए कि क्या पता अगला भी कंगना राणावत के साथ बैठा हो।

000

ग़ज़ल

दो ग़ज़लें

सतपाल ख़याल

अम्माँ की आसीस पिता की झिड़की लेकर आया हूँ
मैं थोड़ी सी नीम, ज़रा सी, तुलसी लेकर आया हूँ
अपने ज़िंदा होने की तस्दीक़ करानी है मुझको
पेंशन के दफ़्तर से मैं ये चिट्ठी लेकर आया हूँ
भूख-ग़रीबी, बेकारी की बता नहीं छेड़ूँगा मैं
सरकारी अख़बार से ख़बरें अच्छी लेकर आया हूँ
क्या बोलूँ मैं, मेरी मुहब्बत, मेरी कहानी कैसी है
जो काँटों पर बैठी थी वो तितली लेकर आया हूँ
पत्थर के इस शह्र में मुझको याद आती थी खेतों की
मैं अपने गाँवों से थोड़ी मिट्टी लेकर आया हूँ
आज ख़याल बुढ़ापे में जब बेटा मुझको छोड़ गया
मैं अपने गुज़रे बापू की लाठी लेकर आया हूँ

000

यहाँ मुश्किल है अब मेरा गुज़ारा, अब मैं चलता हूँ
समझ में आ गया है खेल सारा, अब मैं चलता हूँ
ख़यालों के किसी जंगल में यादों का कोई लश्कर
किसी इक याद ने मुझको पुकारा अब मैं चलता हूँ
ये धारे, कश्तियाँ, माँझी, समन्दर याद रखूंगा
नज़र आने लगा मुझको किनारा, अब मैं चलता हूँ
बदन को ओढ़कर जीता रहा बरसों बरस तक मैं
ये चोला था पुराना सो उतारा, अब मैं चलता हूँ
मिला तू सबसे हँसके अपनी महफ़िल में सिवा मेरे
समझ में आ गया तेरा इशारा, अब मैं चलता हूँ
कहाँ से हूँ, कहाँ का हूँ, कहाँ पे आके बैठा हूँ
गिरा है फ़र्श पर अर्शों का तारा, अब मैं चलता हूँ
ख़याल अब ऊब सी है दिल में घर में और दफ़्तर में
बहुत अरसा घुटन सी में गुज़ारा, अब मैं चलता हूँ

000

सतपाल ख़याल,
मकान नंबर -231, फेज -2, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, जिला -सोलन, हिमाचल प्रदेश -173205
मोबाइल- 9816677675

संस्मरण

कैसे -कैसे लोग

कादम्बरी मेहरा

मेहंदी हसन की एक ग़ज़ल मुझको अक्सर याद आती है- "कैसे-कैसे लोग हमारे जी को जलाने आ जाते हैं।" कितने ही घाव इंसान को दिल पर खाने पड़ते हैं। मगर यह संस्मरण मेरे दिल के घाव का नहीं वरन् भारत राष्ट्र पर लगे नासूर का खुलासा है।

बात सन 1998 की है। तब इंदिरा गाँधी हवाई अड्डे का आधुनिक टर्मिनल 3 नहीं बना था। विदेश से आने वाली सभी उड़ानें एक ही बैरियर पर अपने पासपोर्ट आदि की चेकिंग करवाती थीं। कार्यकर्त्ता चूँकि हाथ से ही सब कुछ लिखते-पढ़ते थे, उनकी गति आज के जैसी सुव्यवस्थित नहीं थी। न ही उन पर समुचित निगरानी थी, न उनकी भाषा आदि मर्यादित होती थी।

मेरे पति एवं पुत्र, दोनों क्रिसमस की छुट्टियों में भारत गए हुए थे। मैं अकेली अपनी बड़ी बेटी के साथ लंदन में थी। जाने के दो हफ्ते बाद मुझको फ़ोन पर बताया पतिदेव ने कि मेरे बेटे को एक लड़की पसंद आ गई है और उसकी माँ हाँ नहीं कर रही हैं जब तक वह मुझसे न मिल लें। अत: मुझको भारत जाना होगा। बड़ी कठिनाई से दिसंबर में भारत की टिकट मिली वह भी एक व्यक्तिगत चार्टर्ड फ्लाइट में। पंजाबी निरंकारी सम्प्रदाय के एक समूह ने यह जहाज़ अपने लिए आरक्षित किया था। उसी में जो सीटें खाली थीं उस पर अन्य इमरजेंसी वाले कुछ यात्री बैठा दिए गए थे। मेरे पास वाली सीट पर एक लंदन का ही जोड़ा बैठा था जो मेरे शहर ही जाने वाला था। अत:उनसे बातचीत चल पड़ी। नईम साहब भी खुश हुए। उनकी पत्नी रशीदा बातचीत में भली थीं।

दिल्ली एयरपोर्ट पर हमारे जहाज़ के लोग जहाँ कम लोग क्यू में खड़े थे वहीं घुस लिए। नईम साब और उनकी पत्नी मेरे आगे थीं। उनके बाद दो चार और, फिर मैं, और मेरे बाद एक गोरी लड़की जो किसी और उड़ान से थी। गोरी कम उम्र की पर्यटक लगती थी। ख़ैर ! करीब आधे घंटे बाद मेरी बारी आई तो चेकिंग करने वाला गुर्जरी भाषा में अपने संगी को कुछ कहकर डेस्क के ऊपर से कूदा और शायद एक और पान का बीड़ा मुख में दबाकर वापिस लौटा। क्यू पर नज़र डाली तो उसे गोरी दिखाई दी। वह झटपट मुझे अनदेखा करके उसकी तरफ अपना हाथ बढ़ाकर उसके कागज़ माँगने लगा तो गोरी ने शालीनता से मुझे पहले जाने के लिए कहा। वह आदमी चालीस का ज़रूर रहा होगा यह बिलकुल अच्छा नहीं लगा मगर गोरी थी तो करता भी क्या ! मेरे पासपोर्ट पर सरसरी नज़र डालकर ठप्पा लगाया और कहा जाइए। बाहर आकर सामान आदि उठाया। घरवालों को ढूँढ़ा। रात के तीन बज चुके थे। दिसंबर के कोहरे में दस मील की रफ़्तार से आगे वाले ट्रक की लाल बत्ती का पीछा करते हुए राम-राम करके घर पहुँचे।

शुभ कार्य था। राजी ख़ुशी शगुन भी हो गया। अब वीसा आदि करवाना था। बहू के पिता नहीं थे। पासपोर्ट भी नहीं बना था। मेरा बेटा सरकारी नौकरी में था। हमारे पास समय कम था। रजिस्टर्ड शादी के लिए एक महीने की पूर्वसूचना देनी थी। पर तभी किसी ने बताया कि गाज़ियाबाद में केवल हफ्ते भर की सूचना देनी होती है। अत: बेटे और बहू को टैक्सी से भेज दिया कि फॉर्म आदि ले आओ। वहाँ के अधिकारी ने उनको कुछ देर बाहर बैठने को कहा। नाम आदि लिखवाकर वह बाहर एक लकड़ी की बेंच पर जा बैठे। कुछ देर बाद एक अधिकारी आया और बधाई देता हुआ बोला जाइए मज़ा कीजिये। आपकी शादी हो गई। और उनको शादी का सर्टिफिकेट पकड़ा दिया।

दोनों सकते में ! पर बेटे ने सारे कागज़ ध्यान से पढ़े। और ख़ुशी-ख़ुशी दोनों घर आ गए। इसके छह दिन बाद हमें वापिस लंदन जाना था। मेरी वापसी की टिकट तो थी मगर सीट या फ़्लाइट आदि तय नहीं था। उसके लिए मुझको वहीं से इंतज़ाम करना था। पतिदेव और पुत्र

कादम्बरी मेहरा
35 द एवेन्यू, कीम, सुर्रे, SM 27 QAUK
मोबाइल- 447424736819
ईमेल- kadamehra@googlemail.com

अपने समय से वापिस गए मगर मुझे अपने मायके माँ से मिलने जाना था। वह बीमार चल रही थीं। अत: जाते समय उन्होंने मेरी एक महीने बाद की टिकट बुक करवा दी। ब्रिटिश एयरवेज से मुझको फरवरी के मध्य की सीट मिली। उन लोगों के जाने के बाद मुझको लखनऊ की टिकट लेनी थी। मेरी ननद, जिसके घर मैं ठहरी थी, मुझको घर पर अकेली छोड़कर अपनी बेटी के घर चली गई। मुझे लगा कोई काम होगा। पराये घर। नौकर सुबह का खाना आदि बनाकर ग्यारह बजे अपनी नौकरी पर चला जाता था। अगले दिन भी कुछ ऐसा ही व्यवहार नज़र आया। सुबह उठते ही ननद ने कहा कि अगर मुझको कहीं नहीं जाना है तो वह घर को बाहर से बंद करके डॉक्टर के जाएगी। मुझको दिल ही दिल में खटका लगा। अत: मरता क्या न करता, नई-नई बहू को फ़ोन किया। वह बहुत खुश हो गई और तुरंत बुलवा लिया। उसका भाई आया और मैं सारे दिन के लिए बेटे के ससुराल चली गई। बहू के भाई ने उसी रात की गाड़ी में मेरी लखनऊ की टिकट भी करवा दी। शाम को वही लोग मुझको स्टेशन भी छोड़ आए।

लखनऊ में पहुँचते ही मुझसे मेरे भाई ने कहा कि तुम फ़ोन कर लेतीं तो मैं कहता सीधे बनारस जाओ क्योंकि अम्मा वहीं हैं। अम्मा जी का इलाज मेरी छोटी बहन ख़ुद कर रही थी। जबकि उसके पति का हृदय का ऑपरेशन हुआ था, केवल दस दिन पहले। चार दिन के बाद वहाँ अमेरिका से बहन की लड़की आ रही थी नानी से मिलने दो दिन के लिए। भाई ने कहा कि तुम भी मिल लेना और फिर अम्मा को लेकर वापिस लखनऊ आ जाना।

सुबह छह बजे की गाड़ी से मैं उतरी थी और दोपहर साढ़े ग्यारह बजे पंजाब मेल से मुझको बनारस जाने का हुक्म दे डाला। मेरी दिल की धड़कन तेज़ थी। सिर अभी भी गाड़ी के हिचकोलों से उबर नहीं पाया था। आठ से ऊपर समय था। झट से सूटकेस खोला। भाभी के पास सुरक्षित रखवाने के लिए पासपोर्ट, टिकट और एक हज़ार पौंड का पर्स निकाला। कपड़े तौलिया आदि लेकर स्नान किया। फिर सोचा बनारस जाना है तो शादी की कुछ तैयारी कर लूँगी अत: वह पर्स अपने होल्डाल में वापिस रख लिया। जल्दी-जल्दी नाश्ता आदि करके भाई ने मुझको समय से स्टेशन पहुँचा दिया। ख़ुद ही गाड़ी की टिकट ले आया। पहले नंबर के प्लेटफार्म पर गाड़ी लगती है। कुली से पूछा वातानुकूलित डब्बे किधर लगाए जाएँगे। वह हमें स्टेशन के अंतिम छोर तक सीढ़ियों से दूर ले गया। मेरे हाथ में एक कपड़ों का होल्डआल और एक अपना बैग था। एक प्लास्टिक की थैली में सैंडविच का डिब्बा और पानी की बोतल आदि थे। सभी कुछ ठीक था। चलते समय मैंने अपना पासपोर्ट वाला पर्स अपने हैंडबैग में रख लिया था। उसमें ज़िप थी और मैं उसको गले से पहने हुए थी। मेरे होल्डाल में एक नेकलेस भी था जो अमेरिका वाली भांजी को देना था।

हावड़ा मेल के आने का निर्धारित समय बारह बजे घोषित हुआ। साढ़े ग्यारह बजने वाले थे। भाई को अपने ऑफ़िस लंच टाइम से पहले पहुँचना था। पास खड़ी एक लड़की से उसने मेरा ध्यान रखने के लिए हाथ जोड़कर विनती की और क्षमा माँगते हुए वह चला गया। मुझको उसने समझा दिया कि ऐ सी फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठ जाना और जब टिकट चेकर आए तो अधिक पैसे देकर टिकट को फर्स्ट क्लास की करवा लेना। करीब छह सौ रुपये लगेंगे।

भाई के जाने के बाद मैं उस लड़की के पास ही खड़ी रही। बात चीत करने का उसने कोई उपक्रम नहीं किया। सबकी नज़रें विद्युत् चालित नोटिस बोर्ड पर लगी थीं, जिसकी गति सामान्य से अधिक थी। बारह बजे मेल और आधा घंटा विलम्बित घोषित कर दी गई। करीब एक बजे घोषणा हुई कि वह प्लेटफॉर्म नंबर तीन पर आ रही है एक बज कर बीस मिनट पर। अत: भीड़ बेतहाशा भागी। मैंने अपना होल्डाल और खाने का बैग समेटा और पुन: लंबी चलाई के बाद सीढ़ियों तक पहुँची। वह लड़की जो बनारस हिन्दू मेडिकल कॉलेज की छात्र थी, मुझसे दस कदम आगे थी। एक आध बार उसने मुड़कर मुझ पर निगाह डाली। मैंने मुस्कराकर उसका उत्तर दिया। पर वह नहीं मुस्कराई। एक कुली से पूछकर मैं ए सी क्लास के डिब्बों की तरफ बढ़ी। पर मुझे वह लड़की कहीं नहीं दिखी। घबराहट में मैं एक टू टियर ऐ सी स्लीपर में घुस गई। अंदर बड़ी भीड़ थी। सब सीटें बिस्तरों से ढकी हुई थीं। सब पसरे हुए थे। मुझे पता था कि सुबह नौ बजे के बाद बिना रिजर्वेशन के बैठा जा सकता है। प्रत्येक बेंच पर चार यात्रियों के लिए जगह होती है। मगर मुझे किसी ने बैठने नहीं दिया। एक व्यक्ति, जो पुलिस की खाकी कमीज़ और सफ़ेद पायजामे में था सबसे काइंया और लड़ाका था। उसने फटकारते हुए कहा "अरे कहाँ चढ़ी आ रही है। आगे बढ़। यह हमारी रिज़र्व्ड सीटें हैं पैसे दिए हैं।" उसकी आठ नौ साल की बेटी उठ बैठी थी। उसपर वह भभका, "क्यों उठ रही है बुखार में। जब तक मैं न कहूँ सोई रह।"

इसके बाद वह अपनी सीट पर बड़ी बेहूदगी से पसर गया। मैंने शर्म से मुँह घुमा लिया। खिड़की की तरफ वाले एक सरदार जोड़े ने यह देखा तो बड़ी शालीनता से पंजाबी भाषा में मुझसे पूछा कि मैं कहाँ तक जा रही थी। बनारस सुनकर उसने कहा, "कोई नहीं, आप जी बै जाओ। शाम नू बनारस आऊ। अस्सी पटना साब दर्शन करन जा रये हाँ।" सो मैं बैठ गई। होल्डाल सीट के नीचे घुसा दिया जहाँ वह महफूज़ था खाने का बैग अपने पीछे रखा। पर्स को गले में ही पहने रखा। गाड़ी को चलने और खोया समय पूरा करने की कोई जल्दी नहीं थी। लखनऊ का बड़ा स्टेशन और दोपहर के भोजन का समय।

ख़ैर आधा घंटा रुकने के बाद कुछ हरक़त हुई। भीड़ उतरने लगी। मैं दरवाज़े के पास वाली सीट पर बैठी थी। लोग टकराते, धकियाते बढ़े जा रहे थे प्लेटफार्म पर कूदने के लिए। फिर भी अनेकों लटके रह गए, शायद जान बूझ के। क्योंकि दस मिनट के बाद पार्क रोड की क्रासिंग आ गई और गाड़ी एकदम धीमी हो गई। वहाँ पुलिस हेड क्वार्टर का अपना प्लेटफार्म बना था। बची हुई जनता उस पर कूद पड़ी। इनमें अनेक स्मार्ट लड़के लड़कियाँ भी थे जो शायद सदर की तरफ जा

रहे थे। मेरे हिसाब से यह एक खतरनाक फैसला था मगर भारत में सब चलता है। एक्सीडेंट हो जाए तो भगवान् हैं न दोष मढ़ने के लिए।

सड़क पर पड़ी दो लाशें याद आईं। एक बचपन में देखी थी। बनारस में कुश्ती के अखाड़े में जाते समय एक बीस बाईस साल का पहलवान बस से कूदा मगर उसकी देह पर तेल मला हुआ था। बस का डंडा हाथ से फिसल गया और वह सिर के बल गिरा। सिर मटके की तरह फूट गया। वहीं प्राण पखेरू उड़ गए। सहमती - सहमती कक्षा में पहुँची थी तो अध्यापिका जी ने प्रश्न किया, मैं बोली जी वह मर गया। उसकी आँखें खुली थीं। मेरी बदहवासी देखकर उन्होंने चपरासी को बुलाया और कहा कि यह कहती है गेट पर लाश पड़ी है।

दूसरी बार इसी तरह दिल्ली में आज़ादपुर के चौराहे पर एक सिर फटा नौजवान पड़े देखा। सैकड़ों गाड़ियाँ उसके इर्द-गिर्द से निकल कर जा रही थीं पर कोई नहीं रुक रहा था। मेरा तिनपहिया भी ऐसे ही आँखें मूँदकर गुज़र गया था। पहली बार मैं सात वर्ष की थी। दूसरी के समय सैंतालिस। क्या बदला था मेरे भारत में ? आज़ादनगर का फ्लाईओवर जो सीधे नई दिल्ली से जोड़ता था ? न कोई लाल बत्ती, न क्रासिंग। छह सड़कें, सपाट भी, ढलवां भी, तंग वाली, चढ़ाई वाली, जी टी रोड, सब्ज़ी मंडी की गली और भी आवासीय गलियाँ, मारकिट का मुहाना, सब एक जगह। और बेतहाशा दौड़ता ट्रैफिक, हर सूरत का। बैलगाड़ी की जगह जुते हुए हईशा हईशा चिल्लाते युवा, डीज़ल वाले दस फुट तक लदे हुए ट्रक, मोटरें, बसें, और तमाम पैदल आम आदमी, बच्चे स्त्रियाँ बूढ़े जवान। सबको हमारे ट्रैफिक इंजीनियरों की अदूरदर्शिता को अपनी समझदारी से झेलने के लिए मजबूर छोड़ दिया गया है या उनकी किस्मत पर।

गाड़ी चलने के करीब आधे घंटे बाद टिकट चेकर जी हाज़िर हुए। मैं ही पहली ग्राहक मिली। मैंने अपनी टिकट दिखाई और उसके कुछ कहने के पहले ही उसे बदलकर ठीक दाम वाली देने की बात कही। वह मुझसे अंग्रेज़ी में बोलने लगा। बहुत कम उम्र का लड़का था। किसी अंग्रेज़ी स्कूल से पढ़ा हुआ होगा। टिकट उसने बना दी मगर जो पचहत्तर रुपये वाली पहले खरीदी थी वह बेकार हो गई, मतलब उसका पैसा नहीं जोड़ा नई टिकट में और साढ़े छह सौ रुपया माँगा। मेरे पूछने पर उसका उत्तर था, "यहाँ ऐसे ही होता है।" मैंने चुपचाप पर्स बंद कर लिया मगर वह फिर भी डटा हुआ था। अब क्या ? वह बोला कि सात सौ रुपया फाइन लगेगा। मैं कुछ नहीं समझी। मैंने आजिज़ी से कहा कि इसमें मेरी क्या ग़लती है अगर आप स्टेशन की खिड़की से टिकट नहीं बेचते। स्टेशन पर सिर्फ रेल में चढ़ने की तीसरे दर्जे की टिकट बिकती है। बाकी सब हज़रतगंज के रेलवे बोर्ड के ऑफ़िस से लेनी पड़ती हैं। यह छह सौ की टिकट सिर्फ बैठने की है। वह भी नाटकीय अंदाज़ में बोला कि वह केवल अपनी ड्यूटी निभा रहा है। मरता क्या न करता। ऊपरवार हज़ार रुपये रखे थे। छह सौ उसको दे दिए थे अत: मुझे अपना वालेट निकालना पड़ा। पर्स की ज़िप खोलकर लाल रंग का छोटा वॉलेट निकाला जिसमे मेरा पासपोर्ट, एक हज़ार पौंड और दो हज़ार रुपये रखे थे। सात सौ का फाइन भरा। रसीद माँगने पर उसने बुरा सा मुँह बनाया। पर एक अलग बुक निकाली और रसीद बना दी।

सरदार युवक से मैंने पूछा कि उनकी टिकट कितने की आई थी तो वह बोला कि सारा खर्चा दो जनो का पंजाब से पटना साहब तक का ढाई हज़ार में पूरा पड़ा था। रिज़र्वेशन की फीस लेकर। यहाँ कोई रिज़र्वेशन नहीं हुआ था। पर कोई बात नहीं। दिन गरमा रहा था। मैं बेहद थकी हुई थी। पानी पीकर थोड़ी साँस ली। सामने बैठा पुलिसवाला मुझको घूरे जा रहा था। मैंने आँखें बंद कर लीं। अगला बड़ा स्टेशन अमेठी का था। लंदन की भारतीय न्यूज़ पर यह नाम बहुत बार सुनाई दिया था। सोनिया गाँधी का चुनाव क्षेत्र था। नया स्टेशन बना था। यहाँ सब लोग उतरकर कुल्ला आदि कर रहे थे। खा पी रहे थे। मैंने भी बोतल के पानी से तौलिया भिगोकर हाथ पोंछे और अपना सैंडविच खाया। सरदार जी ने चाय ला दी। पैसे भी नहीं लिए। अपने पराँठे भी मुझे ऑफर किये मगर मैंने तो सैंडविच ही खाना था। तभी मेरी नज़र बाहर पड़ी तो वही टिकट चेकर अपने दोस्त यारों के झुण्ड में मेरी ओर देखकर बतियाता नज़र आया। वह लोग हँस रहे थे मुझ पर। मैंने नज़र हटा ली।

गाड़ी चली तो सरदार जी ने मुझको अपनी टाँगें ऊपर रखकर आराम से बैठने को कहा। उसकी बीबी भी थकी थी। गर्भ से थी। शायद मन्नत पूरी करने पटना साहब दर्शन को जा रहे थे वह लोग। सरदार जी ख़ुद ऊपर की बर्थ पर लेट गए। उसकी बीबी ने बताया कि वह किराये पर तीन पहिया गाड़ी लेकर सामान ढोता है। रब ने चाहा तो अगले साल तक वह अपनी गाड़ी ले लेगा। सेकंड हैंड साठ सत्तर हज़ार में मिल जाएगी। अमेठी के बाद गाड़ी ने तेज़ रफ़्तार पकड़ ली। मैंने अपना बैग गले और कंधे से पहनकर ज़िप बंद की और उसको गोदी में सँभालकर रख लिया। मुझे झोंक आने लगी थी। दोपहर की गर्मी और तेज़ धूप। ए सी चालू था। पता नहीं कितनी बार गाड़ी रुकी होगी। हर बार एक रेला भीड़ का अंदर घुस आता। अधिकतर गाँव के लोग जो बेचारे अगले स्टेशन पर कूद जाते थे। ऐसे ही एक जगह दो चार बच्चों को ठेलता एक झुण्ड मेरे पास से गुज़रा। अफरा तफरी में एक छह सात साल की बच्ची मेरी गोद में आ पड़ी। उसको अनदेखा करके लोग बढ़े चले जा रहे थे। वह भी उतरना चाह रही थी। मैंने प्यार से उस गन्दी सी बच्ची को धक्कों से बचाते हुए भीड़ को रोका और उसे निकलने का रास्ता दिया। वह फुर्ती से उतर गई। गाड़ी फिर तेज़ हो गई। नींद में मुझे लगा कि जैसे कुछ गिरा है। हड़बड़ा कर आँखें खोलीं और अपने आगे नीचे झाँककर देखा पर कुछ नज़र नहीं आया। थोड़ा सँभलकर शौचालय तक गई। लौटी तो फिर से सब चेक किया। मेरे गले में पहने बैग की ज़िप खुली हुई थी। एक क्षण को लगा अरे ये कैसे! मैंने तो शर्तिया बंद की थी। पर अपने को ही दोष दिया क्योंकि मेरे आस पास चलती गाड़ी में कोई नहीं था। फिर से ज़िप बंद कर ली और वैसे ही ऊँघने लगी।

000

ग़ज़ल

ग़ज़लें

अनिरुद्ध सिन्हा

इस नए दौर की हक़ीक़त है
आँख खोलूँ तो पास दहशत है
तन गई धुंध की घनी चादर
ऐ हवा अब तेरी ज़रूरत है
क्यों बहारों का शौक रखते हो
तुमको फूलों से जब शिकायत है
ऐ ज़मीं वालो मैं परिंदा हूँ
आसमाँ पर मेरी हुकूमत है
कैसे बहला सकूँ मैं ख़ुद को अब
दिल है बेचैन रूह आहत है

000

मुझे रास्तों ने गिराया नहीं
वो अपना सफ़र था पराया नहीं
खुला था दरीचा हवा तेज़ थी
परिंदों को उसने उड़ाया नहीं
ज़रूरत पड़ी दस्तकों की उसे
जो वर्षों से घर अपने आया नहीं
तू कठपुतलियों की तरह ही तो है
जिसे ज़िंदगी ने नचाया नहीं
मुझे क्या पता था कि दिन चढ़ गया
किसी ने भी मुझको जगाया नहीं

000

गया तोड़कर दिल बताया नहीं
वो अपना था कोई पराया नहीं
रहा ढूँढ़ता धुंध में हर तरफ़
मगर चाँद आँखों में आया नहीं
गया तो गया पर कहाँ वो गया
किसी ने उसे तो बुलाया नहीं
मुझे देखकर उसने सजदा किया
मुझे उसने अब तक भुलाया नहीं
वो बुत की तरह था, ये मैं देखकर
उम्मीदों का दामन बढ़ाया नहीं

000

तुम्हें जब ज़ख़्म गैरों का नज़र आया
तभी सच बोलने का भी हुनर आया
लिपट आईं कई शाख़ें मुसीबत की
मैं अपने गाँव से जैसे नगर आया
उतर आए वफ़ाओं के नशे सारे
दिलों में फ़ासले का ये असर आया
वो आया है तो आने की वजह पूछो
सियासी आदमी कैसे इधर आया
ये दुनिया भी तुम्हें कमज़ोर समझेगी
ये आँसू आँख से बाहर अगर आया

000

जाते-जाते चाँद ये क्या कह गया
जो भी था हो के धुआँ सा रह गया
ज़िन्दगी के खेल में उतरा नहीं
तू तमाशा देखता ही रह गया
दुख की मौजों में घिरा कुछ इस क़दर
जिस तरह तिनका बहे तू बह गया
और कितना ज़ब्त का दूँ इम्तिहाँ
तब तलक जितने पड़े दुख सह गया
आए वो ही लोग हमदर्दी को भी
घर मेरा जिनके ढहाये ढह गया

000

अजनबी इक बात ऐसी कह गया
दिल का ये कच्चा मकाँ भी ढह गया
आसमाँ हो या ज़मीं के वार को
पेड़ आँगन का सकूँ से सह गया
खम नहीं ठहरा नदी की मौज पर
एक तिनके की तरह ही बह गया
धूप से निकला जो मंज़िल की तरफ
छाँव की चाहत में उलझा रह गया
ये जो खनका है अभी कंगन तेरा
अपनी भाषा में हमें क्या कह गया

000

अनिरुद्ध सिन्हा
गुलज़ार पोखर,
मुँगेर (बिहार) 811201
मोबाइल- 7488542351
ईमेल- anirudhsinhamunger@gmail.com

विशिष्ट कवि

चन्द्र मोहन की कविताएँ

ख़बरदार !

आप खेतों में नहीं खटते हैं
आपको धूप नहीं लगती होगी

पर आपको भूख लगती होगी
तो मुझे याद करते होंगे

घृणा से याद करते होंगे या प्यार से
मगर याद करते होंगे ज़रूर!

ख़बरदार!आप मेरी श्रमिक हथियारों को
हत्या के लिए
प्रयोग मत कीजिएगा!

आप बाबू साहेब हैं
आपको शर्म आनी चाहिए
कि पसीने के परफ्यूम बिना
आपके गोदामों में
धान का एक कण भी नहीं जा सकता!
000

मैं किसान हूँ, कवि नहीं हूँ कि कल्पना से काम चल जाएगा!

इससे पहले कि मैं ज़मीन पर से उठ जाऊँ
लेकिन क्या करूँ, हाय!
मेरी कृशकाय आत्मा की पीली पत्तियाँ
गल रही हैं
बर्फ के
निर्जन बियाबानों की तरह!

जहाँ पर हमने रो-रो कर बहाए थे खून-पसीने
वहाँ कुदरत ने दे दिया हाय! हाय!
रीढ की हड्डियाँ टूट गई फसलों की
कटने से पहले!

ब्याहने को थी तीन चार चिड़िया
इसी वसंत में
हाय!चारों तरफ है
धुआँ-धुआँ !

कुछ दिख नहीं रहा
सिर्फ दिख रही हैं
पृथ्वी पर पसरी हुई निचाट नंगी
मरी पड़ी असंख्य गेहूँ की देह!

ओ!नहीं चाहिए रे सरकार तुम्हारा साँप
जैसा यह स्नेह
मीडिया वालों! सामने से हट जाओ
वरना तुम्हारा माइक चबा जाऊँगा
ईश्वरों दूर रहो, गोदाम वालों दूर रहो
सावधान रहो तमाम पेटों!जो संबंध रखते हो
खेतों से
अरे ओ बेवफा कुदरत जा रे जा!

मैं किसान हूँ क्या करूँ
कवि नहीं हूँ कि कल्पना से काम चल
जाएगा
मेरे दाएँ-बाएँ अंतहीन सवालों का वृक्ष
खड़ा है
मेरा खेत देखो न!
बर्फ के पत्थरों और बारिशों से बिछा पड़ा
है

सामने गहरी नदी है
सदियों से पुरखों के पुराने बक्से में रखी हुई
सल्फास की गोली है
आत्महत्या करने के लिए उपाय है बहुत
लेकिन क्या करूँ, हाय!मैं किसान हूँ
मर जाऊँगा
तो मर जाएगा देश।
000

अभी भी

अभी भी लकड़ी का हल चलता है यहाँ
अभी भी हज़ारों जोड़ी बैलों से खेतों को
जोता जाता है
अभी भी गन्ने के खेतों में बहुत रस बचा
हुआ है
अभी भी जंगलों में जंगली हाथी गरजते हैं
बादल से भी तेज़।

अभी भी एक प्राचीन कवि कविता की
पत्थलगड़ी करता है
जंगलों से ज़मीनों से इतने खदेड़े जाने के
बाद भी
अभी भी सिंगार करती हैं आदिवासी स्त्रियाँ
वनफूलों से
अभी भी प्यार करती हैं रेलगाड़ियाँ
परदेसिया मज़दूरों से।

अभी भी हम साइकिल चलाते हुए जाते हैं
लंका बैगन बेचने
अभी भी बिहार में तंबाकू की खेती में टाटा
का फरुहा चलता है
अभी भी भारत के झारखंड में बहुत खंड
बचा हुआ है
अभी भी सात बहनों का राज्य
जल जंगल ज़मीन नद-नदी दीप-समूह से
घिरा हुआ है

अभी भी हमारे सपनों में एक कपिली नदी
बहती है
जिसके ऊपर पुराना पुल थोंग नोक बे के
नाम से है
जिस पर से अभी भी सैकड़ों असमिया,
कार्बी लड़कियाँ
मस्तकों पर असमी गमछा पहने हुए
हर रोज़ जाती हैं धान रोपने, घास काटने,
अभी-अभी।

अभी भी गाँव के सामने वाली मड़ई में
पिसुआ मड़ुवा पर नमक लगी लिट्टी
गमकती है
अभी भी ब्रह्मपुत्र में लकड़ी की नावों पर

मछलियाँ पार होती हैं
अभी भी डिब्रूगढ़ और तिनसुकिया में चाय बागान लहराते हैं
अभी भी हम नदियों के किनारों पर बाँस की बंसी बजाते हैं
अभी भी हम आदमी को तांबूल-पान से स्वागत करते हैं

अभी भी हमारी पचास लाख साल पूर्व
पृथ्वी का निजीकरण नहीं हुआ है
अभी भी हम निजीकरण के सरदारों से सत्ता छीन सकते हैं
अभी भी यह देश हम श्रमिकों का है
हम अभी भी इस देश के सदियों पुराने पंछी
देश के बचे-खुचे खेतों में से फसलों के तिनके बीन सकते हैं,
अभी भी।
000

बाँस झाड़ियाँ जब पुकारती हैं

बाँस झाड़ियाँ जब पुकारती हैं
हम चले आते हैं
नदी की तरफ
हवा
सपने
वनफूल
और जीवों की दुनिया की तरफ
चले आते हैं फटी एड़ियों के बल।

पत्थर पर छलक-छलक कर बहते हुए पानी
हमारी श्रमिक आत्माओं में
जीने के लिए संगीतमय गीत
गाते हैं किसी पुरातन लोक धुन पर कल-कल।

सामने तो रोपे हुए बहुत वृक्ष, वनजंगल हैं अभी भी
यह हमें स्मृतियों और आदिवासियों के प्राचीन
लोक कथाओं में
ले जाते हैं
जहाँ हम गाय बैलों को चराते थे
जंगली हाथियों से दोस्ती करते थे बेशक
हिरणों की आँखों में अपनी आदिम आँखें
झलकाकर देखते थे
और संध्या के सूरज को हाँकते थे इस तरह
हरहकने पैने से
कि सूरज
पहाड़ों के सबसे निचले हिस्से में
गुम हो जाता था
कवि हँसी हँसते हुए

स्त्रियाँ खूड़ी बिनती थीं चुपचाप
और अपने आँचल से आँचल में झड़े हुए पत्तों को
तिनकों को
बटोर लाती थीं
रसोई के चूल्हों के लिए

जहाँ हमारी कविताएँ सबसे पहले जवान हुईं बाँस झाड़ियों की तरह
वही आज
खेतों से थक-हार कर आने के बाद छाती को छूती हैं
चुमकारती हैं पृथ्वी और नदी के रस भरे मुखों से

जहाँ यादें ओस की तरह चूतीं हैं रात भर
और मज़दूर के माटी का मन भींगता है
कण-कण

बाबा तो कहते ही थे, बाबू!
धरती पर सबसे अपना बाँस ही है
जिसे नदी के तट पर या कहीं खेतों या घरों के आसपास
लगाना होता है।
000

यह गेहूँ के उगने का समय है

हर रोज़ की तरह सूरज पूरब से उगेगा
खुला आसमान रहेगा और दूर-दूर से पँडुक आएँगे
मैनी चिरैया आएँगी
देसी परदेसी पंछी आएँगे
गेहूँ की निकली हुई पहली पहली डिभी को
मिट्टी में चोंच से गोद गोद कर खाएँगे
इन्हें बच्चे हुलकाएँगे तो उड़ जाएँगे

ये गेहूँ के उगने का समय है
और देश में किसान हक के मोर्चे पर खड़े हैं
युगों की पीड़ा से सनी हुई मिट्टी
किसानों के लबों से बोल रही हैं

जिनके पास ज़्यादा खेत है
उन्हीं का भरा पेट है
दोष मिट्टी का नहीं
ज़मीन का खून-पसीना लूटने वाले लोगों का है

ये गेहूँ के उगने का समय है
यह समय मौसम के फसल को
सही-सही लिखित मूल्य मिलने का समय है

यह समय हत्यारे गोदामों की ओर से
कुँवारी ज़मीन की ओर गेहूँ के लौटने का समय है!
000

बहुत दिन

बहुत कुछ
ख़त्म होने के बाद
बहुत कुछ
बचा रहता है

जैसे
बहुत रात
गुज़र जाने के बाद
बहुत दिन।
000

चन्द्र मोहन
खेरोनी कछारी गाँव,
कार्बी आंगलोंग (असम)
मोबाइल- 9365909065
ईमेल- chandramohan909065@gmail.com

ब्रजेश कानूनगो की कविताएँ

भ्रम

मुझे सुई चुभी
खून निकला तो खुश हुए तुम
जबकि उधड़े हुए को
फिर से सिल देना रचनात्मक होता

एक टहनी मिली गुलाब की
भूल गए कोमलता
काँटों को दे बैठे अपना दिल

याद नहीं रही पुरानी कहावत
कि बड़ी लकीर दिलाती है जीत
व्यस्त हो गए छोटे निशान मिटाने में

करते रहे अभिषेक जड़ों का
दूध समझ कर
वो मट्ठा निकला आख़िर

पानी दिखाई दे रहा था जो दूर से
गर्म रेत से निकला भ्रम था तुम्हारा।
000

ज़हर

ज़हर पीते हुए
पहली घूँट के साथ
मिटने लगती होंगी स्मृतियाँ शायद
कड़वे समय की

गलने लगता होगा
पुराना संग्रहित कोई दु:ख
औषधि की तरह
काम करता होगा जहर

चिंता नहीं होती जहर पीते हुए
कि खट्टा, कसैला, नमकीन कैसा है
उसका स्वाद
बेस्वाद हुई दुनिया से मुक्ति की तलाश में
इंद्रियों की चिंता नहीं करता पीने वाला

कुछ तो इतने मीठे होते है जहर
कि उम्र गुज़र जाती है मरते मरते

और जब विश्वासघात
का पता चलता है अकस्मात्
मौक़ा ही नहीं मिलता
जायका लेने का

ठीक ठीक स्वाद पता नहीं इसका अब तक
दुनियादार को।
000

एक दिन

एक दिन धरती काँपती है
और ढह जाता है हमारा सारा अहंकार

संवाद मूक हो जाते हैं
अनंत की ओर यात्रा के प्रस्थान का
अभिनय करते
अचेतन में विलीन हो जाते हैं अभिनेता
रंगमंच की छत के नीचे
धूल में बदल जाता है महानाट्य

स्खलित होने लगती प्रमोद की पहाड़ियाँ
दु:ख में उमड़ी नदियों में बह जाती हैं
खुशियाँ

और एक दिन
ज़रा-सा मद्धिम संकेत भी
धराशायी हौसलों में उम्मीद का टेका
लगाता है
सरगम का सबसे कोमल स्वर फूटता है
मिट्टी के भीतर से अचानक
जैसे बीज की नाभि से कोई नया पत्ता
निकला हो

सूखा नहीं था माँ का आँचल
निर्जीव देह की बाहों में सिमटा मासूम
अब भी मुस्कुरा रहा था।
000

निशान

दिखाई नहीं देता गूँज का रास्ता
पर पहुँचती हैं कानों तक निर्बाध
सारंगी रोती रहती है रेडियो में
मज़बूत सड़क भी कसमसाती है टायरों की
रगड़ से
ख़ामोश दुर्ग खड़ा दिखता है निर्जन टीले पर

बेख़बर नहीं होता कोई सम्राट
कि घाव को महसूस न कर सके
जो तलवारें चलाई गई
कितनी धार थी उनमें अदृश्य

पीपल का एक पत्ता झरा है पेड़ से
गिरने का निशान नहीं कोई पत्थर पर
चट्टान ही बता सकती चोट का ठीक
वज़न
और ये ख़त जो मेरे पास आया है कूरियर
से
पत्ते की तरह गिरता हृदय पर
आँसुओं में ओझल हैं सब निशान।
000

ब्रजेश कानूनगो
503, गोयल रिजेंसी, चमेली पार्क,
कनाडिया रोड,
इंदौर-452018 मप्र
मोबाइल- 9893944294
ईमेल- bskanungo@gmail.com

ममता त्यागी की कविताएँ

मुझे त्रास देता है

मुझे त्रास देता है
यूँ बार-बार जड़ों से उखड़ना
उखड़ कर फिर जमना
जम कर फिर उखड़ने को मजबूर होना
मुझे कभी-कभी त्रास देता है
कभी नीला आसमान
मुझे दरकिनार कर देता है
और कभी समंदर
अपने आग़ोश में भर लेता है
इस तरह टूटना, टूट कर बिखरना
फिर से जुड़ने की जद्दोजहद में लगना
मुझे त्रास देता है
हर बार आसमान में
सितारों की नई दिशा तलाशती हूँ
फिर आकाश के कोने-कोने में
चाँद को ढूँढ़ती हूँ
अपनी खिड़की से नज़र आते
एक ऊँचे से पेड़ की फुनगी को
किसी दूसरे पेड़ की ऊँचाई में तलाशती हूँ
तलाश में निराशा पाकर
टूट कर बिखर जाना
मुझे त्रास देता है
कभी दूर कहीं
धूप का एक छोटा सा टुकड़ा
मुझे आकर सहला जाता था
मेरी खिड़की के बाहर बैठा
कबूतरों का एक जोड़ा
मुझसे कुछ कहता था
अब एक नए मंज़र में
एक नए से साँचे में
ढलने से पहले
मैं न जाने क्यों पुराना सा तलाशती हूँ
न मिलने पर फिर बिखर सी जाती हूँ
यह बार-बार बिखरना मुझे त्रास देता है।
जड़ों से उखड़ना उखड़ कर फिर बसना
न जाने क्यों
अब मुझे त्रास देता है
पर फिर सोचती हूँ
परिवर्तन तो जीवन का नियम है
परिवर्तन न होता
तो ज़िंदगी ठहर ही जाती
एक जगह पर पड़े-पड़े
रुक सी जाती
नदी का पानी बहता हुआ चलता है
तभी तो ताज़गी पाता है
वृक्षों के पुराने पत्ते झड़ते है
तभी तो नए लहलहाते हैं
पुराना छोड़ कर
अगर नए को न अपनाएँगे
तो ज़िंदगी की दौड़ में ही पिछड़ जाएँगे
एक ही जगह पड़े रहेंगे
तो विस्तृत नभ की आभा को देख नहीं पाएँगे
जड़ों से जुड़ा रहना ज़रूरी है
संस्कारों से जुड़ना लाभकारी है

परंपराओं से जुड़ना सुखद है
पर नव परिवर्तन को
अपना न पाना दुखद है
अगर ज़िंदगी के साँचे में
पूरी तरह ढलना है
तो जड़ों से उखड़ कर भी
सृजन में लगना है
नए परिवेश से
कुछ और नया ग्रहण कर
जीवन में आगे बढ़ते रहना है।!
000

बताओ ना !

मेरी पलकों के पीछे
एक खारा समंदर छुपा है
यूँ तो वह शांत सा
बहता रहता है
पर कभी-कभी
पलकों के ढकने खोल
बाहर भी छलक आता है
वहाँ एक छोटा सा द्वीप भी है
उस पर मेरा एक नितांत निजी कोना है
वहाँ किसी को भी
आने की इजाज़त नही है
बस मेरा भटकता मन
कभी-कभी
उस पर विचरण करता है
वहाँ कुछ पल ठहर कर
मैं स्वयं को खोजती हूँ
ख़ुद से ही बात करती हूँ
मैं वहाँ की ठंडी रेत पर
चुपचाप बैठकर घरोंदे बनाती हूँ
मेरी कल्पना में
उस द्वीप पर कभी-कभी
तुम और मैं साथ-साथ चलते है
एक दूसरे को निहारते हुए
और तब हमारे सूखे होंठो से
हँसी की फुहारें झरने लगती हैं
बारिश की बूँदे
हम दोनों को भिगो देती हैं

उल्लसित मन में
हरीतिमा सी छाने लगती है
और तब मैं
बिना पंखों के भी
तितली सी उड़ने लगती हूँ
कभी-कभी सोचती हूँ
क्या तुम्हारे मन में भी होगा
कहीं एक ऐसा ही द्वीप
और एक निजी सा कोना
जिसमें कभी-कभी ठहर कर
तुम भी कुछ पल
मेरे साथ गुज़ारते होंगे
बताओ ना !
000

ममता त्यागी
411 ब्रेयरली ड्राइव, एपैक्स, नॉर्थ
कैरोलाइना -27523
मोबाइल- 984-218-6178
ईमेल- mamta.t80@gmail.com

खेमकरण 'सोमन'की कविताएँ

लाखों लोग हैं बेघर

लाखों लोग हैं बेघर
लाखों लोग हैं अशिक्षित
ईश्वर, उन्हें शिक्षा दीजिए
लाखों लोगों के पास नहीं है
मनुष्य होने का हक अभी
ईश्वर, उन्हें हक दीजिए
लाखों लोग हैं भूखे
ईश्वर उन्हें भोजन दीजिए
लाखों लोग हैं बेरोज़गार
ईश्वर, उन्हें नौकरी दीजिए
लाखों लोग हैं बेघर
ईश्वर, उन्हें घर-आँगन दीजिए
लाखों लोगों के पास नहीं है
खेत-खलिहान-जंगल
ईश्वर, उन्हें खेत-खलिहान और
जंगल दीजिए
ईश्वर, यदि आप इनमें से कुछ दे नहीं
सकते
तो बस इतना ज्ञान-
वरदान-शक्ति दे दीजिए कि
जो ताकतवर लोग मार-पीटकर छीन रहे हैं
उनसे उन्हीं की धरती पर
उनकी शिक्षा, उनके भोजन, उनकी नौकरी,
उनके घर-आँगन, खेत-खलिहान और
जल, जंगल-ज़मीन-
उन ताक़तवर लोगों से छीन सकें ये
अपना सब कुछ
ईश्वर, आप उन्हें इतना ज्ञान-
वरदान-शक्ति दीजिए
प्लीज़...!
000

जोशीमठ में दरारें

लोगों ने कहा-
पड़ गई हैं जोशीमठ में दरारें
दरारें पड़ गई हैं नैनीताल, उत्तरकाशी,
पिथौरागढ़, मसूरी और टिहरी आदि शहरों
में भी
दहशत की इन किताबों को
पढ़ रहे हैं हम पत्र-पत्रिकाओं में और
फेसबुक पर
देख रहे हैं उनका सस्वर वाचन
यूट्यूब और टीवी पर भी
कहो, क्या होगा अब ?
दूसरे राज्य-शहरों में रह रहे लोगों की
ऐसी बातें सुनकर
मैं चुप रहा कुछ क्षणों तक
कुछ दिनों तक
कुछ महीनों तक
फिर चुप रहना ही उचित समझा
हमेशा के लिए
अब उन्हें क्या बताता कि
अभी तो दरारें पड़ी हैं केवल इन शहरों में
अभी तो दरारें पड़ेंगी
न जाने किन-किन शहरों में!
अब उन्हें क्या बताता कि
इन शहरों के दिलों में तो
बहुत बाद में पड़ीं दरारें
उससे पहले ही पड़ गई थीं यहाँ के लोगों में
उनके दिलों में
उनकी सोच-समझ और विचारों में
राजनेता में-
राजनीति की गलियारों में !
ये सब
अब क्या बताता उन्हें।
000

चमचों को दुख हुआ

चमचों को दुख हुआ कि
वे रहते हैं हमेशा ही दूसरों के हाथों में
जैसे वे चमचे न हुए
हो गए टीवी का रिमोट कंट्रोल
जिन्हें फेंक दिया जाता है-
काम चलाकर जब-तब इधर-उधर
चमचों को दुख हुआ कि
ये ज़िंदगी भी कोई ज़िंदगी हुई!
चमचों को दुख हुआ कि
ईश्वर ने उनके हाथ क्यों नहीं बनाएँ
ताकि वे भी रहते-
अपनी हद और अपने हाथों में।
अब कुछ भी न कहो
हाथ-पाँव जोड़ रहा हूँ
अब कुछ भी न कहो इन्हें
कुछ भी
इनके जीवित रहते हुए
बहुत कुछ कहा तुमने
लगा दी आग इनके सम्मान की कुटिया में
कि इन्हें होना ही पड़ा अंततः
लाश में परिवर्तित
हाथ-पाँव जोड़ रहा हूँ
अब जाने दो इन्हें सुख-शांति से
श्मशान घाट की यात्रा-पड़ाव पर
अब कुछ भी न कहो इन्हें
कुछ भी, प्लीज़।
000

खेमकरण 'सोमन' द्वारा श्री बुलकी साहनी,
प्रथम कुंज, अम्बिका विहार, भूरारानी,
वार्ड-32, रूद्रपुर, जिला-ऊधम सिंह नगर,
उत्तराखण्ड- 263153
मोबाइल- 9045022156
ईमेल- khemkaransoman07@gmail.com

गीत

सत्यशील राम त्रिपाठी के गीत

1

हम हैं सीधे पेड़ बाँस के
और आप शीशम

घास-फूस से उगे हुए हम
माँगी खाद न पानी
हम सदियों से अर्थी को
देते हैं रूप-जवानी
फिर भी नित लहराता है क्यों
शीशम का परचम

हमसे ही बनता है छप्पर
तनती मच्छरदानी
हृदय हमारा छेद बनी है
बाँसुरिया अभिमानी
यही बाँसुरी सुना रही है
खुशियों की सरगम

शीशम की शाखों पर झूलीं
जब किसान की लाशें
जलकर उनके साथ गला दीं
हमने अपनी साँसें
शीशम जी! ये मौत देख क्या
घुँटा आपका दम

बड़े घरों को सजा रहे हैं
नित शीशम की शाखें
धनिक वर्ग की सेवा में
लगती शीशम को पाँखें
पर छप्पर से रहा आपका
क्यों व्यवहार गरम

000

2

लोग अकेले जीने वाले
कितनी बार मरा करते हैं

जग के कोलाहल से हटकर
किसी सुमन से शांत-सदन में
रचते हैं सपने सिंदूरी
सारे अर्घ्य, मनौती पर भी
अगर कहीं से रह जाती है
सपनों की यह धुरी अधूरी
सूरज जैसे मुखड़े वाले
तिमिर-नगर ठहरा करते हैं

ऐसे यहाँ अभागे भी कुछ
जो कर लें कितनी भी कोशिश
उनके भाग्य लिखी है देरी
उनके साथ यही होता है
पीड़ा पटरानी बन जाती
औ खुशियाँ पीड़ा की चेरी
इस पीड़ा से घाव मिले जो
रह-रहकर उभरा करते हैं

लोग चले जाते हैं जग से
लेकिन कहाँ विदा हो पाते
अपनी यादों की गलियों से
लाखों काँटे भले खड़े हों
लेकिन कब मिलना छूटा है
भौंरों का फूलों-कलियों से
इन आँखों के सम्मुख झोंके
यादों के गुज़रा करते हैं

000

3

प्रेम राह की लीक बनाकर
तोड़ दिया वह लीक, न समझा
नया पथिक चुनकर तुमने जब
मुझे बताना ठीक न समझा
प्रिय! मैं अपना पक्ष सुनाऊँ
इससे अच्छा है मर जाऊँ
छोड़ मुझे इस आधे मग में
जाना जिस जगमग से जग में
मेरे प्यार सदा खुश रहना

साँसों का हर एक सुमन तक
देव तुम्हें अर्पित कर डाला
मन-गंगा जिस ठाँव ठहरता
तुम थे पावन एक शिवाला
कहो कहाँ से चूक हुई है
प्रणयी भाषा मूक हुई है
छोड़ो क्या करना है इससे
मन-मृदंग कहता है तुमसे
मन के तार सदा खुश रहना

हम दोनों थे साथ भले ही
समय हमारे साथ नहीं था
हम दोनों की राह अलग थी
और हाथ में हाथ नहीं था
लेकिन ऐसे अलग हुए हम
जैसे उलट बहे जल-संगम
छोड़ो, इन बातों में क्या है
कहता यह मन का दीया है
ओ! उजियार सदा खुश रहना

000

4

प्यार को अब तौलते हैं
पद-प्रतिष्ठा के तराज़ू

आप कैसे हैं हृदय से
और कितने हैं समर्पित
आप उत्तर दें न दें पर
कीजिए सौ रत्न अर्पित
प्यार को अवसर मिला तो
माँग लेगा एक बाजू

त्याग, तप, सेवा, समर्पण
भूलकर इसकी मुनादी
प्यार में नित लाभ ढूँढ़े
यह सदी उपभोगवादी
अप्सराएँ ढूँढ़ती हैं
उच्च-अफ़सर बना 'राजू'

000

सत्यशील राम त्रिपाठी,
ग्राम रुद्रपुर, पोस्ट खजनी, जिला गोरखपुर।
पिन कोड 273212 उप्र
मोबाइल- 6386578871/8052253857
ईमेल- satysheel441@gmail.com

आख़िरी पन्ना

आइए फतवा जारी करें

इन दिनों सोशल मीडिया, विशेषकर फ़ेसबुक पर कुछ लोग फतवे जारी करने के बड़े शौकीन हो गए हैं। असल में फतवे जारी करने के लिए कुछ विशेष तो करना नहीं होता है, जैसी कि कहावत है 'उठाई ज़बान और तालू से लगा दी'। मतलब यह कि बस आपके मन में कुछ आया और उसे फतवे में ढाल कर फ़ेसबुक पर लिख दो। भले ही आप दिन भर में अपनी, अपने परिवार की, अपने घर की, अपने कुत्ते-बिल्ली की लगभग एक दर्जन फ़ोटो डालते हों, लेकिन आप ही फतवा जारी करेंगे फ़ेसबुक पर 'कितनी कोफ़्त होती है सोशल मीडिया पर आत्ममुग्ध लोगों को देख कर। कृपया इतने आत्ममुग्ध मत होइए कि दूसरों को उससे परेशानी होने लगे।' अब इन फतवे वालों को किसी ने बताया नहीं शायद कि जो कुछ ये कर रहे हैं, वह भी आत्ममुग्धता की ही श्रेणी में आता है। कुल मिलाकर बात यह कि फ़ेसबुक पर अब लोग यह चाहने लगे हैं, कि सारी दुनिया उनके हिसाब से चलना शुरू कर दे, भले ही जो कुछ वे बोल रहे हैं उस पर स्वयं ही अमल न करते हों। जैसे कि दिन भर गांधी के विचारों पर फतवे प्रदान करने वालों की किसी एक ग़लती की तरफ़ इशारा कर दिया जाए, तो एकदम ग़ुस्से में आ जाते हैं, उनको नहीं पता कि गांधी के विचारों में सबसे पहले तो क्रोध पर ही नियंत्रण करना है और असहमति को स्वीकार करना है। 'पता नहीं लोग ऐसा कैसे कर लेते हैं, मेरी तो आत्मा गवारा नहीं होती।' यह वाक्य अक्सर फतवे जारी करते समय उस फतवे में शामिल किया जाता है। लेकिन कुछ ही दिनों बाद आप देखेंगे कि वही फतवेबाज़ वही काम करते हुए आपको मिल जाएँगे। चूँकि जब उन्होंने फतवा जारी किया था, उस बात को अब बहुत दिन हो चुके हैं, लोगों की याददाश्त कमज़ोर होती है, तो अब वैसा करने में उनको कुछ बुरा नहीं लगता। फतवे बहुत नितांत व्यक्तिगत भी प्रदान किये जाते हैं। जैसे 'अ' को 'ब' से कुछ समस्या हो गई, तो तुरंत 'अ' ने 'ब' को लेकर एक फतवा जारी कर दिया। बेचारा 'स', जिसके दोनों से मधुर संबंध हैं, ऊहापोह में पड़ जाता है कि 'एक तरफ़ कुआँ है तो दूसरी तरफ़ खाई है।' वह फतवे के कारण किसी एक पक्ष की तरफ़ झुक जाता है, ज़ाहिर-सी बात है कि दूसरे पक्ष से उसके संबंध समाप्त हो जाते हैं। फिर कुछ दिन बाद यह होता है कि 'स' अचानक सोशल मीडिया पर एक तस्वीर देखता है, जिसमें 'अ' और 'ब' दोनों गलबहियाँ डाले हुए ऐसे खड़े हैं, जैसे दो जिस्म एक जान हों और बैकग्राउंड में गाना बजा रहा है 'कब के बिछड़े हुए हम आज कहाँ आ के मिले'। 'स' को कुछ समझ नहीं आता कि क्या करे वह अब। मज़े की बात यह है कि इस प्रकार की तस्वीर फतवे से पहले भी जारी होती थीं, बीच में कुछ दिन के लिए तस्वीरें रुक गईं और ब्रेक के बाद एक बार फिर से प्रारंभ हो गईं। और एक महत्त्वपूर्ण बात, ब्रेक के बाद 'स' के संबंध दोनों के साथ ख़राब हो जाते हैं, क्योंकि पुनर्मित्रता के बाद 'अ' द्वारा 'ब' को बताया जाता है कि 'स' उसके बारे में क्या-क्या ग़लत बातें करता था। फतवे जारी करने वालों के पास इनको जारी करने का कोई ख़ास कारण भी नहीं होता है। असल में तो कई बार यह फतवे केवल अपनी विद्वता का रौब झाड़ने के लिए भी जारी कर दिए जाते हैं। 'लोग ऐसा कैसे कर लेते हैं' के साथ शुरू करते हुए बिना नाम लिए किसी अज्ञात को निशाना बनाते हुए यह फतवे जारी होते रहते हैं। भले ही अज्ञात को लेकर फतवे जारी किए जा रहे हों, मगर सब को पता होता है यह फतवे असल में किसको लक्ष्य कर के जारी किए जा रहे हैं 'मारो कहीं, लगे वहीं' के अंदाज़ में। फतवों में नैतिकता, मर्यादा, ज्ञान, जैसी कई बातों का समावेश रहता है। चूँकि यह फतवे दूसरों के लिए जारी किये जा रहे हैं, इसलिए जारी करने वाले को पालन का कोई डर नहीं होता, कौन उसको ख़ुद ऐसा करना है। अब यह गांधी का समय तो है नहीं कि आप किसी बच्चे को गुड़ खाना बंद करने का फतवा जारी करने से पहले स्वयं गुड़ खाना छोड़ें। तो चिंता मत कीजिए फतवे जारी करते रहिए आत्ममुग्धता के, नैतिकता के, मर्यादा के और.. और.. और। **सादर आपका ही**

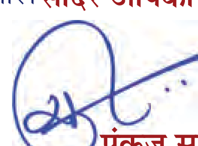

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

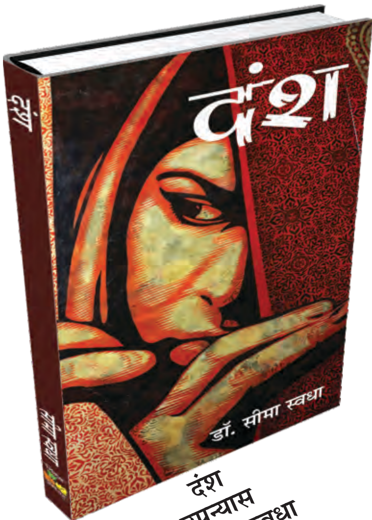

दंश
उपन्यास
डॉ. सीमा स्वधा
मूल्य : 225 रुपये

रबो-नीरद की इनायत है
ग़ज़ल संग्रह
भुवन भास्कर
मूल्य : 200 रुपये

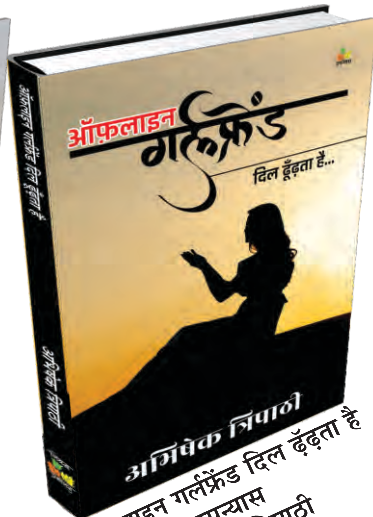

ऑफ़लाइन गर्लफ्रेंड दिल ढूंढ़ता है
उपन्यास
अभिषेक त्रिपाठी
मूल्य : 160 रुपये

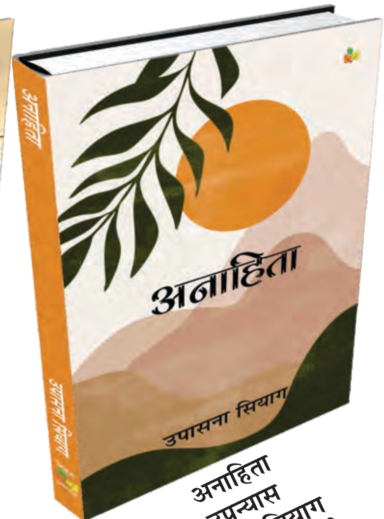

अनाहिता
उपन्यास
उपासना सियाग
मूल्य : 225 रुपये

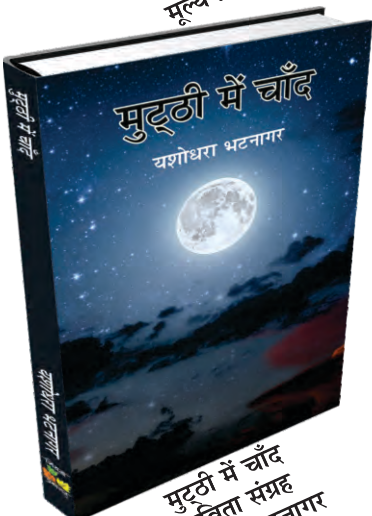

मुट्ठी में चाँद
कविता संग्रह
यशाधरा भटनागर
मूल्य : 200 रुपये

किताबों के आलोक में सुधा ओम
ढींगरा - शोध
रेनू यादव
मूल्य : 175 रुपये

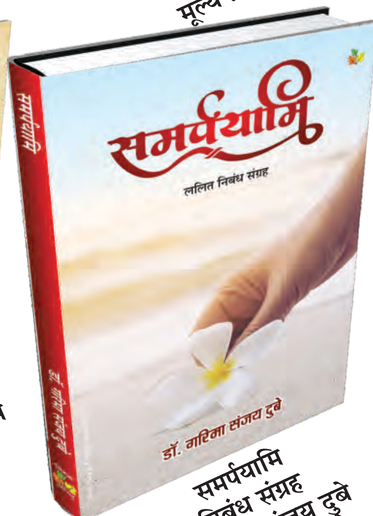

समर्पयामि
निबंध संग्रह
डॉ. गरिम संजय दुबे
मूल्य : 175 रुपये

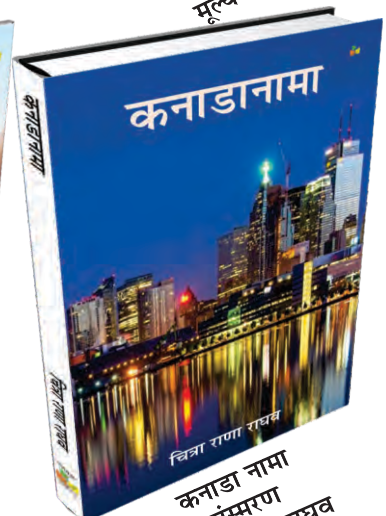

कनाडा नामा
संस्मरण
चित्रा राणा राघव
मूल्य : 225 रुपये

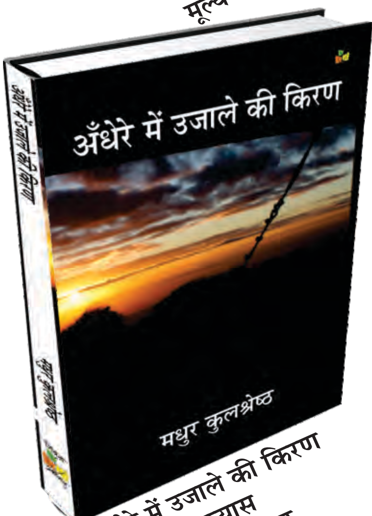

अँधेरे में उजाले की किरण
उपन्यास
मधुर कुलश्रेष्ठ
मूल्य : 300 रुपये

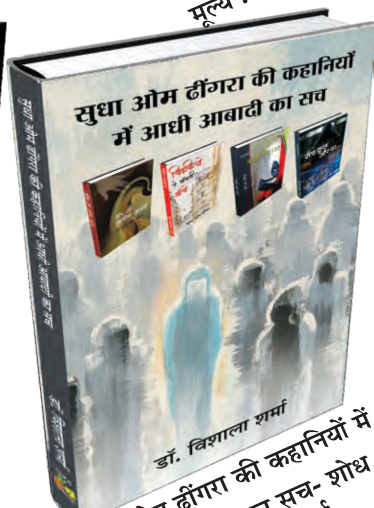

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में
आधी आबादी का सच- शोध
डॉ. विशाला शर्मा
मूल्य : 150 रुपये

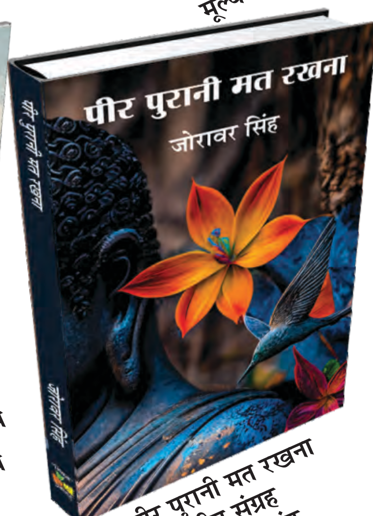

पीर पुरानी मत रखना
गीत संग्रह
जोरावर सिंह
मूल्य : 125 रुपये

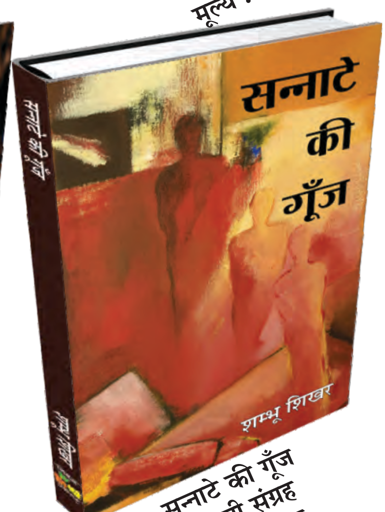

सन्नाटे की गूँज
कहानी संग्रह
शम्भू शिखर
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

http://www.amazon.in
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● April-June 2023 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

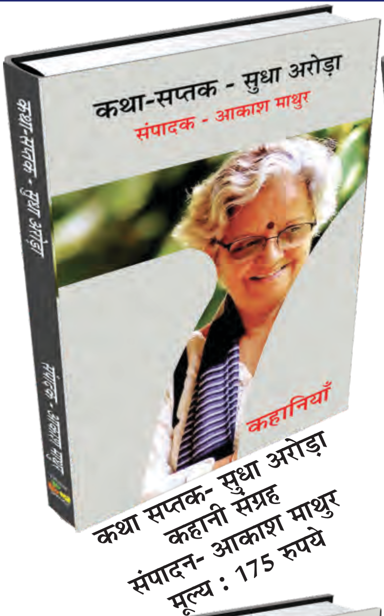

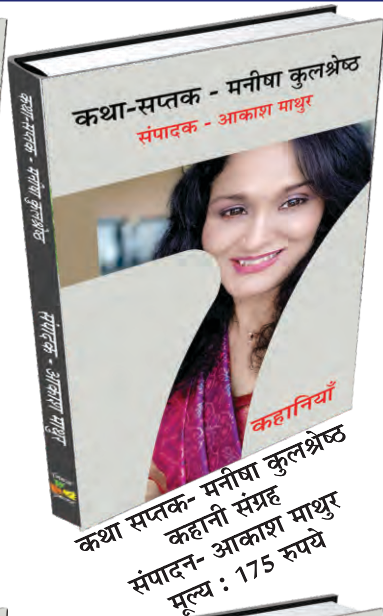

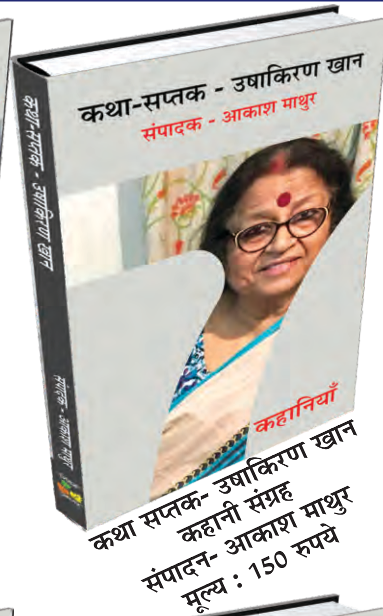

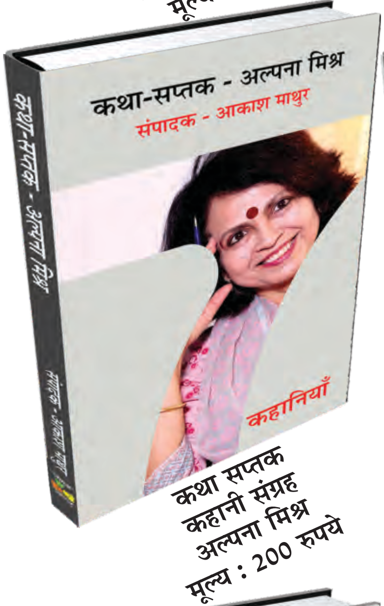

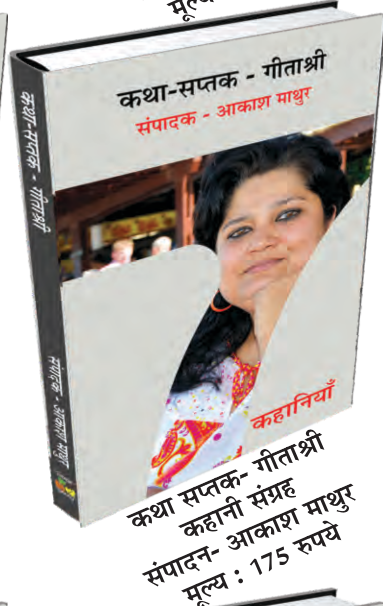

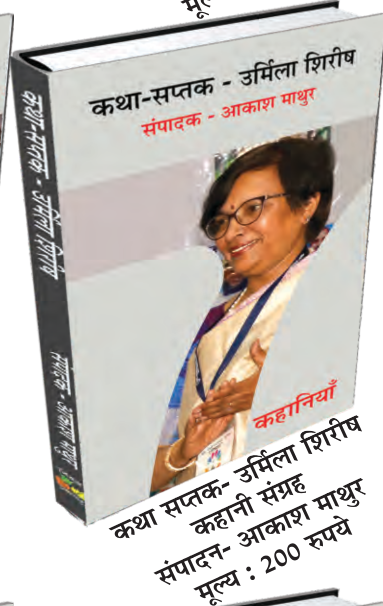

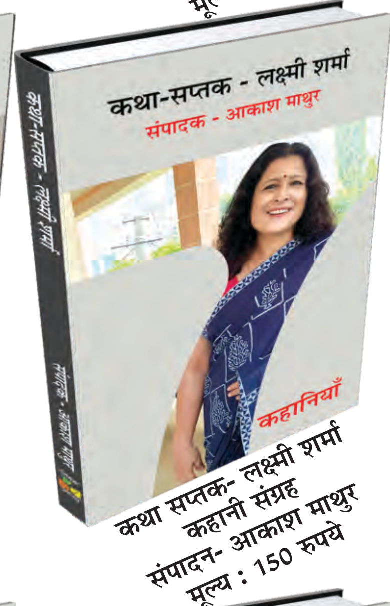

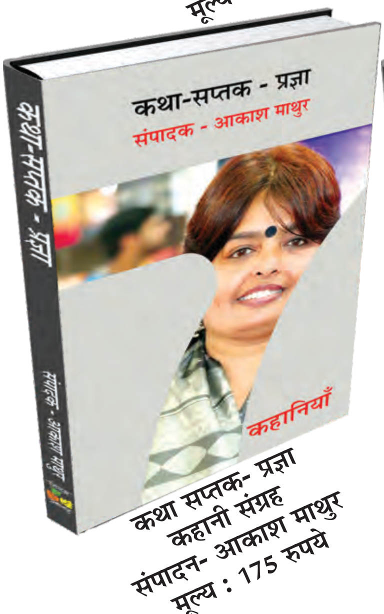

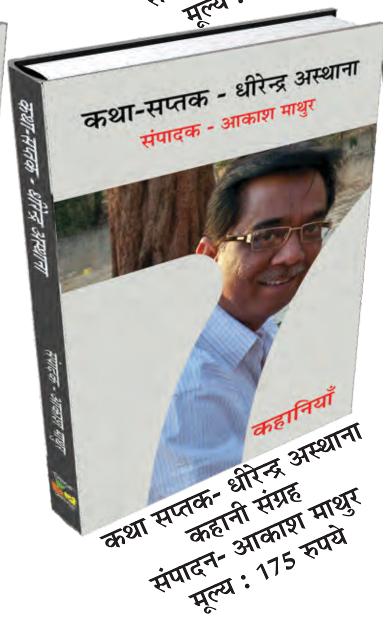

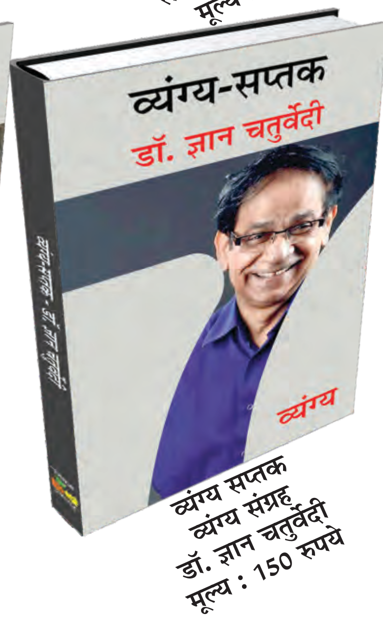

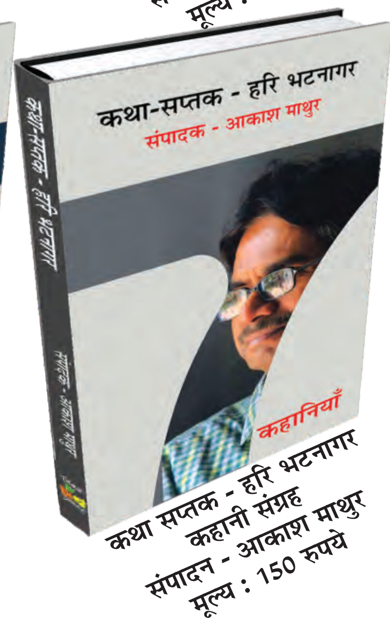

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।